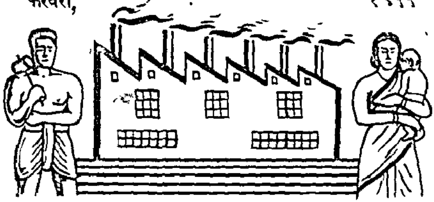
फरवरी, १९५५



नया समाज



संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

नया समाज

(स्वतन्त्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक

विषय-सूची : फरवरी, १९५५

नया समाज

र्ष ७ खड २] कलकत्ता : फरवरी, १९५५ [अक २ पूर्णांक ८०

मज़बूत ईंटें

श्री बालकृष्ण राव

पाँवके नीचे जमा कर ईंट हमने,
देख लो ऊँचा किया आसन तुम्हारा ।
पर न कोई जान पायेगा कि क्या है,
जो बिछा नीचे तुम्हे ऊँचा उठाने—
क्योकि हमने एक चमकीली, सुनहरी,
कीमती चादर विलायतसे मँगाकर
डाल दी है ईंट नजरोसे छिपाने !

★

भेद कोई जान ले लेकिन अगर यह
पूछ बैठे "क्या छिपा है वस्त्रके नीचे बता दो ?"
तो दिखाना गर्वसे चादर उठाकर
और कहना—"ये बडी मजबूत ईंटें है,
हमारे गाँवके अपने पजावमे पकी है !"

★

पूछनेवाला न हो सतुष्ट, फिर भी
बात कहकर तुम बहुत सतुष्ट होगे ।

समाजवादी व्यवस्था

जवाहरलाल नेहरू

कई लंबे बरसोंके बाद आज हम फिर तमिलनाडमें जमा हुए हैं। इस बातकी मुझे खास तौरपर खुशी है और मुझे उम्मीद है कि कांग्रेसका अवाडी-अधिवेशन न सिर्फ कांग्रेसके, बल्कि देशके इतिहासमें एक उल्लेखनीय घटना साबित होगी। मुझे उम्मीद है कि इससे देशको एक ऐसी रहनुमाई मिलेगी, जिससे उसकी बिखरी हुई शक्तियाँ एक होंगी और सभी सदाशयी लोगोंको नए हिन्दुस्तानके निर्माणके लिए प्रेरित करेगी।

बहुत जल्द हम दूसरी पंचवर्षीय योजना शुरू करनेवाले हैं और हर आदमी यह महसूस करता है कि यह काम पिछली योजनाके मुकाबलेमें कहीं बड़े और व्यापक पैमानेपर होना चाहिए। अब हम इस कामका ज्यादा तजरुबा हो गया है और हमारे पास आँकड़े भी काफी जमा हो गए हैं। इसलिए अब इस मसलेको हम इस नजरसे देखना है कि हमें हर चीज का उत्पादन बढ़ाना है, जिससे ज्यादा-से-ज्यादा लोगोंको काम दिया जा सके। ये दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिएँ। और मुझे पूरा यकीन है कि हम ऐसा कर सकते हैं। मगर ऐसा करनेके लिए हमारे सारे देशको कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। ऐसा तभी हो सकता है जबकि हम सब मिलकर और अनुशासित ढंगसे प्रयत्न करें और अपनी शक्तिको छोटी-छोटी बातोंमें या ऐसे कामोंमें खामखा नष्ट न करें, जिनसे हमारा मकसद या रास्ता धुंधला होता हो।

कांग्रेसकी अहमियत

कांग्रेसने न सिर्फ मुल्कको आजाद ही किया है, बल्कि उसकी एकताको ठोस रूप देने और उसे राजनीतिक, अर्थनीतिक तथा सामाजिक तरक्कीकी तरफ बढ़ानेका भी काम किया है। आज ज्यादातर राजनीतिक काम तो होता है, पर सामाजिक और अर्थनीतिक काम काफी होना है। इन सभी मोर्चोंपर सच्ची तरक्की होनी चाहिए। किसी एक दिशामें तरक्की उस वक्त तक नहीं हो सकती, जब तक कि दूसरी दिशाओंकी तरक्कीकी उपेक्षा की जाय। कांग्रेस हिन्दुस्तानमें एक ऐतिहासिक ताकतके रूपमें रही है। आज

वक्तसे लेकर आज तक मेरा
दीकी सम्बन्ध रहा है। कोई
में इसका जनरल सेक्रेटरी बना
मुझे इसका जनरल सेक्रेटरी
इस तरह मैं भी कांग्रेसके साथ
लोगोंके साथ कन्धे-से-कन्धा मि
मुझे मिला है। इस रूपमें क
उसे मैं कभी भी अदा नहीं
मुझे जनताकी सेवा करनेके ऐसे
कम ही लोगोंको नसीब होते
सबधके इन लम्बे वर्षोंपर जब
एक तरहका फख्र और कृतज्ञता
जरिए मेरा यह लंबा संबंध
बहुत ज्यादा स्नेह मुझे मिला है
मैं अपने देशवासियोंके इस स्नेह
चीज नहीं है।

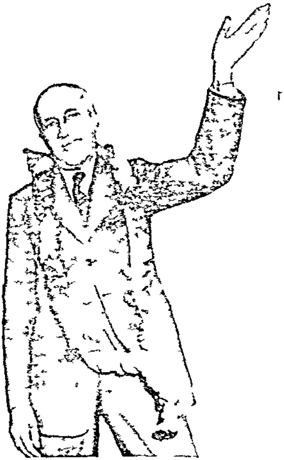
बड़ी-बड़ी स

आखिर हमें कामयाबी मि
जैसा कि हम समझ रहे थे।
और तकलीफ भी लाई और
समस्याएँ आ खड़ी हुईं, जिन
नहीं की थी। पिछले साढ़े स
से जूझते रहे हैं। हमारा
बड़े ही अहम वक्तकी एक क
याबियों या नाकामयाबियोंका
क्योंकि वे सबको मालूम हैं।
चाहूँगा कि इन पिछले साढ़े स
में भारतकी तरक्की काफी
इज्जत बढ़ी है और भारतीय
नींव भी रखी गई है। ऐसा
नहीं हुआ, बल्कि उन बेशुमार
जिन्होंने इसके लिए काम

मुल्कमें काफी बेकारी है—जाहिरा और छिपी हुई दोनों तरहकी। हमारे रहन-सहनका स्तर बहुत नीचा है और मुल्कके सारे बाशिन्दोंको हम जिंदगी बसर करनेकी जरूरियात भी नहीं मुहय्या कर पा रहे। ताहम जो तरक्की हम कर चुके हैं और जो ताकत हमने हासिल की है, वह भविष्य के लिए हममें काफी आशा जगाता है।

विदेशोंकी अवांछनीय नकल

हमारे मुल्कके कुछ लोगोंको यह एतराज है कि हम बहुत धीरे चल रहे हैं और साफ-साफ यह घोषणा नहीं करना चाहते कि हम जल्द ही कोई इन्कलाबी परिवर्तन लाना चाहते हैं। मगर सचाई यह है कि हमारे मुल्कके राजनीतिक, अर्थनीतिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें बिना लड़ाई संघर्ष या खून-खराबेके इन्कलाबी परिवर्तन हुए हैं। लेकिन कुछ लोग इनकी अहमियतको महसूस ही नहीं कर पा रहे क्योंकि वे बिना खून-खराबेके बड़े-बड़े परिवर्तनोंकी कल्पना ही नहीं कर सकते। और इसलिए वे संघर्ष और हिंसा के रास्ते खोज रहे हैं। यह सच है कि दूसरे देशोंको अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए खूनके दरिया पार करने पड़े हैं, मगर इतना ही यह भी सच है कि उन्हें ऐसा परिस्थितियोंकी मजबूरी या इतिहासकी आकस्मिक घटनाके रूपमें ही करना पड़ा है। इसके लिए उन्हें बहुत महँगा मूल्य चुकाना पड़ा है और इसके नतीजेके रूपमें झगड़े और कटुताका तो जैसे कोई अन्त ही नहीं है। सौभाग्यसे हिंदुस्तानमें वैसी परिस्थितियाँ या ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि ही नहीं रही और इसका राजनीतिक विकास दूसरे ही ढंगसे हुआ। इसलिए यह महज बेवकूफी ही है कि हम दूसरे देशोंके उन अवांछनीय पहलुओंको भी अपनायें, जो भले ही कभी अच्छे इरादों या सही मकसदसे सम्बद्ध रहे हों।



सत्य अहिंसा, शान्ति, समाजवाद, और

साधन बनाम साध्य

गांधीजीने हमें जो बुनियादी सबक सिखाया, वह यही था कि साध्य हमेशा साधनोंसे नियन्त्रित है। इसलिए हमें कभी भी सही साध्यके लिए गलत साधन नहीं अपनाने चाहिएँ, भले ही हम इस आदर्शपर पूरी तरह अमल न कर सकें, पर इसके बुनियादी उसूलपर मेरा सच्चा और पक्का विश्वास है। कोरे नैतिक सिद्धान्तके ही रूपमें नहीं, बल्कि आत्म हितके अधिकाधिक व्यावहारिक विवेककी दृष्टिसे भी गांधीजीका मार्ग सही साबित हुआ है। हमने अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें, जहाँतक भी संभव था इस उसूलको कायम रखकर देखा है और मेरा खयाल है कि फूट और लड़ाईपर आमादा आजकी विघटित दुनियाके लिए भारतने राहतका-सा असर किया है और इससे दूसरे मुल्कोंमें भारतकी इज्जत बढ़ी है। अपने मुल्कके मामलेमें भी हमने इसी उसूलको अपनाया है। हम यह जानते हैं कि हमारे यहाँ वर्ग विभाजन और संघर्ष हैं और कायमी स्वार्थवाले कोई भी ऐसा परिवर्तन मंजूर करनेको तैयार नहीं जिनसे उन्हें कुछ नुकसान होता हो। कोई भी राजनैतिक या सामाजिक सुधार करनेकी कोशिश करनेके मानी हैं इन परस्पर विरोधी स्वार्थोंके संघर्षमें आना। लेकिन हम इन्हें न तो प्रोत्साहन देते हैं और न इन्हें बढ़ाते ही हैं क्योंकि हमें यह यकीन है कि इनका सबसे बेहतर हल शान्तिपूर्ण और दोस्ताना ढंगसे ही मुमकिन है। जहाँ कहीं भी दो स्वार्थोंका संघात हो, वहाँ जनताका हित ही पहले रखा जाना चाहिए। पर जहाँ ऐसा होना चाहिए, वहाँ यह जरूरी नहीं है कि विपक्षी को आघात ही पहुँचाया जाय अथवा उसके खिलाफ घृणा और हिंसाकी भावना फैलाई जाय। आखिरकार घृणा और हिंसासे कभी भी अच्छाई पैदा नहीं हो सकती।

एशियाका नवजागरण

भारत फिर अपना खोया रूप प्राप्त कर रहा है। दूसरे मुल्कोंसे वह बहुत-कुछ सीख रहा है; पर उसकी जड़ें अपनी मिट्टीमें हैं और उसीसे वे पोषण पा रही हैं। हमारा किसी सकीर्ण राष्ट्रीयतावादमें कोई विश्वास नही और हम यह समझते हैं कि आजकी दुनियामे उसकी कोई जरूरत भी नही। इसलिए हमने हर तरहसे दूसरे देशोंसे दोस्ताना सबध ही स्थापित करनेकी कोशिश की है। हमने यह भी महसूस किया है कि अगर हिन्दुस्तानको सच्ची तरक्की करनी है, तो उसे दूसरे मुल्कोकी नकल न कर अपने प्रति ही सच्चा रहना चाहिए। पिछली कुछ शताब्दियोंसे हम इतने अलग और एकान्तमे पड गए हैं कि मानव-विकासकी धारा से एकदम हट-से गए हैं। फिर भी हममें अभी तक एक पुरानी जातिका अनुभव और बुद्धि-बल मौजूद है और हम इस प्रकार नष्ट हुए समयकी कमीको पूरा करनेकी क्षमता भी रखते हैं।

जो स्थिति भारतकी है, कमोबेश वही एशियाके दूसरे मुल्कोकी भी है। एशियाका नवजागरण हमारे मौजूदा युगकी सबसे उल्लेखनीय घटना है। पहले इसने भले ही राजनीतिक रुख अख्तियार किया हो—जो कि सर्वथा स्वाभाविक ही था—लेकिन अब हम एशियाके हर देशमें एक नई सामाजिक जागृति पाते है, मानो समूचा एशिया आज एक नई सामाजिक चेतनासे आलोडित हो रहा है। अभी भी उसके कई देशोमे राष्ट्रीयताका महत्व सर्वोपरि है, किन्तु वह कोई आक्रमणात्मक राष्ट्रीयतावाद नही है, बल्कि बाहरी नियन्त्रण और हस्तक्षेपसे मुक्त होकर अपनी आत्माको फिरसे पानेकी प्रबल चेष्टा ही है।

उद्योगीकरणका अभिशाप

कहा जाता है कि आजका ससार सभ्यताके एक सतत सकटकी अवस्थामें है और यह सकट है औद्योगिक क्रान्तिका, उद्योगीकरणका, जिसका अन्तिम परिणाम अणुशक्तिके सामरिक अथवा असामरिक हेतुके रूपमें सामने आया है। कोई भी देश इस सकटसे बच नही सकता, भले ही उसमें इसका रूप भिन्न हो; क्योकि यह हम सबका सकट है। हाँ, पश्चिमके देशोंमें, जहाँ उद्योग धन्धोंका अधिक विकास हुआ है, यह सकट अवश्य ही अधिक गहरा है। अगर

उद्योगोवाले देशोंके हाथमें
और उससे लाभ उठानेके लिए
के भूखड नही होते, तो ये
हो जाती। इसीलिए वे
समृद्ध बने। लेकिन धीरे-धी
लगे। पश्चिमके देश एक
परिणाम जर्मन-युद्ध और दूसरे
गिक क्रान्ति पूँजीवादी
उससे पैदा होनेवाले भीतरी
रहे हैं। पूर्वमें और अ
बढ रहे है और यह समझ ना क
यह कैसे चल सकता है।

इसलिए दूसरी कोई
अलावा, औद्योगिक क्रान्तिकी
में भारी परिवर्तन पैदा कर
ज्यादा हमें अमरीकामें दिखाई
आपको ऐसे परिवर्तन
साम्यवादसे बिलकुल अलग
मशीनकी पूजा करते है, भले
अमरीकामें उद्योगीकरण अपनी
इसीलिए वह दुनियाका सबसे
वही ध्येय है और वह तेजी
लेकिन यूरोपके दूसरे देश,
उद्योग क्यो न हो, एक अर्थमें

नैतिक और म

लेकिन इस सारी औद्य
व्यक्तिके जीवनमें भयकर
अलबत्ता उस समस्याकी
हाइड्रोजन बम है, जो
यह महत्वकी बात है, जिसे
नीतिमें एक बातको हमेशा न
चाहे तो इसे नैतिक पहलू
पहलू कहना पसन्द करूँगा,
समाई हुई है। मनुष्यको
नही बन जाना चाहिए, भले
उसमें मानवके गुण होने

चीजके जरिए मनुष्यका खात्मा भी कर सकती है। आप जानते हैं कि हाइड्रोजन बमके सबधमे आज क्या स्थिति है? अलबत्ता इस बारेमें कुछ कहना कठिन है, लेकिन दुनियाके बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, भौतिकशास्त्रियों, और नोबेल-पुरस्कार-विजेताओंका मत है कि हाइड्रोजन बमके जो पाँच या छ प्रयोग हुए हैं, उनसे सारी दुनियाके वातावरणपर बहुत बुरा असर पडा है। अगर पाँच-छ प्रयोग और किए गए तो उनका वातावरणपर इतना बुरा असर पड सकता है कि धीरे-धीरे और हलके-हलके दुनियाके जीवोंका नाश हो जाय। हो सकता है कि आदमीको इसके असरसे मरने म ५ या १० साल लगें, लेकिन धीरे-धीरे क्षीण होकर अन्तमें वह मर जायगा। यह तो केवल प्रयोगोंका ही परिणाम होगा। लेकिन अगर लडाई हो और १०–२० हाइड्रोजन बम गिराए जायँ, तो उसका नतीजा भयकर होगा। इस विचारके सामने आपके दूसरे सारे विचार—समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, गाँधीवाद—किसी गिनतीमें नही हैं। जब यह खतरा हमारे सामन मुँह बाए खडा हो, तब हम कुछ नही कर सकते—अधिक तो कुछ कर ही नही सकते। हम केवल यही कर सकते है कि अपने देशका निर्माण कर, उसे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत बनायें और चरित्र तथा अनुशासनकी मजबूत बुनियादपर उसे खडा कर।

समाजवादी व्यवस्थाकी ओर

हमारे मुल्कके बहुत-से लोग पश्चिमम हुई औद्योगिक क्रान्तिकी प्रतिक्रियाको पसन्द नही करते और उन्हें भय यह है कि कही हमारे देशमें भी उसका वैसा ही परिणाम न हो। उद्योगीकरणके वरदान जितने स्पष्ट हैं, उतने ही स्पष्ट उसके अभिशाप भी हैं। तब क्या हम अभिशापोंसे बचते हुए उसके वरदानोंको हासिल कर सकते है? इस दृष्टिसे हम हिन्दुस्तानका उद्योगीकरण अपने चाहे जिस तरीकेसे ही क्यो न करें, हमारे सामने तेजीसे उसका उद्योगीकरण करनेके सिवा और कोई चारा नही है। अगर उसका कोई विकल्प है, तो यही कि हम पिछडे, अनुन्नत, गरीब और एक कमजोर मुल्क बने रहें। बिना औद्योगिक विकासके हम अपनी आजादी भी कायम नही रख सकते। जब हमारे मुल्ककी आबादी बहुत कम थी, और यन्त्रोंका इतना विकास नही हुआ था, तब हमारी कृषि-अर्थनीति ही काफी थी। पर आज तो उससे अधभूखे—बल्कि उससे भी बदतर—रहकर जिन्दगी बसर करनेकी तरह है। इसलिए आज हमारे लिए यह निहायत जरूरी हो गया है कि जल्दी-से-जल्दी उद्योग-धन्धोंका विकास करें। इसका मतलब है उन बडे-बडे उद्योग धन्धोंका विकास, जिनसे कि हमारे भविष्यकी नींव पडेगी।

पहली पचवर्षीय योजनामें हमने खेती और खाद्य-उत्पादनपर विशेष जोर दिया था। उस समय यह न सिर्फ हमारी सबसे जरूरी समस्या थी, बल्कि मुल्कके उद्योगीकरण के लिए एक टिकाऊ कृषिके आधारकी भी जरूरत थी। अब चूँकि इसमें हम काफी कामयाबी हासिल हो चुकी है, वक्त आ गया है कि हम इसी तेजीके साथ औद्योगिक मोर्चे की तरफ भी कदम बढायें। इसलिए इसमें जरा भी सन्देह नही कि दूसरी पचवर्षीय योजनामें उद्योगों और लोगोंको काम देनेपर विशेष जोर दिया जायगा। हम यह कह चुके हैं कि हमारी योजनाओंका सामाजिक मकसद एक समाजवादी ढगकी व्यवस्था कायम करना है। हमेशासे यही काग्रेसके ध्येयकी बुनियाद रही है। इसलिए यह जरूरी है कि इस बातको हम और भी साफ कर दें, ताकि योजनाके आइन्दाके सभी स्टेजोमें हमारे सामने समाजवादी व्यवस्थाका ही खाका रहे।

किसीका अंधानुकरण क्यों करें?

समाजवादके कई अभिप्रेतार्थ हैं। हमारे लिए उसके किसी एक सकीर्ण अथवा शाब्दिक रूपको ही तय कर लेना न तो जरूरी है और न वाछनीय ही। और इससे भी कम वाछनीय यह है कि हमारे मुल्कके मुख्तलिफ स्थितिवाले मुल्कोंमें समाजवादके नामपर जो-कुछ हुआ या कहा गया है, हम भी उसका अन्धानुकरण करें। समाजवादके ऐसे समान पहलू और सिद्धान्त हो सकते है, जिन्हें सभी जगह लागू किया जा सके, लेकिन हर देशको अपनी प्रतिभा और परिस्थितियोंके अनुसार ही अपना ढग तय करना चाहिए। फिर हिन्दुस्तानके लिए तो खास तौरपर यह बात लागू है, क्योंकि इसका पुष्ट व्यक्तित्व, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और अपनी परम्परा है। इसी परम्परा और पृष्ठभूमिके अनुरूप हमारा स्वाधीनता-आन्दोलन खडा हुआ और उस सघर्षने ही हमारी भावी परिस्थितियोंका भी मार्ग तैयार किया। हम उन देशोंकी आलोचना नही करते, जिनको मुख्तलिफ रास्ते अपनाने पडे है, और मुख्तलिफ परिस्थितियोंका सामना करना पडा है। पर मुझे हैरत इस बातकी है कि हमारे मुल्कके कुछ लोग मुतवातिर यह सोचते और कहते हैं कि दूसरे देशोमें जो-कुछ हुआ, वह हमारे देशके लिए भी एक अनुकरणीय आदर्श है! यह देखकर मुझे और भी ताज्जुब और अफसोस होता है कि जहाँ ऐसे लोग अपने देशको, चाहे अनजानमें ही, गिराते हैं, वहाँ वे दूसरे मुल्कोंकी तारीफ करते नही थकते। वे न सिर्फ दूसरोंके नारोंको ही अपनाते है, बल्कि उनके प्रतीकोंको भी। मझे यकीन है कि यह न सिर्फ गलत तरीका है,

बल्कि यह सही समाजवादी ढंग भी नहीं है, जिसमें कि देश की वस्तुस्थिति और सामाजिक रुख-रवैयेकी उपेक्षा की जाती है। हमें न सिर्फ अपनी पसन्दके किसी सिद्धान्तकी ही घोषणा कर देनी है, बल्कि ३७ करोड़ लोगोंको साथ लेकर अपने मकसद तक पहुँचना है। आज भारतकी जो परिस्थिति है, उसमें अगर हम एक भी गलत कदम उठाते हैं—चाहे ऐसा कितने ही अच्छे इरादेसे क्यों न किया जाय—तो उसका नतीजा संघर्ष, हिंसा और विघटन ही हो सकता है, जिससे कि हमारी तरक्कीका रास्ता एक काफी लंबे अर्से तक रुक सकता है। इसलिए हमें इस सबसे अहम बातको हमेशा याद रखना चाहिए कि हम हिंसाका सहारा हर्गिज़ नहीं लेंगे—इसलिए कि वह अपने-आपमें खराब है और इसलिए कि उसका नतीजा हमेशा खराब और विघटनकारी ही होता है।

जीवनके हर क्षेत्रमें तत्परता

हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है समाजवादी अर्थनीति और जन-कल्याणकारी राष्ट्रका निर्माण। इनमेंसे कोई भी उस समय तक पूरा नहीं हो सकता, जबतक कि राष्ट्रीय आय काफी न बढ़े, काफी चीजोंका उत्पादन न हो और काफी सेवाएँ तथा मुकम्मिल बाकारी न हो। इस प्रकार समाजवादी ढंगसे एक छोटे-से जन-कल्याणकारी राष्ट्रके निर्माण के लिए सिर्फ मौजूदा उद्योगोंके राष्ट्रीयकरण और व्यापक समृद्धिकी अर्थनीतिको माननेवाला प्रस्ताव या कानून पास कर देना-भर ही काफी नहीं है। इसके लिए हमें उत्पादन बढ़ाना होगा और व्यापक समृद्धिकी अर्थनीतिको अपनाना होगा। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि उत्पादनका सम वितरण हो और कुछ विशेष सुविधाप्राप्त व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहोंका लिहाज़ न किया जाय। हमें उन सब प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देना होगा, जिनसे उत्पादन बढ़े और ज्यादा लोगोंको रोजी मिले, बशर्ते कि इससे हमारे समाजवादी व्यवस्थाके चरम लक्ष्यकी पूर्तिके मार्गमें किसी तरहका फर्क न आय। अगर हम पूरा उत्पादन और पूरी बाकारी न ला सकें, तो कुछ उद्योगोंका *राष्ट्रीयकरण करके* अथवा कुछ जोश-खरोशवाले कानून और डिक्रियाँ पास करके भी हम न तो समाजवाद ला सकेंगे और न जन-कल्याणकारी राष्ट्र ही बना सकेंगे। अगर हमारा उद्देश्य बहुत बड़े पैमानेपर चीजोंका ...

और उसकी कसौटी सैद्धान्तिक
नतीजा ही होगा।

सरकारी बनाम गैर-

इसी कसौटीपर हमें
इस दलीलको भी कसना होगा
और गैर-सरकारी तरीकोंमें
यह तो साफ जाहिर है कि सम
और वितरणके साधनोंपर
इतना ही साफ यह भी है कि अ
वादी अर्थनीतिकी और बढ़ा
सरकारी नियंत्रण प्रमुख होता
मौजूदा स्थितिमें इस नियंत्रण
उद्योगोंके उत्पादन और विकास
समाजवादी व्यवस्थाका मुख्य
की रुकावटोंको दूर करना।
के नामपर सरकारी नियंत्रण
को कायम रखते हैं, तो हम वि
के अपने उद्देश्यमें विफल हो
हो जाता है कि गैर-सरकारी
विकास करनेकी सुविधा रहे,
सम्बद्ध हो। हममेंसे बहुत
अन्य देशोंकी तुलनाओंके
धन्धोंके सम्बन्धमें सशंक हैं।
ध्येय स्पष्ट है और हम
भयका कोई कारण नहीं।

इस बारेमें तो कोई शक
जरूरी तौरपर खास-खास उ
और बुनियादी उद्योगोंपर
आधिपत्य होगा। पर इस
विकासका बहुत बड़ा क्षेत्र तो
काफी अर्से तक सरकारी पक्ष
वह गैर-सरकारी पक्षके लिए
दृष्टिसे हमारे विकासमें
बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहेगा।
कि हम तथाकथित 'स्वतंत्र
मान लेंगे, जो अब दिवालिया

सारे मुल्कमें तरह-तरहके उद्योग-धन्धोंका एक जाल-सा बिछ जाय। हालांकि सरकारी पक्षको समाज और अर्थनीतिके किसी भी क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी पूरी आजादी रहेगी, लेकिन अभी काफी समय तक ऐसे हालात पैदा नहीं हो सकते कि राष्ट्रीय अर्थनीतिके सब क्षेत्रोंमें केवल उसीका एकाधिपत्य हो। मसलन खेतीके सबसे बड़े उद्योगकी जननी धरती जरूरी तौरपर गैर-सरकारी हाथोंमें ही रहेगी। इसी तरह छोटे उद्योग-धन्धे भी ज्यादातर गैर-सरकारी हाथोंमें रहेंगे, हालांकि उनका सहयोगी आधारपर सुव्यवस्थित होना जरूरी है। यही बात दूसरे छोटे उद्योगोंके बारेमें भी लागू है। कुछ बड़े उद्योग-धन्धोंको भी, अगर सरकार उनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेना चाहे, तो गैर-सरकारी हाथोंमें सौंप देना फायदेमन्द ही होगा।

जब वस्तुस्थिति यह है, तो हमें गैर-सरकारी पक्षके प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना होगा और साथ ही अपने समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्यकी पूर्तिका सदा ध्यान रखते हुए किसी ऐसी प्रवृत्तिको पैदा नहीं होने देना होगा, जो कि आगे चलकर हमारे मार्गमें बाधक बन सके। इस तरह सरकारी और गैर-सरकारी उद्योग-धन्धोंको साथ-साथ चलनेका एक परिणाम दोनोंमें एक तरहकी स्वस्थ प्रतियोगिता भी होगी। यहाँ हमें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि अर्थनीतिका जो बड़ा खाका हम तैयार कर रहे हैं, उसकी कसौटी हमेशा अधिक उत्पादन और अधिक बाकारी ही होने चाहिएँ।

साधन-सामग्रीका सदुपयोग

मेरा यकीन है कि हम लोग अपने देशमें एक बहुत बड़े औद्योगिक विकासकी शुरुआत कर रहे हैं। इसके लिए हमें अपनी सारी साधन-सामग्रीका भरपूर उपयोग करना होगा और किसी भी चीजको बेकार नहीं खोना होगा। इसका आर्थिक पहलू तो महत्त्वपूर्ण है ही, किंतु इससे भी कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है औद्योगिक-क्रान्ति लानेके लिए सुशिक्षित और सुदक्ष व्यक्ति। मुझे खतरा यही दिखाई देता है कि सुदक्ष व्यक्तियोंकी कमीकी वजहसे हमारे औद्योगिक विकासकी गति कहीं धीमी न पड़ जाय। हमारे पास मानव-शक्ति काफी है—और कभी-कभी तो मानव-शक्ति पूंजी तककी जगह भी ले सकती है। लेकिन बिना सुशिक्षित मानव-शक्तिके हम ज्यादा दूर नहीं बढ़ सकते। इसलिए हमें अपने प्लानिंगमें पहलेसे ही यह तय करना होगा कि सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंके लिए काफी संख्यामें लोगोंको शिक्षा दी जाय।

बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंकी हम चाहे जितनी भी तरक्की क्यों न कर लें, लेकिन उतना ही जोर और व्यापक विकासकी चेष्टा हमें छोटे-छोटे उद्योगों और कुटीर शिल्पके लिए भी करनी पड़ेगी। कांग्रेसने हमेशा ही घरेलू उद्योग-धन्धोंकी तरक्कीकी माँग की है। आज तो उनकी तरक्कीकी जरूरत और भी ज्यादा है, क्योंकि बिना इसके न तो सारे बेकारोंको काम ही दिया जा सकता है और न कुल उत्पादन ही बढ़ाया जा सकता है। मेरी रायमें तो बड़े और छोटे उद्योग-धन्धोंमें किसी भी तरहका बुनियादी संघर्ष नहीं है, बशर्ते कि उन्हें उन्नत करनेका हमारा ढंग संतुलित और सुयोजित हो। (अवाडी-कांग्रेसको पेश की गई रिपोर्टसे)

निर्माण-कार्य और कांग्रेसजन

श्रीमती सावित्री निगम (सदस्या, राज्य-सभा)

हम सभी जानते हैं कि हमारे नवनिर्माण-यज्ञके दो ही बड़े शत्रु हैं—प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दल तथा देशवासियोंमें बढ़ती हुई चारित्रिक दुर्बलता। किन्तु खेद यह है कि देशमें आज कांग्रेस-जैसी महान् ऐतिहासिक एवं प्रतिष्ठित राजनीतिक संस्थाकी उपस्थितिमें ये दोनों शत्रु सिर कैसे उठा रहे हैं? कांग्रेस-जैसी संस्थाके, जो युग-निर्माता गांधीजीकी गोदमें पली और अब देशके सच्चे जन-नायक एवं हृदय-सम्राट नेहरूजीके पूर्ण वात्सल्यकी अधिकारिणी तथा जनताकी श्रद्धाकी पात्र होते हुए भी प्रतिक्रियावादी उचक्कोंके फुसलावेमें जनताका आ जाना या हमारी आपसी फूट, ईर्ष्या, द्वेष तथा गुटबन्दीके कारण उत्पन्न उथल-पुथल और रचनात्मक कार्योंमें रुकावटें—ऐसी वस्तुएँ नहीं हैं, जिनकी हम यों ही उपेक्षा करें।

दलबन्दियोंका दुष्परिणाम

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर दोषोंकी गठरी हम किसके सिरपर रखें—अपने या संस्थाके अथवा नेताओंके ऊपर? कुछ भी हो, यदि हम गणतान्त्रिक परम्परामें विश्वास रखते हैं और अपने तथा दूसरोंके साथ न्याय करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले यह गठरी अपने ऊपर ही रखनी होगी, क्योंकि संस्था तथा नेता दोनोंमें ही शक्ति एवं जीवन

भरनेवाला कार्यकर्ता ही होता है। वास्तविकता यही है कि हमारी कमजोरीके कारण ही, ये ही नही अनेक रोग हमें घेर रहे है। यह किसीसे छिपा नही है कि आज हमारा नवोदित प्रजातंत्र हमसे (कार्यकर्ताओंसे) जो त्याग व तपस्या, ज्ञान एवं सेवा चाहता है, वह हम नही दे रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि हमने शक्ति बढाने की धुनमें दलबन्दियों तथा गुटबन्दियोंको ही अपनी शक्ति नापनेका मापदण्ड बना लिया है। हमारी वह शक्ति, जो जनता-जनार्दनकी सेवामें लगनी चाहिए थी, छिद्रान्वेषण, प्रतिद्वन्द्विता तथा ईर्ष्या-द्वेषमें लग रही है। इस आपसी फूटका उद्देश्य पदोंको हथियाना ही होता है—हालांकि पदोंके मिलने-न-मिलनेमें ये गुटबन्दियाँ न सहायक होती है और न विशेष बाधक ही, क्योंकि कागजकी नाव आखिर कबतक पानीपर तैर सकती है? चाहे कोई दल कितना ही बडा क्यों न हो, लडाई-झगडेमें कितना ही शक्तिशाली क्यों न दिखे, उसकी शक्तिके निर्णायक उसके सदस्यों की बडी सख्या या उसकी तानाशाही न होकर उसके द्वारा की हुई जनताकी वे सच्ची सेवाएँ होती है, जो निःस्वार्थ भावसे की जाती है। यदि हम इस मनोवैज्ञानिक सत्यको आत्मसात् कर लें और दूसरोंसे जलने या उन्हें ढकेलकर आगे बढनेके बजाय स्वयं काम करनेमें जुट जायँ, तो काफी सुधार हो सकता है। आज हमारी बहुत बडी शक्ति योंही बेकार चली जाती है और हममें से अधिकांश लोग यही नही निश्चय कर पाते कि आखिर वे किस दल या गुटमें शामिल हों?

उपयोगिताकी सच्ची परख : सेवा

कार्यकर्ता सोचता है आखिर हमें एक-न-एकका तो होकर रहना ही पडेगा। वास्तविकता यह है कि दोनों बुरे अथवा दोनों अच्छे हैं। पर अक्सर वह दोनोंको ही गलत समझते हुए भी किसी-न-किसीसे मजबूरी दर्जे समझौता करके बहुत बडी आत्म प्रवचना करनेकी भारी भूल करता है। बडी विचित्र बात है कि आखिर अच्छे कार्यकर्ता अपनेको इतना पगु, इतना अपाहिज क्या समझते है कि बिना गुट्ट-रूपी सहारेकी लकडीके चल ही न सकें। वास्तविकता यह है कि जिन कार्यकर्तामें ऊँचा चरित्र, तीव्र बुद्धि, कार्य करनेकी शक्ति और लगन है, उन्हें अपने क्षेत्रमें

दीजिए। रुपया कभी किसी
उठा लीजिए, पर लोग उसे उ
रख लेंगे, चाहे जेबमें जगह हो
को अपना मूल्य बढानेके
यदि हर प्रकार हम अपनी
क्षमता, अपने विचार-कार्य-
कि हमारे बिना लोगोंका काम
हमारे लिए भरे-से-भरे स्थानमें
ढूंढ निकालेंगे।

हमारी उपयोगिताकी
हमारी सेवा ही है। इसमें
हमें यह देखना चाहिए कि हम
है, कितने दुःखियोंका
असहायोंको हम अपने
सफल हुए और कितनों
कराते हैं। मुहल्लेके कितने
हमने व्यवस्था की। हमारे
हमारे विषयमें क्या राय है?
साथ कितने लोग १० कदम
सच्ची एवं वास्तविक
होगा कि कार्यकर्ता उपेक्षा
अपने-अपने कार्यक्षेत्रमें
ईश्वरपर विश्वास
सुलभ एवं सरल होता है।
पैदा होनेके पूर्व प्राकृतिक
की पूरी व्यवस्था हो जाती है,
उसके दूधकी व्यवस्था हो
की शक्ति यदि है, तो क्या
कमी रह सकती है? यदि
विश्वास कर लें, तो न तो हमें
ईर्ष्या ही हो, न यह चिन्ता
आयगा? और हमारी
कार्य-रूपी उस सीढीपर ही
कदमोंसे यदि हम चल सकें,
लगेंगे। इसी मार्गपर
पंडितजी विश्वके नेता बने

होनेमें कोई कसर नहीं रह जाती। आज आवश्यकता इस बातकी है कि कांग्रेस-कार्यकर्ता अपना दृष्टिकोण, अपना मापदण्ड और अपनी भ्रमात्मक मान्यताएँ बदलकर उसी त्याग, तपस्या और सेवाका व्रत धारण करें, जिसको धारण करके उन्होंने देशको आजाद किया था। देश-निर्माणकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी भी उन्हींपर है, जिन्होंने देशवासियोंको इस योग्य बनाया कि वे इसे 'अपना देश' कह सकें। हमें यह मालूम है कि चाहे देश-निर्माणकी बात हो, चाहे जन-सेवाकी, दोनोंका रास्ता रचनात्मक कार्य ही है। रचनात्मक कार्यों द्वारा ही हम जनताकी श्रद्धा-रूपी सम्पत्ति अर्जित कर सकते हैं और निर्माण-यज्ञमें भी हमारा सक्रिय सहयोग अर्पित हो सकता है। यों तो निजी तौरपर हमें काम करनेकी खुली छूट है और हममेंसे हरएकको करना भी चाहिए।

कांग्रेसके दफ्तरोंकी हालत

अब हमें इन बातपर भी विचार करना चाहिए कि हमारे रचनात्मक कार्योंका संचालन, संयोजन एवं निरीक्षण करनेमें हमारी कांग्रेस कमेटियाँ क्यों सहायक नहीं हो रहीं हैं? क्यों वहांका वातावरण कुछ अजीब और खेदजनक है। इसका सबसे गहरा अनुभव मुझे उस समय हुआ जब एक विदेशी सम्मानित मेहमानने यह इच्छा प्रकट की कि उन्हें कांग्रेस-कमेटियोंके दफ्तर दिखाए जायँ। इतना समय नहीं था कि कोई पूर्व सूचना या तैयारीका अवसर दिया जा सकता। पहले दफ्तरमें ११ बजे पहुँचनेपर हमें झाड़ू लगाता हुआ एक लड़का नजर आया। पूछनेपर हमें मालूम हुआ कि सेक्रेटरी साहब घरपर हैं और चपरासी कहीं गया हुआ है। दूसरे दफ्तरमें आफिस सेक्रेटरी साहब मेजपर पैर रखे हुए बैठे थे। दो उनके मिलनेवाले सामने बैठे थे। बातें इतनी जोर-जोरसे हो रही थीं कि अगर बीच-बीचमें हँसी न सुनाई देती, तो हमें यह विश्वास जरूर हो जाता कि लड़ाई हो रही है। बातका विषय था कि किस-किस तरह उन्होंने अपने विरोधियोंको हराया। एक पानीकी भरी तश्तरी मेजपर रखी थी। कमरेके बाहर सहनके एक कोनेमें पानकी पीक और थूक ने पूरी जगह लाल हो रही थी। हमारे मेहमानको देखकर सबलोग अव्यवस्थित हो गए और मेहमानोंके प्रश्नोंका उत्तर भी बखूबी दिया गया। उन्होंने पूछा—'कांग्रेसमें कितने डिपार्टमेंट हैं? कांग्रेस-कमेटी क्या-क्या रचनात्मक कार्य करती है? कितने सदस्य रोज आफिस आते हैं? स्त्री-विभागमें कितनी स्त्रियाँ हैं? वे क्या-क्या काम करती हैं? क्या उनके निरीक्षणमें कोई शिक्षा या समाज-सेवाका केन्द्र चल रहा है? सक्रिय



स्वयं नेहरूजी द्वारा प्रस्तुत जन-सेवा-कार्यका आदर्श

सदस्योकी सख्या कितनी है ? क्या उनके लिए रोज दफ्तर म आना अनिवार्य है ? या सप्ताहमे कितनी वार सब मिलते हैं ? शारीरिक श्रम करनेके लिए क्या-क्या योजनाएँ हैं ? नशेबन्दीके लिए क्या-क्या काम काग्रेस-कमेटियाँ कर रही हैं ? कितनी काग्रेस-कमेटियाँ आज देशमे हैं अथवा दुनिया ने गाधी-साहित्य पढकर क्या किसी सस्थाकी रूप-रेखा तैयार की है ?' इन प्रश्नोके अनुरूप हमारे कितने प्रतिशत कार्यालय खरे उतर सकते हैं, इसपर हमे गम्भीरतासे विचार करना होगा।

न करो, न करने दो !

जब देशमे छिडे निर्माण-यज्ञमें आज जन जनके सहयोग की आवश्यकता है, जब दासत्व-कालके प्रभाव, आलस्य, शारीरिक श्रमके प्रति घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, रिश्वत, फूट आदि दूर करनेका बडा कठिन एव अत्यन्त विशाल कार्य हमारे सामने है, तो काग्रेस-कमेटियाँ अपनेको केवल चुनाव-दफ्तर बनाकर अपना कर्तव्य पूरा करनेका दावा कैसे पूरा कर सकती हैं ! यदि हम अपनेको दिवालिया नही बनाना चाहते, यदि हमें अपने बीच गाधी और विनोबाको जीवित रखना है, तो हमें काग्रेस-कमेटीके कार्यालयोको समाज-सेवा केन्द्रोका रूप देना होगा और वहाँ सेवाग्रामका वातावरण उत्पन्न करके जन-जनके हृदयमें सेवा, त्याग और कर्तव्य-निष्ठा भरनी होगी । न जाने कितना मानव-श्रम देशमें बेकार पडा है । यदि हम कोई भी रचनात्मक कार्य प्रारभ कर नौकरी मिलनेकी प्रतीक्षामें बेकार बैठे नवयुवको और विवाहकी प्रतीक्षामें बेकार बैठी नवयुवतियो तथा अवकाश-प्राप्त रिटायर्ड कर्मचारियोके सहयोगका आह्वान करें, तो हमारा कार्य बडी ही सरलतासे आगे बढ सकता है। पर सच्ची बात तो यह है कि नए रक्तको लेना तो दूर रहा, अधिकतर लोग उन्हे निरुत्साहित करते या उनकी उपेक्षा करते हैं। उन्हे यह तो भय रहता ही है कि कहीं ऐसा न हो कि वे अधिक काम करके प्रतिष्ठा प्राप्त कर लें ! साथ ही यह भी चिन्ता रहती है कि उनकी अकर्मण्यता कहीं और भी उभर न आय। इसी प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर स्त्रियोकी भी उपेक्षा की जाती है। नई और पुरानी सभी काग्रेस महिला-कमेटियोकी यह शिकायत बहुत अशोमें सही है कि उन्हें उत्साहित करना या सहयोग देना तो

आलस्य और

पर सबसे पहले ऐसे लोगो
यह बताना उचित होगा कि
को भी यह सोचना चाहिए कि
ऐसी बीमारी नही है,
ऐसे कर्मठ कार्यकर्ताकी उप
इलाज है, जो उत्साही हो और
एव लगन हो। दूसरे उन्हे यह
वे स्वय नही कर पाते, तो कम
क्योकि सार्वजनिक कार्योमे
विशेषको न मिलकर सस्थाके
ही मिलता है। उसमें निक
उसका अधिकारी बन जाता
आलसी व्यक्तियोके लिए अ
रास्ता है कि वह अधिक-से-
व्यक्तियोको अपने साथ लेकर
काम कराय, तभी वह धीरे-
कमीके गहरे गड्ढेको सामूहिक
सस्थाकी भी निर्धनता दूर होगी
जिस काग्रेस-कमेटीके अधिकार
युवक समुदायको क्रियाशील
कार्यक्रम बनाकर उसे उनके
हो जायँ, उन्हे फिर निश्चिन्त
पूरी स्वतत्रता भी मिल सकती
तथा नवयुवकोको धीरे-धीरे
का ढंग और सामाजिक कार्योके
साथ ही काग्रेसके प्रति ल
बढेगी।

हमें यह भी सोचना च
कोई आय और कहे कि हमारे
तुम्हारे लिए यह किया, वह कि
कुछ-न-कुछ दे दे, पर आपसे य
कि 'बापूने तो किया, पर तुम
कर रहे हो ?' आज जनत
कहलानेवाले समुदायकी ओर
है और वह हममें लगन, क
त्यागके प्रति

८ १० वर्ष पूर्व थी, तो आज भी हम चुनावोंके समय वोट माँगने न जाना पडता और अन्य पार्टियोंकी तरह हजारों रुपए खर्चकर चुनाव प्रचारमें जुटनेकी आवश्यकता न पडती।

ठेकेदारी मनोवृत्तिका अन्त

यदि आजादी मिलनेके पूर्व जो श्रद्धा एवं सहानुभूति कांग्रेसके प्रति जनता में थी, उसे हम सुरक्षित रखना चाहते थे, तो हम तुरन्त ही देशके नवनिर्माण कार्यको आगे बढानेके लिए रचनात्मक कार्यों और नशा निषेध तथा कुरीतियोंके दमनका कार्य कांग्रेस-कमेटियोंको सौंपना चाहिए था। हर मण्डल हर तालुकेमें स्कूल क्लब अध्ययनशाला शिल्प-केन्द्र, सफाई एवं स्वास्थ्य-कमेटी नशाबन्दी-कमेटी घूस तथा दहेज विरोधी दलोंका निर्माण करके आज भी हम फिरसे जनता जनार्दनकी श्रद्धा एवं प्रेमके अधिकारी बन सकते हैं। जिस स्थानमें कांग्रेस कमेटियाँ ये कार्य उठा लेंगी और सुचारु रूपसे चलाने लगेंगी तथा हर व्यक्तिको पूरा सहयोग और काम करने तथा नेतृत्व करनेका पूरा अवसर प्रदान कर सकेंगी वहाँ हमें चुनावोंके अवसरपर न उस ठाट-बाट, दिखावेबाजी पैम्फलेट-पोस्टरका आश्रय लेना पडेगा और न किराएके टट्टू कार्यकर्त्ता ही रखने पडेंगे। बिना माँगे बिना बुलाए ही, हमारे तमाम साथी, शिष्य तथा सदस्य हमारे लिए स्वयं मरने मिटनेको तैयार रहेंगे। पर हमें बहुत ही समझदारीसे काम करना होगा—विशेष रूपसे अपनी उस प्रवृत्तिको जिसे हम मठाधीशोंकी प्रवृत्ति कह सकते हैं या ठेकेदारी, बदलना होगा। जिस प्रकार मठाधीश मंदिरमें दूसरा पुजारी और ठेकेदार दूसरा ठेकेदार देख नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार आज जो लोग जहाँ अधिकार जमाए बैठे हैं, वहाँ सबको आमन्त्रित करना, सबका सहयोग लेना और सबको नेतृत्व तथा कार्य करनेका अवसर देना तो दूर रहा ऐसा वातावरण, ऐसा रुख एवं रवैय्या अख्तियार करते हैं कि कोई नया आदमी दुबारा वहाँ जानेका साहस ही नहीं कर पाता।

सार्वजनिक कार्योंकी बात उठते ही लोग रुपएका प्रश्न उठाते हैं। पर उसका कारण उनकी अनभिज्ञता ही है, क्योंकि हमारी राष्ट्रीय सरकार दोनों हाथोंसे जन हितकारी कार्योंके लिए हर प्रकारकी नई-पुरानी संस्थाओंको सहयोग दे रही है। यदि कांग्रेस-कमेटियाँ ऐसे कार्य हाथमें लें, तो उनको रुपए देनेमें सरकारको भी आसानी होगी और अन्य संस्थाओं जितनी छानबीन भी न करनी पडेगी।

ट्रेनिंगकी व्यवस्था

पर निर्माण-कार्य करना आजादीकी लडाई लडनेसे कम कठिन कार्य नहीं है। इसलिए आज आवश्यकता है कि हमसब ट्रेनिंग लेकर अपनी उपयोगिता बढायें। इस लिए हमें ट्रेनिंग-कैम्प खोलकर सारे कार्यकर्त्ताओंके साथ ट्रेनिंग देने और लेनेका प्रबन्ध हर स्थानमें करना होगा। सबसे आवश्यक एवं प्रथम ट्रेनिंग तो हर कांग्रेसके सदस्यका सेवा-दलकी ही लेनी चाहिए। ये ट्रेनिंग-कैम्प इसलिए भी बडे लाभप्रद एवं उपयोगी सिद्ध होते हैं कि हम अपने को जमानेकी रफ्तारके साथ चलनेलायक बनाकर सार्वजनिक कार्योंको करनेकी क्षमता हासिल करते हैं और साथ ही हममें और नए सदस्योंमें एक अजीब उत्साह एवं नई जिन्दगी भर जाती है।

फिलहाल हमने जन-सम्पर्कका एक बहुत ही हानिकारक ढंग अपना रखा है, वह है सिफारिश तथा माफी दिलानेका। ये दोनों कार्य करनेवाली संस्था कभी भी लोगोंकी कृपापात्र या श्रद्धाकी अधिकारी नहीं बन सकती। इसलिए यह बात पूरी तरह साफ हो जानी चाहिए और अखिल भारतीय एवं प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियोंको भी आदेश दिए जाने चाहिएँ कि कांग्रेस-कार्यालय सिफारिश-गृह न बनकर सार्वजनिक सेवा-गृह बनाए जायँ।



पंचवर्षीय योजना और उसकी

श्रीमती माया गुप्ता

यदि यह कहा जाय कि भारतमें सरकारकी ओरसे सबलोगोंके कल्याणके लिए ऐतिहासिक कालमें इतने बड़े पैमानपर कभी कोई बात नहीं की गई और हमारी पचवर्षीय योजना इस सम्बन्धमें पहला प्रयास है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। जब हम पराधीन थे, तभी हमारे कुछ नेता यह समझते थे कि भारतको आगे बढ़ानेके लिए यह जरूरी है कि एक राष्ट्रीय योजना बनाई जाय और उसके अनुसार देशका विकास किया जाय। १९३८मे योजना बनाकर देशको उन्नत करनेकी बात व्यवहारमें आने लगी थी। उस साल भारतीय कांग्रेसकी ओरसे राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की गई। श्री जवाहरलाल नेहरू इस समितिके अध्यक्ष बनाए गए। अभी यह समिति कुछ ही काम कर पाई थी कि द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और समितिके कई सदस्य उनके सीखचोंमें बन्द कर दिए गए। यद्यपि यह समिति कोई सरकारी समिति नहीं थी, फिर भी इसने मूल्यवान सामग्री एकत्र की। इसने जो प्रतिवेदन प्रकाशित किए, वे अब भी महत्वपूर्ण हैं।

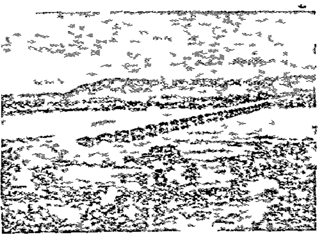
आज़ादीके बादकी मुसीबतें

इस प्रकार हमारे देशके लोग स्वतन्त्रतासे पहले ही योजनात्मक तरीकेसे नव निर्माणकी बात सोचने लग गए थे। इसके बाद १९४४में बम्बई-योजना प्रकाशित हुई। इसमें जो योजना बनाई गई थी, उसमें १० हजार करोड़ रुपए खर्च करनेकी बात कही गई थी। इस प्रकारकी कई अन्य योजनाएँ भी सामने आईं। यदि स्वतन्त्रता मिलने पर हमें शान्ति मिलती, तो योजना बनाकर काम करनेका सवाल फौरन उठता। पर अभी अच्छी तरह हमारे राष्ट्रकी नाव भी नहीं पड़ पाई थी कि चारों तरफसे इसपर विपत्तिके पहाड़ टूट पड़े और कई तरहकी जटिल समस्याएँ सामने आ गईं। महायुद्धके कारण हमारी आर्थिक व्यवस्था बिलकुल भंग हो चुकी थी। अँगरेज हमारे देशको इस स्थितिमें छोड़ गए थे कि समस्याओंके अलावा हमारे यहाँ अन्न-समस्या भी पैदा हो गई थी। बँटवारेके कारण सिद्धान्तय प

थोड़ी-बहुत चीजें थी, ७
हो रहा था। रेलोंका
इसलिए यो ना बनाकर काम
खेतीके सम्बन्धमें यह
से अधिक लोग जमीनपर
थी, वह ढगसे नही होती थी।
थी। मिस्र और जापानमें
है, देखा गया कि भारतके तीन
गाँवोंके उद्योग धन्धे लुप्त हो
अच्छी हालतमें नहीं थे।
बनाकी एक ही बारमें
स्वतन्त्रता तो मिल चुकी थी,
को उठानेकी आवश्यकता थी
अपनी अवस्था सुधारनेके
तो मालूम हुआ कि हम अ
न हमारे पास प्रशिक्षित लोग

प्रथम पंचवर्ष

इन परिस्थितियोंमें
नियुक्ति हुई जिससे कि वह
तैयार करे और ऐसी योजना
असरदार तथा सतुलित ढगसे
सन् १९५१की जुलाईमें
अधिक सार्वजनिक आलोचना
शित कर दिया गया। यह
राज्यों तथा जनमतके प्रतिनि
गया था। आयोगको इसके
हुए, उनकी रायोंमें मस
सन १९५२के दिसम्बरमें
वर्षीय योजना अपने अन्तिम
जवाहरलाल नेहरूके शब्दोंमें
अधिक-से-अधिक मतैक्यका
योजनाके दो मुख्य



महानदीपर बना हिराकुड बांधका पुल

करना था। जो प्रथम पचवर्षीय योजना है उस हम २५ साल तक फैली हुई एक लम्बी योजनाका अश कह सकते है। सैकडो वर्षोंसे जो बातें बिगडी हुई ह वे पाँच सालोम न तो ठीक हो सकती हैं और न कोई एसी आशा ही रखता है। फिर भी प्रथम पचवर्षीय योजनासे जो लाभ होगा वह नगण्य नही कहा जा सकता। यह आशा की जाती है कि इस योजना के बाद राष्ट्रीय आय नौ हज़ार करोड रुपएसे बढकर दस हजार करोड रुपए हो जायगी। १९६५के बाद हमारी राष्ट्रीय आमदनी बहुत तेज़ीसे बढगी, और १९७८में यह दुगुनी हो जायगी।

पचवर्षीय योजनाके दूसरे लक्ष्यकी पूर्तिके लिए, यानी सामाजिक न्याय स्थापित करनके लिए, सबसे बडा कदम जमीदारी प्रथाके नाशके रूपमें उठाया गया है। मृत्यु कर-कानून तैयार है। काश्तकारोकी रक्षाके लिए और पिछड हुए वर्गोंकी उन्नतिके लिए जो उपाय किए जा रहे है उनका लक्ष्य यही है कि वे लोग आर्थिक उन्नति करें।

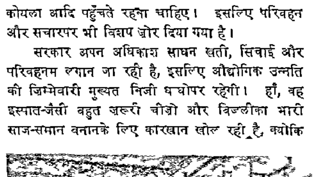
पचवर्षीय योजनाम किस प्रकार खच हो रहा है उसका लेखा इस प्रकार है

कार्य	लागत (करोड रुपयोंमें)	लागतका प्र०
खती और सामूहिक विकास	३६१	१७५
सिंचाई	१६८	८१
बहुमुखी सिंचाई और बिजली उत्पादन-योजना	२६६	१२९
बिजली	१२७	६१
परिवहन और सचार	४९७	२४०
उद्योग धन्ध	१७३	८४
सामाजिक सेवाएँ	३४०	१६४
पुनर्वास	८५	४१
विविध	५२	२५
	२,०६९	१०००

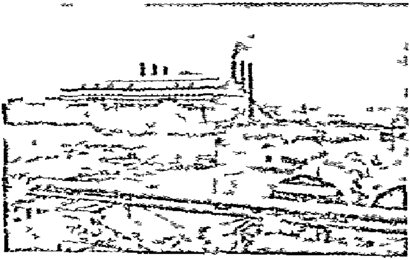
खेती, सिंचाई और परिवहन

बेकारी दूर करनके लिए लगभग २०० करोड रुपएकी पूँजीकी व्यवस्था और की गई है। ऊपर जो आँकड दिए गए हैं उनपर ध्यानसे विचार करनपर यह ज्ञात होगा कि हमारे यहाँ अन्नकी समस्या सबसे बडी है, इसलिए हमारी योजनाम सिंचाई और बिजली उत्पादनको सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। हमारे यहाँ दो तिहाई लोग खतीपर निर्भर भी करते हैं पर उनकी सम्मिलित आय कुल आयकी आधी है जबकि १७ या १८ प्रतिशत बाकी आयके अधिकारी हैं। यहाँ खती भी विशष उन्नत नही है। अन्न तथा कच्चे मालके उत्पादनमें यथष्ट वृद्धि किए बिना औद्योगिक उन्नति हो भी नही सकती। बिजली उत्पादन इसलिए जरूरी है कि देहाती धन्धोंके पुनरुद्धारके के लिए इसकी आवश्यकता है। उत्पादन बढेगा, तो उसीके साथ-साथ परिवहनका बढना भी जरूरी है। बना हुआ माल इधरसे उधर भजनके अतिरिक्त कच्चा माल और कोयला आदि पहुँचते रहना चाहिए। इसलिए परिवहन और सचारपर भी विशष ज़ोर दिया गया है।

सरकार अपन अधिकाश साधन खती, सिंचाई और परिवहनम लगान जा रही है, इसलिए औद्योगिक उन्नति की जिम्मेवारी मुख्यत निजी धन्धोपर रहेगी। हाँ, वह इस्पात-जैसी बहुत जरूरी चीज़ो और बिज्लीका भारी साज-समान बनानके लिए कारखान खोल रही है, क्योकि



चितरञ्जनका इजन बनानका कारखाना



२२ करोड रुपएकी लागतसे बनी सिन्द्रीकी खाद फैक्टरी

इसके बिना हमारा आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता। कृषिके लिए सरकार किस प्रकारसे खर्च कर रही है वह नीचेके आकडोंसे मालूम होगा

खेती	१८४ २२ करोड रु०
पशु चिकित्सा पशु-पालन और दुग्ध-व्यवसाय	२२ २८
जगलात	११ ६९
सहकारिता आन्दोलन	७ ११
मछली उत्पादन	४ ६४
देहात विकास	१० ४७
सामूहिक विकास योजना	९० ००
स्थानीय निर्माण-कार्य	१५ ००
कमीवाले इलाकेके लिए कार्यक्रम	१५ ००
कुल	३६० ४१

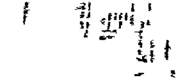
सामूहिक विकास-योजनाएं

सामूहिक विकास-योजनाएँ भी बहुत महत्वकी है क्योंकि इसके द्वारा उस परिवर्तनका सूत्रपात हो रहा है जिसके बिना हमारे देहाती भाइयोंके जीवनमें कोई तरक्की नहीं हो सकती। इस योजनाका मूलमंत्र है अपना काज आप करो। सरकार तथा सरकारी नौकर इस सम्बन्धमें केवल सही रास्ता दिखाने तथा एक हद तक आर्थिक सहायता और उपयोगी सामग्री पहुँचानेका ही काम करेंगे। सरकारी

तीन

इस समय तक न
इसलिए स्वाभाविक रूपसे
होगी कि अब तक हमने
भोजनको ही लिया जाय
जरूरत है। यह तो
अप्रलमें खाद्यकी कमी बहुत
के सामने लम्बी कतारें ल
था। पर अब कुछ
हो गई। सच तो यह है
भी भेज सकते है।
है। और यह सब
हमने १९४९ ५०के
टन अन्न अधिक उत्पन्न
१९५५ ५६ तक—यानी प
हमें ७६ लाख टन ही

केवल अन्नमें ही नही
आगे बढ चुके है। न
है। हमें १२५ लाख गाठ
करीब करीब उसके पास
में हमने जितना अतिरिक्त
विनिमयके १८७ करोड
कर १९५० ५१के
की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि



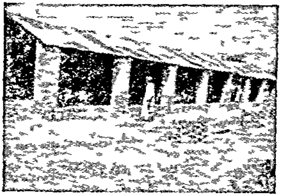
५३ लाख अतिरिक्त एकड़में नए कुएँ खुदवाए गए और पुराने कुओंकी मरम्मत कराई गई तथा तालों और नहरोंसे सिंचाई करके खेती हुई है। इसके अतिरिक्त नदी घाटी-योजनाओंसे २८ लाख एकड़ ज़मीनकी सिंचाई हुई है। इसी बीचमें ८ लाख १० हज़ार एकड़ जमीनका कांससे उद्धार किया गया। इस सम्बन्धमें भी यह स्मरण रहे कि पचवर्षीय योजनाके अनुसार १४ लाख एकड़ ज़मीनका कांससे उद्धार करना लक्ष्य रखा गया है। उपज बढ़ानेमें एक बात यह भी सहायक हुई कि किसानोंमें उन्नत बीज और रासायनिक खाद बहुतायतसे बाँटी गई। प्रतिवर्ष किसानोंको अधिक से अधिक कर्ज देनेकी व्यवस्था हो रही है। इस बातकी भी चेष्टा हो रही है कि किसानको अपनी उपजके लिए अधिक-से अधिक पैसे मिलें। १९५०–५१में जहाँ २८३ ऐसे बाज़ार थे जिनमें किसान नियत दामपर अपनी चीज़ें बेच सकता था, अब १९५३–५४में इस प्रकारके बाज़ार ३५६ हैं।



उत्तर प्रदेशमें एक वयस्क शिक्षण केन्द्र

किसानोंके मानसिक क्षितिजको बढ़ानेके लिए तथा रोजमर्राके कार्योंमें सहायता देनेके लिए सारे देशमें ४७९ सामूहिक योजना-खण्ड तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवा खण्ड स्थापित किए गए। ४ करोड़ लोगों तक उनकी रसाई होगी—यानी १९५५–५६ तक जितने लोगों तक पहुँचना था, उसमेंसे आधे लोगों तक हम पहुँच चुके हैं। यह तो मालूम ही है कि ज़मींदारी जागीरदारी तथा अन्य प्रकारकी प्रथाओंका क़ानून द्वारा अन्त कर दिया गया है। कई राज्योंमें किसानोंकी रक्षाके लिए भी कानून बन रहे हैं।

औद्योगिक क्षेत्रमें भी काफी उन्नति हुई है। १९५० की औद्योगिक-स्थितिका १०५ मानने हुए १९५३में यह अंक १३५ तक पहुँच गया। १९५४की प्रवृत्तियोंको देखकर यह कहा जा सकता है कि यह अंक कुछ और ऊपर बढ़ा होगा।



ग्रामीणोंके धन और श्रमसे बना एक ग्राम्य विद्यालय

१९५१में अमोनियम सल्फेटका उत्पादन ९६ हज़ार टन था १९५३–५४में वह ३ लाख २ हज़ार टन हो गया। गत तीन वर्षोंमें चित्तरंजन रेल इंजन कारखानेमें ११६ रेल इंजन बने। उड़ीसाके रूरकेला नामक स्थानमें सरकारकी ओरसे लोहे और इस्पातका कारखाना खुल रहा है। निजी धन्धोंके क्षेत्रमें भी बहुत अधिक उन्नति हुई। कपड़ेका उत्पादन बढ़कर ४९० करोड़ गज पहुँच गया और इस प्रकार १९५५–५६के लक्ष्यसे ४७० करोड़ गज अधिक कपड़ा तैयार हुआ। १९५३–५४में तैयार इस्पातका उत्पादन १०,८०० टन पहुँच गया जबकि १९५०–५१में सीमेंटका उत्पादन २६ लाख ९० हज़ार टनका था और ५३–५४में ४० लाख ३० हज़ार टन सीमेंट तैयार हुआ। १९५०–५१में १,०१,००० बाइसिकलें और ५३–५४में २,८९,००० बाइसिकलें बनीं। इसी प्रकार १९५०–५१में सिलाईकी ३२,९६५ मशीनें बनी थीं। १९५३–५४में

६८,७१४ मशीनें बनी। उद्योग धन्धोंकी जिन शाखाओ के सम्बन्धम याजना आयोगके लक्ष्य तय किए थे, उनकी भी अच्छी उन्नति हो रही है। कई नए कारखाने खुल रहे है और आगामी दो वर्षोंम उनका काम चालू हो जायगा।

नदी घाटी-योजनाआम भाखडा-नगलसे पानी चलने लगा है। *बिहारमें बोखारो थमल पावर स्टेशन चालू हो* चुका है। मयूराक्षी नदीस निचले हिस्सेका काय समाप्ति के निकट है। हाराकुड, तुगभद्रा, मयूराक्षी और दूसरे कार्योंपर काम जोरोसे जारी है। १९५३-५४ तक यह परिस्थिति थी कि नदी घाटी-योजनाआके कारण २८ लाख अतिरिक्त एकडोंकी सिंचाई हुई और साढ चार लाख किलो-वाट बिजली उत्पन्न हुई। बिजलीसे उद्याग धधा और खतीके क्षत्रमें लाभ हो रहा है। केवल यही नही इसके कारण लागाका रेडियोकी सास्कृतिक सुविधाएं प्राप्त हुई।

प्रथम पचवर्षीय योजनाम परिवहनपर ४०० करोड रुपए खर्च होन थ, जिनमेंसे प्रथम तीन वर्षोंम २०० करोड रुपए खच हुए। १९५४क माच तक ५१० नए रेल इजन, २७३४ सवारी गाडिया तथा २७० मालगाडियाँ और आ गई। राष्ट्रीय सडकोंके क्षत्रमें तीन सौ मीलका कार्य समाप्त हा चुका और बाकीमें काय जारी है। ६८ बड पुलामें २० प्रथम दो वर्षोंमें बनकर तैयार हो चुके ह तथा बाकी पुलोमें काम जारी है। ९० करोड रुपए खर्च होन हैं, उनम चुके हैं।

सामाजिक सेवाओके क्षेत्रमे हुआ है। डी० डी० टी० द्वारा ६ मलेरियासे सरक्षण दिया गया है। मलेरिया निरोधक दवाइयाँ दी गई भी अभियान जारी रहा। २ बी० सी० जी० परीक्षण किया गया लोगोको बी० सी० जी०के टीके मुकाबलेमें १६ रोगी निवास, २५ चिकित्सालय २४ वार्ड और ४८ योजनाके गत तीन वर्षोंम २० नए औषधालय, २९ देहाती अ *औषधालय तथा ४७९२ रोगी* क्षत्रम १९५३के अन्त तक ९ २७६ नए प्राथमिक विद्यालय त बुनियादी स्कूल खोले गए। की। बकारीको दूर करनके लिए १,८०८ सामाजिक शिक्षा कार्यकर्त्त प्रकार गत तीन वर्षोंम जो प्रगति और आशातीत है।

बाँधके पत्थर

श्री भीष्मकुमार

'कल मुन्नीके घरवालेपर बिजली गिर पडी। बचारा वहा जलकर राख हो गया। हड्डियाँ तक कोयला हो गई। पता नही, गरीब मुन्नीका कौन-सा पाप उजागर हो गया कि भरी जवानीमें रॉड हो गई!'

सन्ध्यार गुजरती हुई किसी स्त्रीके कण्ठसे *ऊपर कही* यान गुजार राधा चौंक उठी। बरसा बहुत हो रही थी। रात दिन हो गए पानी रुकनका नाम नही लता। न जान क्या होगा? मकान गिर रहे थे। लोग बघर बार हुए जा रहे थे। ऐसी बरसा न कभी दखी न सुनी थी। अगर

वह चौंककर उठ खडी देखनके लिए जाना ही होगा। *पर नाम ही नही लेती।* खल थी। एक कामसे कम नही। *अपन खून-पसीनसे सींचा था।* हो जायगा। नही, मैं उसे इस जब मन गर्मियोंमें ही अपन तो कौन इसमें ही हीरे मोती लग तजीके साथ घरसे बाहर भागी।

दे। –ओह, चली गई मालूम होती है। बड़ी ज़िद्दी लड़की है। किसीकी अपने सामने सुनती ही नहीं।"

रामलाल मन-ही-मन हरि-भजन करने लगा। बारिश में खटियापर उकड़ूं बैठे-बैठे रामलालने ये सात दिन बिता दिए थे। मुंहसे वह राधा-गोविंदका नाम ले रहा था और मनमें दोनोंकी मूर्ति बैठा रखी थी। धीरे-धीरे कन्हैयाके बराबरमें स्थापित उसके मनके भीतरकी राधाकी प्रतिमाने उसकी अपनी राधाका रूप ले लिया। बारह महीने बीत गए थे, जब उसकी बेटी भरी जवानीमें विधवा होकर उनके घर आ गई थी। पतिके मरनेपर ससुरालवालोंने भी उसे चैन नहीं लेने दिया। बहुत दिनोंसे रामलाल भी मोतिया-बिंदका रोगी था। इस साल भगवानने आंखें भी छीन लीं। राधा ही अकेली प्राण घरमें रह गई थी, जो खेतकी देखभाल कर सकती थी। कितनी ही बार रामलालने कोशिश की कि राधाको फिरसे किसीके पल्ले बांध दे, मगर ऐसा करनेपर गांववाले उसका हुक्का-पानी बन्द करने पर तुल गए। अन्तमें रामलालने सबके सामने घुटने टेक दिए। पंच-परमेश्वर यदि राधाको विधवाके रूपमें ही देखना चाहते थे, तो इसमें निरीह रामलाल कर ही क्या सकता था!

चारों ओर पानी-ही-पानी भरा था। सारे रास्ते पानीसे भरे होनेके कारण दिखाई नहीं पड़ रहे थे। राधा अन्धाधुन्ध खेतकी ओर भागी जा रही थी। कई बार बिजलीने कड़क-कड़ककर उसकी दृढ़ताको भंग करना चाहा। उसने घर लौट जानेकी सोची। खेत बचना होगा, तो अपने-आप बच जायगा। लेकिन एक ही क्षणमें उसके मस्तिष्कमें दो माह पूर्वका पूरा जीवन घूम गया। उसके पांव आगे बढ़ रहे थे और उसके अन्तर्नेत्र दो माह पूर्वके दृश्य देख रहे थे। जेठका महीना था। गर्मी कड़ाकेकी पड़ रही थी। सारे-के-सारे किसान खाली हाथ पड़े थे और आंखें फाड़-फाड़कर अपने-अपने खेतोंकी ओर देख रहे थे। उनमें गरम वायुके प्रचण्ड वेगसे बगूले उठते और उनसे जो धूल-भरी गरम हवा चलती, तो गालसे लगते ही रोमांच हो जाता था। तीन-तीन हाथके गन्ने गर्मीसे झुलसकर रह गए थे। नन्हें-नन्हें पौधोंकी तो किसान ही क्या थी? आषाढ़की रिमझिमपर ही सारी आशाएं टिकी थीं।

किन्तु आषाढ़ भी सूखा रहा। जानवर प्यासमें तड़प रहे थे। तालाब सूख गए थे। डोल कुओंकी तलीसे जाकर ठन्न-से बोल उठते थे। पहले तो इस महीने जानवर जंगलकी हरियालीसे ही तृप्त हो जाते थे, पर इस साल चारेकी कमी पड़ रही थी। जंगलोंमें हरियाली का स्थान धूलने ले लिया था। रोज़-रोज़ आदमी और जानवरोंके मरनेके समाचार फैलने लगे। आषाढ़ बीत गया था, पर कष्ट नहीं बीता था। मृत्यु अपना मुंह फाड़े गांवोंके क्षत-विक्षत कलेवरको निगलनेके लिए आगे बढ़ती आ रही थी।

चारों ओरसे निराश, दुर्बल हृदय, सीधे-सादे ग्रामवासी गांवके पुरोहितके पास पहुंचे। "पुरोहितजी, देवतासे कहकर बरखा कराइए। फसल चट हुई जा रही है। जानवर प्याससे मर रहे हैं। अब तो मनईकी जानके भी लाले पड़ गए हैं।"

"शान्त रहो।"—पुरोहितने भौंह चढ़ाकर कहा—"यदि बरखा चाहते हो, तो उसके लिए देवताको प्रसन्न करना होगा। देवता राज़ी नहीं है, इसलिए बरखा नहीं हुई। मुझे रात ही देवताने सपनेमें सब-कुछ बता दिया है। देवताको भेंट दो, वह तुम्हें बरखा देगा।"

गांवके पास बहती हुई नदीके पक्के बांधपर देवताका एक भग्न मंदिर था, जो अब पत्थर-मात्र रह गया था। उन्हीं पत्थरोंके ऊपर देवता विराजमान थे—एक छोटी-सी मूर्तिके रूपमें। सन्ध्या समय उसी मूर्तिके सामने एक मिमियाते हुए बकरेकी गरदनपर गंडासेका भरपूर वार करके पुरोहित-जीने मूर्तिपर उसके रक्तके छींटे दिए और गांववाले हर्षसे नाच उठे। अब बरखा होगी, देवता जागेगा, घर भर देगा! और फिर देवता जागा, बरखा हुई और उसने घर भर दिए—अनाजसे नहीं, पानीसे। देवता ज़रूरतसे ज्यादा प्रसन्न हो गया। इतना दिया, इतना दिया कि लोग त्राहि-त्राहि कर उठे!

एकाएक बिजली कड़क उठी और राधाकी विचार-तन्द्रा टूट गई। खेत पास ही आ गया था। बांध दिखाई पड़ रहा था। उसने देखा, बांधपर मोहन खड़ा है। वह और भी तेज़ीसे भागी। मोहन उसे देखकर चिल्लाकर बोला—"राधा, राधा, जल्दी आ, देख, बांधमें दरार पड़ गई है। पानी रिस रहा है।"

राधाने देखा, नदीके पानीने बाढ़का रूप ले लिया था। रेला-का-रेला उछलकर आता और कगारोंको तोड़कर अपने गर्भमें समा लेता। बहुत-से जानवर और फसलें बही जा रही थीं। किनारेके पेड़ अररराकर टूट पड़ रहे थे। कहींसे जानवरोंके रंभानेकी आवाज़ आ रही थी, तो कहींसे लोगोंके चिल्लानेकी। गांवकी फसलोंको नदीके असमय से बचानेके लिए जो पत्थरोंका बांध था, उसमें फुट-भर चौड़ी दरार पड़ गई थी।

"अब क्या होगा, मोहन ?"—राधा घबराकर बोली—"यह तो सारे खेतोंको चौपट कर देगा।"

"एक काम हो सकता है।" मोहनने कहा—"अगर इस दरारमें पत्थर भर दिए जायें, तो पानीका जोर तो कम हो ही सकता है।"

"पर पत्थर कहाँसे आएँगे ?"

"क्यों ? इस टूटे हुए मन्दिरके पत्थर जो है।"

"हाय राम!"—राधा सनका खा गई—"मंदिरके पत्थर! गाँववाले हमें जीता न छोड़ेंगे। याद नहीं, अभी दो महीने पहले उन्होंने इस मंदिरके देवताको बकरेकी बलि दी थी ?"

'हुँह!"—मोहनने कहा—"तो देवताने क्या दिया ? कुएँसे निकालकर खाईमें डाल दिया। क्या तू भी इन पत्थरोंको देवता समझती है ? हमारे गाँवका कुम्हार दिनमें ऐसे दस देवता बना सकता है।"

'नहीं, नहीं, ऐसा हवन किस कामका, जिसे करते हाथ जलें ? गाँववाले मार ही डालेंगे। कुछ और तरकीब सोचो।"

'और कोई तरकीब नहीं है।"—मोहनने सिर हिला कर कहा—"ऐसे वक्त भी आते हैं, जब घहराती हुई मुसीबत को रोकनेके लिए मनुष्यको अपने सारे विश्वास होम देने पड़ते हैं। देखती नहीं, पानीसे पौधोंकी क्या दशा होती जा रही है ? राधा, पागल न बन, काममें हाथ बँटा। जिन पौधोंको तूने अपनी माया निचोड़कर सींचा है, उन्हें इस तरह डूबनेसे बचानेमें मेरी मदद कर।"

राधाने देखा, दरारसे पानीकी तेज धार खेतमें जा रही थी। पौधे उखड़े चले जा रहे थे। वे पौधे, जिनमें राधा और मोहनने अपना संयुक्त श्रम लगाया था, रह-रहकर खड़े होनेकी चेष्टा कर रहे थे और जब हो नहीं पाते थे, तो सहसा ढहकर बाढ़के पानीके साथ बहने लग जाते थे। राधाको लग रहा था, जैसे उसका सारा सुख, श्रद्धा, विश्वास और आशाएँ वहीं चली जा रही हैं। उसे याद आया जिस समय बरखा बुलानेके लिए गाँववाले निरीह बकरेकी गर्दनपर गँड़ासा चला रहे थे, वह अपने खेतमें अपने कुएँके बचे खुचे पानीसे खेतको सींचनेका प्रयत्न कर रही थी। उसे मालूम भी नहीं था कि कबसे मोहन अपनी बैलगाड़ी हाँकता वहाँ आ खड़ा हुआ था और उसने कहा था—"राधा,

मोहन हँस पड़ा था।
वह पानी क्या देगा ? अरे,
करनेसे बरखा हुई होती,
न पड़ता ला, मैं भी बैठा

"नहीं, तू जा, अपना
ही मरना है। और जब
तत्पर हो गया था, तो राधाने
रे, यह तैमूर लँगड़ा कौन था

"क्या जाने कम्बख्त
की किताबमें पढ़ा था।"
"कहते हैं एक लाख
था। अरी, तुझे अकड़ बहुत
रहेगी, मगर मोहनका हाथ
समझती है कि मैं फालतू हूँ,
कह रहा हूँ ? अब भी
पानी बच रहा होगा। मैं
छिड़के देता हूँ। देवताके
रहे, तो सारा साल पेटपर

"तू तो बुरा मान गया
मना करती हूँ ? जिसे मदद
थोड़े ही है ?"

तब मोहनने और उसने
खोदा था। यहाँ तक कि
और वे कम-से-कम तीन
इसके बाद राधा और मोहनने
प्रकार सींचा था। क्या ग
थे ? मगर वे तो देवताके
देवता प्रसन्न भी हुआ, तो
एक भारी समस्या बन गई

"राधा!"—मोहनने
देख, दरार और ज्यादा
चुप खड़े रहे, तो दरार बढ़ते

राधाकी आँखोंमें आँसू अ
था डर, तो दूसरी ओर उसके
विश्वास। सहसा उसने कुछ
मुखमुद्रा गम्भीर हो गई।
उठाया और दरारमें डाल

सकतेमें आ खड़ी हो गई कि मोहन चिल्लाया—"राधा, इन-लोगोंके आनेसे पहले जितने पत्थर दरारमें पड जायँगे, वे काम आयेंगे। अपने काममें लगी रहो।"

राधाने अपने हाथ और भी तेज किए और मोहन तो जैसे मशीन ही बन गया था। गाँववाले उन्हें देखकर चिल्लाए। सबसे ऊपर पुरोहितकी आवाज सुनाई पड रही थी—"अरे दुष्टो, अब तुम इस पापपर भी उतर आए! जो देवता बरखा लाया, जिसने गाँववालोंको हर मुसीबतसे बचाया, वही इस तरह नष्ट हो रहा है। उसका घर उजाडा जा रहा है!"

राधाको पत्थर फेंकने रहनेका निर्देश करके मोहन सीधा खडा हो गया। उसने चिल्लाकर कहा—"बडी अच्छी बरखा लाया है तेरा देवता कि सारा गाँव डूबा जा रहा है! अगर उसे मुसीबतसे बचाना था, तो मुसीबत लाता ही क्यो है? उसे आनेसे पहले रोकता क्यो नही?"

पुरोहित क्रोधसे बेहाल हो गया। उसकी लाठी थरथराने लगी। बीचमें बाढका पानी था, नही तो शायद वह दौडकर एक लाठी मोहनके सिरपर जमा ही देता। उसने कहा—"अरे पापियो, तुम दोनोंके पाप से ही गाँवपर यह मुसीबत आई है। क्या गाँववाले तुम्हें जानते नही? अब तो अपने इस पापको रोक दो, नही तो देवता तुम्हें भस्म कर डालेंगे!"

मोहनने छाती तानकर कहा—"तेरा देवता बडा न्यायी है कि दो प्राणियोंके पापका बदला सारे गाँवसे चुका रहा है! हम तो चाहते हैं कि इस पानीकी झडीको रोककर देवता ऐसी आग पैदा करे, जिसमें हम भस्म हो जायँ और गाँववालोंको बरखासे छुटकारा मिले। अगर तेरे देवता में इतना बल है, तो कर दिखाए न अपनी-सी।"

पुरोहित गाँववालोंकी ओर मुडा। उसके विश्वास-भाजन वे ही थे। वह उत्तेजित होकर बोला—"रे मूर्खो, देखते क्या हो? इन पापियोंकी बातोंको क्या सुन रहे हो? अगर देवताका मंदिर नष्ट हो गया, तो समझ लो कि इस बाढ को और कोई नही रोक सकेगा।"

गाँववाले आगे बढे। मोहन चिल्लाया—"भाइयो, अपने खेत और खलिहानके साथ जुआ न खेलो। इस बाँध में एक फुट चौडी दरार है। जब तक यह पत्थरोंसे भरी नही जायगी, कोई गाँवको नही बचा सकेगा। तुम धरती-माताके किसान हो। धरतीको छोडकर ऊपर आसमान की ओर न ताको। यह पुरोहित तुम्हें आसमानकी ओर ताकनेको कहता है, मै तुम्हें धरती-माताकी ओर ताकनेको कहता हूँ। इस बाँधको बनाए रखो, तो तुम लोग बाढसे बचे रहोगे। नही तो यह पुरोहित और इसका देवता खुद तो डूबेंगे ही, तुम्हें भी ले डूबेंगे। तुमने इन पौधोंको अपने हाथोंसे लगाया है, अपने रक्तकी बूँदोंसे सीचा था। आज देखो, ये सब पानीके सामने बेबस हुए बहे जा रहे हैं। इनकी ओर देखो, ये अपने नन्हें-नन्हें तिनकोंको डूबते हुए आदमी के हाथोंकी तरह तुम्हारी ओर उठा रहे हैं। इन्हें बचाओ। इस दरारमें सब मिलकर इस मंदिरके पत्थरोंको भर दो."

किसान सबसे ज्यादा व्यवहारिक मनुष्य होता है। उनकी आँखें अपनी डूबती-उतराती फसलोंकी ओर गईं कि पुजारीजी चिल्ला उठे—"अरे पापियो, पापकी बातें सुन-सुनकर क्यो नरकका द्वार खोल रहे हो? अगर मंदिरके इन पत्थरोंको हाथ लगाया, तो इन दो पापियोंकी तरह तुम भी रौरव नरकमें जाकर गिरोगे।"

मोहन अपने समस्त जोरसे चिल्लाया—"भाइयो, जब सारा गाँव बाढमें बह जायगा, तब भी तुम्हारे लिए रौरव नरक खुला हुआ है। इस जन्मके रौरव नरकसे अगले जन्मका रौरव नरक अच्छा है। देखो, देखो, राधाके भरे हुए पत्थरोंसे बाढका पानी कुछ रुकने लगा है । अगर यह दरार पूरी भर गई, तो हम बाढसे बच जायँगे। अगर यह पुरोहित तुम्हें रोकता है, तो इसकी मूर्त्तिके साथ इसे भी इस दरारमें फेंक दो.. ।"

हाथ कंगनको आरसी क्या! सचमुच दरारसे आते पानीका वेग बहुत कम हो गया था और राधाको सिवा उसमें पत्थर भरनेके कुछ और सुध नही थी। सारे गाँववाले चित्रलिखित-से खडे थे। किसीमें आगे बढनेकी हिम्मत नही थी। वे कभी पुजारीका मुँह ताकते, तो कभी मोहनका।

मोहनने जब यह देखा, तो बोला—"अगर तुम लोग अपनी संतानको भी अपने देवतापर वार सकते हो, तो वारो। मैं तुम्हें दिखाता हूँ कि किस तरह बाढ रुक सकती है. ...?"

मोहन अपने काममें फिर जुट गया। गाँववाले खडे देखते रहे। पुरोहित उन्हें बार-बार उकसा रहा था। किन्तु व्यवहारमें गाँववाले कुछ और ही देख रहे थे। उनके सामने दरार भरती जा रही थी और पानीका वेग कम होता जा रहा था। यहाँ तक कि जब पुरोहितने देखा कि उसका सारा प्रयत्न असफल जा रहा है, तो वह चिल्लाया—"अच्छा, अगर यह छोकरा इस बाढको रोक दे, तो मुझे इस देवतापर बलि चढा देना और अगर यह न रोक सके, तो इन दोनो पापियोंको देवताके आगे बलि चढाना होगा!"

इससे पहले कि गाँववाले कुछ बोल सकें, मोहन चिल्लाया—"मंजूर है!" पुजारीको हर्ष हुआ। दरार बहुत

लम्बी-चौडी थी। पानीका वेग बहुत तीव्र था। दो प्राणी उसे रोक सकें, यह लगभग असम्भव ही था।

गाँववाले तमाशा देख रहे थे। राधा और मोहन तेजी के साथ पत्थरोको दरारमें भरते जा रहे थे। अन्तमें जितने पत्थर वहाँ खडे थे, वे सब समाप्त हो गए, फिर भी नलके पानीकी तरह एक इचकी धारा दरारमे से निकल ही रही थी। राधा और मोहनने असहाय होकर इधर-उधर देखा। पुरोहित चिल्लाया—'देखा, ये पापी धारा को नही रोक सके। देवता अब भी अपना प्रकोप दिखा रहा है। मैं कहता हूँ कि अब वह इन दोनो नराधमोकी बलिसे ही प्रसन्न होगा अरे अरे, पापियो, यह क्या करते हो "

सबके देखते देखते मोहनने उस अतिम पत्थर—देवता की मूर्तिको उठाया और बाँधकी उस ओर उतर गया, जिधर दरारमें पत्थर फेंके गए थे। राधा चिल्लाई—'मोहन, यह क्या कर रहा है? वहाँ बहुत फिसलन है। काई जमी हुई है। पैर रपट जायगा हाय राम!"

मोहन सचमुच रपट गया था, मगर सौभाग्यसे वह सीधा दरारमें जाकर गिरा। उसने देवताकी मूर्तिको कसकर पकड रखा था। उसने एक पत्थर पाससे उठाया और उस मूर्तिको उस सूराखमें कसकर ठोक दिया, जहाँसे पानीकी पतली धारा बही आ रही थी। फिर ठोकनेवाले पत्थर को यथास्थान लगाकर वह अन्य पत्थरोको ठीक करने लगा।

गाँववाले इस चमत्कारको देखनेके लिए बाढके पानीको लाँघ-लाँघकर किनारेपर आ गए थे। दरारमें से आता पानी बिल्कुल बन्द हो गया था। मोहन दरारके किनारे पर खडा हुआ चिल्ला चिल्लाकर कह रहा था—"भाइयो, देखा, देवताने हमारे बाँधकी रक्षा की है। देखो, इस तरह

के देवताका यह उपयोग
इसका उपयोग यही है।"

पुजारीने कहा—"रे
करता है, तो अपनी पीठ
स्वय अपना शरीर
मोहन तो निमित्त-मात्र है

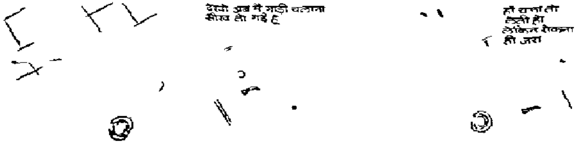
मोहन यह बात
अनर्थ होता देखकर
केवल इतना ही कहा—"
बीज डालते हो, तो फल
कहने-मात्रसे नही हो
करो ।"

और गाँववालोने
हरखू पहलवान उनकी प
पुरोहितजीको अपनी दोनो
हितजी गिड़गिड़ाते ही रह
आया था। उन्होंने
जो देवता मोहनके हाथ
सिद्ध हुआ, वह भी झूठा है

हरखूने एक पल
विरोधकी प्रतीक्षा की और
जीको बहती हुई नदीकी

गाँववालोने मोहनको
ऊपर खीचा। ऊपर
को तिलाजलि देकर उससे
ने कहा—"राधा और

जब अन्धे रामलालको
सुनाया कि अब राधाका
रामलालने प्रसन्नताके



न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

भारतीय समाज विश्वके इतिहासमे एक महती संस्था है। इसके अन्तर्गत करोडो मानवोका जीवन संचालित होता आया है और इसके आदर्शोके अनुसार चलकर वे अपनी विविध शक्तियोका संतुलन प्राप्त करते रहे हैं। इस समाज का इतिहास लगभग पाच सहस्र वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। इसके अन्तर्गत भारतीय समाज निर्माताओने मानवकी हितबुद्धिसे भौतिक और अध्यात्म जीवनकी अनेक संस्थाओका निर्माण किया है। भारतीय धर्म, दर्शन, आर्थिक जीवन, वर्ण और आश्रम ये और इसी प्रकारके अन्य कितने ही तत्व हमारे सामाजिक इतिहासमे महत्वपूर्ण प्रयोग कहे जा सकते है। पर इन सबमे सुलभ सुखकारी एव महत्वपूर्ण संस्था भारतीय परिवार है। यह अपूर्व ज्योति इस देशमे प्रकट हुई। इस आलोकसे पूर्व युगोमें यहाके मनुष्योको जीवनमे मार्ग-दर्शन मिला। आज भी उसकी भास्वर ज्योति हमारे लिए अत्यन्त प्रिय है। परिवार के रूपमें एसा रसका सोता हमारे समाजमें प्रकट हुआ, जो हरएकके लिए सुलभ था। उसने मानवके जीवनको सुख और शान्तिसे सींच दिया। हिन्दू परिवार हमारे परिवर्तनशील इतिहासमे स्थायी ध्रुव बिंदु है। इस संस्कृतिमें जो-कुछ भी वरेण्य और रसपूर्ण है, वह सब हिन्दू-परिवार इस एक सूत्रमे समाया हुआ है। इतिहासके किन्ही धुधले युगोमे परिवारका प्रथम आविर्भाव खोजनके लिए कई प्रकारकी कल्पना की जा सकती है, किंतु इस संस्था की नीवमें इसके उप कालमें ही इसके शिल्पी कविने मानो अमृतका घट स्थापित कर दिया था। इसी कारण कालके अनन्त प्रवाहमें हिन्दू-परिवारका अस्तित्व अक्षय है। श्रद्धा, यज्ञ, ज्ञान, तप, प्रेम सत्य, व्रत, नियम ये सब महान गुण मिलकर परिवारकी रक्षा करते हैं और उसे प्रत्येक पीढीमें नई शक्ति और नए रससे आगे बढाते है।

परिवारका मूल

स्त्री और पुरुष दोनो परिवारके मूल हैं। नदीके दो तटोकी भाँति वे सहयुक्त है। दोनोके बीचमें ही जीवन की धारा प्रवाहित होती है। वैदिक-साहित्यमें स्त्री और पुरुषके सम्मिलनकी उपमा पृथिवी और द्युलोकसे दी गई है। जैसे शुक्तिके दो दलोके बीचमें मोतीकी स्थिति होती है, वैसे ही स्त्री और पुरुष इन दोनोके मध्यमें संतान हैं। द्यावा-पृथिवी एक ही संस्थानके परस्पर पूरक हैं। आकाशचारी मेघ वृष्टि द्वारा पृथिवीको गर्भ धारण कराते हैं और तब वृक्ष-वनस्पतियोका जन्म होता है। यही स्थिति स्त्री-पुरुष या पति-पत्नीकी है। वे दोनो दो होते हुए भी एक है। दोनोके इस अभेदकी स्वीकृति विवाह-संस्कार है। तत्सम्बन्धी मन्त्रोमे यह बात स्पष्ट कही गई है

अमोऽहमस्मि सा त्वम्। सा त्वमसि अमोऽहम्।
सामाहमस्मि ऋक् त्वम्। द्यौरहं पृथिवी त्वम्।

अर्थात्—मैं यह हूँ। तू वह है। तू वह है। मैं यह हूँ। मै साम हूँ। तू ऋक् है। मैं द्यौ हूँ। तू पृथिवी है। दूसरे शब्दोमे कहे तो स्त्री वृत्तका व्यास है और पुरुष उसकी परिधि। जिस प्रकार ऋग्वेदके मन्त्रको ही आधार बनाकर उसे सामके गीतमें परिवर्द्धित किया जाता है (ऋचि अध्यूढं साम गीयते।—छान्दोग्य उपनिषद् १।६।१) और जिस प्रकार वृत्तके व्यासको तिगुना करके परिधि बनती है, उसी प्रकार स्त्रीके जीवनसे गुणित होकर पुरुषका जीवन बनता है। यही पति-पत्नी या गृहस्थके जीवनका साम-संगीत है। द्युलोक और पृथिवी-लोकके साथ पुरुष और स्त्री या पति-पत्नीकी उपमा देनेका स्पष्ट उद्देश्य यही है कि विश्व रचनाके मूलभूत हेतुकी भांति वे दोनो द्विधाविभक्त होते हुए भी जीवनके समस्त व्यापारो मे एक-दूसरेके लिए अनिवार्य है। जायसीने क्या ठीक कहा है—'होतें बिरवा भए दुइ पाता। पिता सरग औ धरती माता।।' जैसे ही सृष्टिका बीज अंकुरित हुआ, वह दुपतिया हो गया। उसमें आकाश पिता और धरती माता बनी। जैसे ही विधाताकी लेखनी यह अनन्त रहस्य भरी कथा लिखने चली, उसकी दो फाक हो गई। एक वृक्ष था, उसमें दो डाल फूट निकली। चाद-सूर्य, दिन रात, सृष्टिके सब द्वन्द्व एक-दूसरेके सघाती बने है। विश्वका यह विधान सृष्टिके ललाटपर अंकित है, जिसे जब जो चाहे पढ सकता है। इसके अनुसार गृहस्थकी व्याख्या हिन्दू धर्मकी उस सूक्ष्म दृष्टिको प्रकट करती है, जिसके द्वारा स्थूल और नश्वरका सबन्ध प्रकृतिके नित्य और सूक्ष्म विधान के साथ मिलानेका प्रयत्न किया गया था। धर्मशास्त्रके क्षेत्रमें मनुने इस तथ्यको स्वीकार करते हुए यह सिद्धान्त स्थापित किया—'यो भर्ता सा स्मृताङ्गना'। (मनुस्मृति, ९।४५) अर्थात् जो पुरुष है, वही स्त्री है। इस मत का उद्देश्य यह बताना है कि गृहस्थके जीवनमें जितना पतिका विस्तार है, उतना ही पत्नीका भी।

गृहस्थकी चर्चा करते हुए ऊपर संकेत किया गया है, उसके अन्तरालमें स्त्री और पुरुष समान रूपसे व्याप्त हैं। एक विद्युत्‌के समान और दूसरा चुम्बकके समान स्वधर्ममें प्रवृत्त होता है। एक दृढ़ और दूसरा सुकुमार है। दोनों एक ही तन्त्रके ताने-बाने हैं। भारतवर्षमें इसी आदर्शको सनातन कहा गया है। यह यहांकी प्राचीन गृहस्थोपनिषद् है, जो विश्वके ध्रुव विधानके अनुसार जीवनको प्रेरणा देती है। जो सूक्ष्म और नित्य है, वही मूर्त-रूपमें प्रकट होता है। अतएव गृहस्थके इन उच्च भावोंसे असंख्य परिवारोंने प्रेरणा ग्रहण की है और उस आत्मसात् किया है, जो परिवारके क्षेत्रकी निजी वस्तु है।

धर्म और यज्ञ

हिन्दू-परिवारके सम्बन्धमें 'धर्म' शब्दपर भी विचार करना आवश्यक है। धर्मसे तात्पर्य उन सत्यात्मक नियमों से है, जो व्यक्ति और समाजके जीवनको धारण करते हैं। यह धर्म कर्त्तव्यके रूपमें परिवारके प्रत्येक प्राणीके सम्मुख आता है। पिता, माता, पुत्र, बन्धु, जिनका परिवारसे नाता होता है, वे सब कर्त्तव्यके ऋणसे बँधे होते हैं। जहाँ कर्त्तव्य है, वहाँ विरोधकी स्थिति नहीं रह जाती। कर्त्तव्यका आग्रह व्यक्तिके विचार और कर्मको तनावसे ऊपर उठा देता है। उसके द्वारा व्यक्ति सेवाका मार्ग अपनाता है। इसी भावना का दूसरा नाम यज्ञ है, जिसमें व्यक्ति दूसरेके लिए अपने स्वार्थ और सुखका समर्पण करके दूसरोंको सहायता करने की युक्ति प्राप्त करता है। उस जीवन-विधिको यज्ञ कहते हैं। हिन्दू-परिवारकी व्यवहारिक स्थिति इसी भावनाके बलपर टिकी है। इस प्रकारके प्रेममय वातावरणमें परिवारके सदस्य स्वयं अपने-अपने कर्त्तव्यको पहचानकर उसका पालन करते हैं। दूसरोंसे छीन-झपटकर अपने लिए कुछ प्राप्त करनेकी बात वे मनमें नहीं लाते। यही पारिवारिक जीवनका रस है। इसी स्थितिका नाम स्वर्गका जीवन है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरेकी सहायता और सेवा करनेकी बात सोचता है, वही आदर्श स्थिति—स्वर्ग—है।

इसके विपरीत जब हम प्रत्येक वस्तुको अपने ही स्वार्थकी दृष्टिसे देखते हैं और अधिकारकी बात कहकर केवल पाने या लेनेकी ही आकांक्षा करते हैं, तो हम संघर्ष

प्रेमकी स्थितिका अधिकतम
प्रीतिका सौरभ सबसे मधुर
परिवार था। रामायणमें
वह स्वार्थपरताके ऊपर सेवा-
रामायणके आदर्शसे जो शीतल
हिन्दू-पारिवारिक जीवनको
वारिक जीवनके स्वास्थ्यके
की आवश्यकता है, वह
पूर्ण मात्रामें प्राप्त हो जाता है।

परम्पराकी जी

हिन्दू-समाजका जीवन
से सचालित होता है। जो
से नवीनके साथ मिलकर
इस परम्पराका क्षेत्र अत्यन्त
जो इसके अन्तर्गत न आता हो।
ज्ञान, भक्ति, पुण्य, दान, कथा
उत्सव, संस्कार, दया, उदारता
मूल्यवान , सब
सुलभ होते हैं। परम्पराकी
संस्कृति है। हम प्रायः आत्म
भारतीय समाजमें कहीं कोई
संस्पर्शसे बचाती है और जो
जन्म देती है। यह शक्ति
रूप है। परम्पराकी यह
पूर्वापर क्रमसे प्राप्त होती है
परिवर्द्धित होती हुई आगे बढ़ती
होनेके नाते हमें अपनी इस
होना चाहिए। समाजशास्त्रकी
के अनेक पहलुओंकी रक्षा की
और कर्मके कितने ही मूल्यवान्
अविच्छिन्न धारासे हमारे पास
साथ यह भी सचाईसे माना जा
प्रियताकी हमारी सामाजिक
करते रहनेसे ही स्वयं बची
विकास और संतुलित प्रगतिकी
सबसे अधिक देखी जा सकती
कुछ भी सुन्दर

है और समाजके प्रत्येक स्तरपर उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। सांस्कृतिक जीवनको सँभालनेके लिए कुल-संस्कृतिको ठीक करना आवश्यक है। प्राच्य देशोंकी सभ्यतामें कुलका अत्यधिक महत्व रहा है। कुलका आचार, कुलकी मर्यादा, कुलका गौरव इन शब्दोंका जीवनमें वास्तविक महत्व था। इनसे लोगोंके कर्म और विचारों पर नैतिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्योंके सब प्रयत्न कुलकी प्रतिष्ठाको ऊँचा उठानेके लिए होते थे। इस प्रकारके श्रेष्ठ कुलोंको महाकुल कहा जाता था।

कुलोंकी महत्ता

एक बार विदुरने युधिष्ठिरसे कहा—"असत्य और बलसे धन प्राप्त कर लेना संभव है, किन्तु महाकुलोंका जो आचार है, वह धनसे नहीं प्राप्त किया जा सकता।"

इसपर धृतराष्ट्रने कहा—'मैंने सुना है कि जो धर्म और अर्थमें बढ़े-चढ़े हैं, जो बहुत पढ़े-लिखे हैं, वे भी महाकुल की प्रशंसा करते हैं। हे विदुर, मैं जानना चाहता हूँ कि महाकुल किस प्रकार बनते हैं।"

विदुरने कहा—"तप, दया, ब्रह्म, ज्ञान, यज्ञ, सदा अन्न दान, शुद्ध विवाह और सम्यक् आचार—इन सात गुणोंसे साधारण परिवार भी महाकुल बन जाते हैं। जो किसी प्रकार सदाचारका अतिक्रमण नहीं करते, जो विवाह-सम्बन्ध ठीक प्रकार करते हैं, जो जीवनमें झूठका मार्ग छोड़कर धर्मका आचरण करते हैं, जो अपने कुलके लिए विशिष्ट कीर्ति उपार्जित करनेका प्रयत्न करते हैं, उनके कुल महाकुल कहलाते हैं। जो आचारसे हीन हैं, उन कुलोंमें कितना भी धन हो, वे कुल प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकते। किन्तु अल्प धन होनेपर भी सदाचार ठीक होनेसे कुल लोकमें यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और उनकी गिनती महाकुलोंमें होती है।" (मनु० ३।६३–६७, उद्योगपर्व, ३६।२१-२९)।

यहाँ बलपूर्वक यह मत प्रकट किया गया है कि धन कुलोंकी महत्ताका कारण नहीं, कुलकी ऊँचाई तो धर्मके पालन और परिवारमें होनेवाली धर्मके नियमोंकी नई-नई व्याख्याओंसे होती है। धर्मके सद्गुणोंसे परिवारका सिंचन करना यही परिवारके प्रत्येक सदस्यके मनकी अभिलाषा रहती है। परिवारको महान् बनाओ, श्रेष्ठ बनाओ, उसे रूप-संपन्न करो, प्राण-संपन्न करो, अर्थ, धर्म और काम-संज्ञक पुरुषार्थोंसे संपन्न करो, अपने जीवनकी शक्तिकी नवीन धारा उसमें प्रवाहित करो—इस प्रकारकी उत्साहमयी मानसिक स्थिति परिवारकी उन्नतताका कारण बनती है। कुलका प्रत्येक सदस्य सोचता है, मेरे कारण इस महती परम्परा का विशकलन न होने पाए, यह शृंखला मेरे द्वारा लुप्त न हो, मैं इसमें निर्बल कड़ी न बनूँ, जिससे इसका तन्तु उच्छिन्न हो। प्रत्येक गृहपति इस प्रकारकी भावनासे यावज्जीवन अपने परिवारका संवर्द्धन करता रहा है। पिता-माता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहनोंसे लहलहाता हुआ परिवार-रूपी भवनोद्यान कितना रमणीय और रसपूर्ण होता है, इसे शब्दोंमें कहना कठिन है।

स्त्रीका महत्व

ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दू-परिवार-रूपी वृत्तका व्यास या ध्रुव-बिन्दु पत्नी है—ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवास्त्री पतिकुले इयम्॥ (मामन्त्र ब्राह्मण, १।३।७)। स्त्री जीवनके रसका अक्षय्य स्रोत है। उसकी महिमाको किस प्रकार कहा जाय? विवाह-संस्कारके समय इस प्रकारके ओजस्वी स्वर सुने जाते हैं

> यस्या भूतं समभवत् यस्या विश्वमिदं जगत।
> तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणां यदुत्तमं यशः।

अर्थात्—यह सत्य ही है कि भूत और भविष्य समस्त जगत्के जन्मका कारण स्त्री है। उसके उत्तम यशकी आराधना भारतीय संस्कृतिमें भरपूर हुई है। इस सम्बन्धमें मनुके एक वाक्यपर विचार करना आवश्यक है, जिसे ठीक न समझनेके कारण स्त्रीके उत्तम यशको हम धूमिल हुआ मानने लगते हैं। मनुने लिखा है

> **पिता रक्षति कौमारे भर्त्तारक्षति यौवने।**
> **रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।**
>
> (मनुस्मृति, ९।३)

अर्थात्—कुमारी अवस्थामें पिता, विवाहित अवस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करते हैं, स्त्री-स्वातन्त्र्यकी अधिकारिणी नहीं होती। इस स्थूल अर्थके पीछे प्राचीन हिन्दू-धर्मशास्त्रका एक कानूनी सिद्धांत छिपा है। मनुके अतिरिक्त और भी धर्मशास्त्रोंका ऐसा ही मत था। गौतम धर्मसूत्रके अनुसार 'अस्वतन्त्राधर्मेस्त्री' और वशिष्ठ धर्मसूत्रके अनुसार 'अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना' आदि।

वस्तुतः तन्त्रका अभिप्राय कानूनी व्यक्तित्व है। स्त्रीका और पतिका तंत्र विवाहके समय एकत्र मिल जाता है। विवाह द्वारा स्त्री अपने 'स्व' को पतिके 'स्व' में मिला देती है। जन्मके समय पृथक्-पृथक् केन्द्रके जो दो वृत्त बनते हैं, वे कालक्रमसे एक-दूसरेके पास आकर परस्पर इस मिल जाते हैं कि उनका केन्द्र एक हो जाता है। और पुरुष-तंत्र इन दोनोंका एकान्त

काम, मोक्ष इनमें से प्रत्येक क्षेत्र और स्तरपर होता है। दोनोका काम-तत्र एक न हो, तो सतति नही हो सकती। स्त्री-पुरुषके काम-तत्रकी सर्वात्मना अभिन्नता ही गृहस्थके प्रजा-उत्पादन-रूप कर्मको पवित्र प्रक्रिया बनाती है। मन से, वचनसे, कर्मसे दोनोका काम-तत्र जब एक हो जाता है, उस तन्निष्ठ व्रतका नाम ही पातिव्रत धर्म है। व्यक्तिकी दृष्टिसे देखा जाय, तो एक ही आत्मतत्व स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी इन अनेक रूपोमे स्थूल पार्थिव उपकरणो द्वारा शरीर प्राप्त करता है। शरीरमे रहते हुए उसका व्यक्तित्व अनेक प्रकारके विचारो और कर्मोमे प्रकट होता है। इस प्रकारके जितने भी पहलू है, जितने भी क्षेत्र है, वे सब विवाह के उपरात स्त्री और पुरुषके लिए पृथक् नही रह जाते, रह नही सकते, अन्यथा उतने ही अशमें दोनोका मिलन अपूर्ण और खण्डित रह जायगा। अतएव हिन्दु-धर्मशास्त्रके अनुसार पति-पत्नीके काम-तत्रका विस्तार बिल्कुल अभिन्न, समान और एकात्मक है। उससे बढकर एकापन मार्गका या ऐकान्तिक धर्मकी कल्पना सम्भव नही। इसी प्रकार विवाह द्वारा दानके धर्मका तत्र भी एक हो जाता है। 'पत्युर्नो यज्ञसयोगे' (४।१।३३) सूत्रसे पत्नी शब्द सिद्ध होता है, अर्थात् विवाह-यज्ञ द्वारा जो स्त्री-पुरुषका सयोग होता है, उससे पत्नी अपना यह अनिवार्य पद और अधिकार प्राप्त करती है। इसी कारण यज्ञ पत्नीके बिना असम्भव है। तीर्थ, जप, होम, दान, व्रत सबमे स्त्रीका साहचर्य अनिवार्यतया आवश्यक है। जहा यह साहचर्य नही, वहाँ वह कर्म अपूर्ण है। कविने ठीक ही कहा है

> वधूद्विज· प्राहतवैष वत्से वह्निर्विवाह प्रति कर्मसाक्षी
> शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्त विचारयेति।
>
> (कुमारसभव, ७।८३)

पति-पत्नी दोनोकी धर्मचर्या यावज्जीवन साथ होनी चाहिए। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।६।१) के अनुसार 'सहधर्म चरतम्' प्रतिज्ञाके साथ किया हुआ विवाह-सम्बन्ध ही उत्तम प्राजापत्य विवाह है (मि० गौधसू० ४।५,)। रामायण (१।७३।२६) म जनकने इसी भावमे कहा है—'इय सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।'

युक्तविचार होकर साथ धर्माचरण करनेका तात्पर्य यह नही है कि स्त्री अपनी विचार-शक्ति, प्रेरणा और भावोकी तिलाजलि दे दे। इसका अर्थ इतना ही है कि

एक हो जाता है।
अभिन्नताकी बात कहकर
व्यक्तित्वको पतिके तत्रमें लीन
ले लिया जाता है। किन्तु
जो-कुछ पतिके तत्रमें है, वह
है। सिद्धान्त रूपमें इस
भी व्यवहारमें कई प्रकारसे
करनेकी अनुमति धर्म-
'स्त्री-धन' की सज्ञा दी
आदि अनेक प्रकार होते थे।
लिए पुरुष चुन लिया, उसे पति
प्राप्त कर ली, तो फिर
के उतार-चढ़ाव उस
इस आदर्श कानूनी मतके
शास्त्रकारोने कई प्रकारसे
भी स्वीकार किया।
या मृत हो जाय या सन्यास
तो पतिका तत्र तो उसके साथ
पर स्त्रीका तत्र उसके साथ
वह प्रत्यक्ष रहता ही है।
आवश्यक है। वह पुन.
कानूनी व्यक्तित्व मानना
आदि रख सकेगी और धन,
बन सकती है। यदि स्त्रीके
तत्र पुत्रके तत्रमें विलीन हुआ
स्थितिमें 'रक्षन्ति स्थविरे
होता है। स्त्री-धनके क्रित
हिन्दू-कानूनमें मान्य किया
हासिक विकास और कानूनी
सबके पीछे मूल सिद्धान्त
परिस्थितिमें स्त्री-पुरुषके
लौकिक और धार्मिक
हो जाते है। और इस
तत्र पतिके तत्रमे लीन रहता
कानूनी स्थितिसे उलझे हुए
जैसे जब युधिष्ठिर द्यूतमें
जो अपने पतिके तत्रमें न

दास स्वयं अधन होता है, वह धन नहीं रख सकता, और न दान ही कर सकता है। दासका तत्र स्व-तंत्र नहीं रह जाता, अतएव जैसे ही युधिष्ठिर दास हुए कि पत्नीका तत्र, जो पहले उनके पतिरूपमें लीन था, वह अलग हो गया। इस प्रकारका मत रखनेवाले कुछ अन्य सभासद् भी थे। इन्हीं प्रश्नोंकी विवेचना करके निर्णय देनेके लिए द्रौपदीने भीष्म का आवाहन किया था, किन्तु भीष्मने अपना स्पष्ट मत व्यक्त नहीं किया।

कौमार-अवस्थामें स्त्रीका तत्र पिताकी रक्षामें एवं उसके अधीन कहा गया है। यह स्थिति भी इसी बातकी द्योतक है कि यदि कुमारी कन्याका कानूनी व्यक्तित्व स्वीकार किया जाता, तो व्यवहारमें कोई उसे न्यायालयमें भी खींचकर ला सकता था। किन्तु यदि उसका कानूनी व्यक्तित्व नहीं है, तो उसे पिताकी रक्षा प्राप्त है, और न्यायालयकी रक्षामें उसे नहीं लाया जा सकता। इस प्रकारकी स्थिति केवल हिन्दू-धर्मशास्त्रकी ही विशेषता न थी। पुरुष-प्रधान गृहस्थ-धर्मसे संचालित समस्त आर्य-जातिका ऐसा ही धर्म था। रोम देशके कानूनमें भी ठीक मनु-जैसा ही सिद्धांत था। वहाँ कुमारी कन्यापर पिताका, विवाहित अवस्थामें पतिका और वृद्धावस्थामें पुत्रका अधिकार माना जाता था। यही पुरुष-प्रधान गृहस्थ-पद्धति (पाट्रिया पोटेस्टा) थी। ब्रह्मचर्य-आश्रम के नियमोंके अनुसार ब्रह्मचारीके लिए गुरुकुलमें निवास आवश्यक था। उस अवस्थामें यह कल्पना की जाती थी मानो ब्रह्मचारी उतने समयके लिए गुरुके गर्भमें वास कर रहा है। यह भाव आलंकारिक था। कालान्तरमें धर्मशास्त्रकारोंने विचार किया कि स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्तिमें इस प्रकारकी तल्लीन स्थितिकी कल्पना असम्भव है। अतएव विवाहको ही स्त्रीके लिए मौञ्जीबन्धन, उपनयन या गुरुकुलवास माना गया। पतिके जीवन-कालमें किस प्रकार पत्नी पतिसे अधिक अपने लिए शारीरिक-तत्रका विस्तार नहीं चाहती थी, इसका अच्छा उदाहरण गान्धारीका वह दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार उसने शारीरिक सामर्थ्यमें अपने पतिसे अधिक न होनेके लिए आँखोंपर पट्टी बाँध ली थी। एक आदर्श दृष्टिकोण यह भी था कि पति और पत्नीके तत्र एक-दूसरेमें इस प्रकार लीन हो जाते हैं कि जन्मान्तरमें भी अलग नहीं होते। पतिके शरीरसे प्राण वियुक्त होनेपर भी पति-पत्नीके तत्रोंकी अभिन्नता यमके लोकमें भी नहीं मिटती और यमको भी उसे स्वीकार करना पड़ता है। सावित्री-सत्यवान्‌का उपाख्यान स्वयं यमके द्वारा इसी व्याख्याकी स्वीकृति है। स्त्री और पुरुषका जीवन जब साथ-साथ बढ़ता है, तो पतिके परिवर्तनशील तत्रके साथ पत्नीके तत्रका विस्तार भी घटता-बढ़ता रहता है। राम-वनमें, सीता घरमें, यह दो तत्रोंका अमिलन होता, अतएव सीता छायाकी भाँति रामके तत्रका अनुसरण करती है। वनमें भी रावण उनका शरीर-मात्र हर ले गया, मनका तत्र रामके साथ अभिन्न बना ही रहा। इस प्रकार मनुने स्त्रीके पृथक् तत्र या स्वातन्त्र्यका निराकरण करके धर्मतत्त्वविद्‌की दृष्टिसे पति-पत्नीकी एकतत्रताका ही प्रतिपादन किया है। मनुकी भाषा कानूनी है। उसका अर्थ और परिणाम भी उसी प्रकार समझे जाने चाहिएँ। स्त्री-निन्दा और कुत्सा की दृष्टिसे कुछ कह डालनेकी भावना मनुके वाक्यमें नहीं है। आर्य-जातिकी सभी शाखाओंमें स्त्री-पुरुषके तादात्म्य-सम्बन्ध एवं उससे प्रेरित आर्थिक और सामाजिक व्यवहार की व्याख्या ही स्मृतिकारोंको इष्ट थी। इस विषयमें अर्वाचीन विचारधारासे विचार करते हुए हमारा मत कभी-कभी क्षुभित भले ही हो, किन्तु जहाँ तक हिन्दू-परिवारका सम्बन्ध है, दाय-भाग और उत्तराधिकारके नियमोंमें इस सिद्धांतके कारण कोई विशेष अड़चन उत्पन्न नहीं हुई और इस परिपाटीने संपत्तिके उत्तराधिकारकी एक ऐसी पद्धतिको जन्म दिया, जो बहुत दिन तक टिकी रही और जिसके कारण कम-से-कम वैषम्य या असुविधा उत्पन्न हुई। यों तो रिक्थ या उत्तराधिकारकी कोई भी प्रणाली सब परिस्थितियोंमें निर्दोष या त्रुटिहीन नहीं कही जा सकती।

हिन्दू-परिवार भारतीय संस्कृतिका संचालक सूत्र रहा है। समाजकी शक्तिका स्रोत परिवारका जीवन है। अनेक परिवर्तनोंके मध्यमें हिन्दू-परिवारकी यह ध्रुव और दृढ़ शक्ति बारबार उभरी हुई दिखाई पड़ती है। परिवार की इस शक्तिका विघटन समाजके लिए हितकारी नहीं हो सकता। नए परिवर्तन आवश्यक हैं, किन्तु उनकी अन्तिम कसौटी यही है कि उनके द्वारा परिवारका संघटन दृढ़ बने। उसकी शीतल वायु व्यक्तिके जीवनको कुसुम बनावे। उसमें एक-दूसरेके प्रति सरस सबंधोंकी सृष्टि हो। परिवारके सदस्योंके मन परस्पर उदार भावनाओंसे युक्त हों, और परिवारकी यह समष्टि एक संतुलित आदर्श समाजको जन्म दे सके। हिन्दू-परिवार सामाजिक जीवनके क्षेत्रमें इस देशका सबसे मूल्यवान प्रयोग है। उसे संवर्द्धित, पल्लवित और पुष्पित करना उचित है, ढीला करना नहीं।

इस समय भी हिन्दू-परिवारपर प्रभाव डालनेवाले आर्थिक सामाजिक तत्व सक्रिय हैं। एक प्रकारसे हिन्दू-परिवारकी पद्धति हिन्दू-समाजके स्वस्थ विधानकी कसौटी है।

कुटुम्ब और समाज दोनोंका हित एक है। वह संघर्ष और विरोधपर आश्रित नहीं। हिन्दू-परिवारके विधान का मौलिक सूत्र उसका वही अभिन्न तत्त्व है, जिसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है। एक मूल परिवारमें से आव-श्यकतानुसार चाहे जितनी नई शाखाएँ फूटती जाती हैं। हमारे देखते-देखते पुत्र पिता बनते जाते हैं और नए परिवारों के स्रष्टा हो जाते हैं, किन्तु मूल-पद्धतिमें अन्तर नहीं पड़ता। कुटुम्बका अन्तर्यामी पुरुष या उसकी आत्मा जिस स्रोतसे पोषण प्राप्त करती है, उसमें व्याघात नहीं पहुँचता। इस स्वाभाविक और सहज प्रणालीकी रक्षा करना आवश्यक है। अनेक कुटुम्बोंसे स्त्रियाँ अपना-अपना व्यक्तित्व लाती हैं और उनके पृथक् जल कुटुम्बके सम्मिलित सरोवरमें मिल जाते हैं। उस नए कुटुम्बका, जिसमें वे मिलती हैं, जितना

विस्तार हो, जो उसकी -
उसके सब क्षेत्रोंमें सब
दीजिए और उसके क
और व्यापक बनाइए, जैसे
न होनी चाहिए। यह
विधानके अनुकूल ही होगा।
को मिलाकर भी उसके प
न तो इस देशकी समाज
लिए हितकर ही है। -
है कि हिन्दू-परिवार-जैसी
स्वरूपको और भी संस्कार
बनानेका उपाय किया
परिवार'की भूमिका)

स्वावलम्बी स्त्रियोंकी सम

श्रीमती उमा राव, एम० ए०

भारतीय समाजमें आज एक नई समस्या—या यों कहिए कि एक नया वर्ग—उत्पन्न हो गया है, जिसे अँगरेज़ीमें 'वर्किंग वुमन' कहते हैं और जिसे मैं यहाँ 'कामकाजी नारी' के नामसे पुकारूँगी। कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि घर में रहनेवाली स्त्रियाँ निठल्ली बैठी रहती हैं और उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। किन्तु इस वर्गमें केवल नौकरी करनेवाली स्त्रियाँ ही शामिल हैं। १९४७ के बादसे यह वर्ग—या चाहें तो समस्या ही कह लीजिए—दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। फिर भी यह समाजमें अभी अपना स्थान नहीं बना पाया है। १९४७ में स्वतन्त्रता पानेके बाद कुछ तो नारी-जातिमें जागृतिकी लहर फैलनेके कारण और कुछ देशके विभाजनके फल-स्वरूप आर्थिक परिस्थितियों के कारण भारतीय नारीको प्रेरणा और स्फूर्ति मिली कि वह भी अपने पैरोंपर खड़ी हो, आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करे और पुरुषके समान अधिकार ले। संविधानने उसे ये अधिकार दिए भी हैं, किन्तु भारतीय नारीकी यह आकांक्षा आज समाजके लिए एक समस्या बन गई है।

'नारीका क्षेत्र घर है'—यह नारा तो सम्भवतः आदि-

लिए जाते हैं। धीरे-धी
अध्यापन-कार्य, डाक्टरी
और अब 'नारीके क्षेत्र'के
नारी-जातिकी मुठभेड़
णार्थ आफिसका क्षेत्र, ॰
इन संशोधनोंका फल नारी
समाज चाहता था कि नारी
बँधी-कसी बैठी रहे, वह
भावना केवल एक दिशामें
मुक्ति पाकर पूर्ण रूपसे
कहीं-कहीं नारीके बन्धन टू
नताका मार्ग उसके लिए
लिए क्योंकर वह समस्याके
अनेक दिए जाते हैं।
माना जाता है। किन्तु
समाजपर पुरुषोंका
उन्हें घबरा देता है। यह
अपनाई जा रही है, पर सब

पुरुष तो विरोधी है ही, स्त्रियोकी ओरसे भी प्रतिरोध कम नही है। घरेलू स्त्रियाँ नौकरी करनेवाली स्त्रियोके प्रति दो प्रकारके भाव रखती हैं यदि कामकाजी स्त्रियाँ उनकी परिचित नही हैं, तब तो उनपर चरित्रहीन होनेका दोष अकितकर दिया जाता है और यदि परिचित है, तो 'बेचारी' की उपाधि दे दी जाती है। 'बेचारी'की उपाधिके भी दो वर्ग हैं। जो विवाहिता हैं, उनके लिए सहानुभूति इसलिए है कि परिस्थितिवश उन्हे नौकरी करनी पड रही है और जो अविवाहिता हैं, उनके लिए सहानुभूति इसलिए है कि उन्हे कोई वर नही मिल सका। अपरिचित काम-काजी नारियोको चरित्रहीनकी उपाधि दान करना तो मिनटोका काम है। मित्र-मण्डलीमें पुरुषोका शामिल होना, मुक्त रूपसे घूमना-फिरना, चरित्रहीन होनके स्पष्ट प्रमाण मान लिए जाते हैं।

यह तो रही स्त्रियोकी ओरसे कष्टदायी आलोचना और अडचनें, अब पुरुषोके विरोधको भी देखिए। उनका घर और समाजपर आधिपत्य खो जानेका भय प्रधान रूपसे बाधक है। बाहर काम करने निकलिए, तो पहले पिता, भाई, चाचा आदि तरह-तरहकी रुकावटें डालेंगे। एक तो पुरुष घरकी बहू-बेटी या पत्नीसे नौकरी करवाना अपनी मानहानि समझते हैं, दूसरे उन्हे डर रहता है कि स्त्री कमाने लगी, तो उनका शासन स्वीकार नही करेगी। फिर भी किसी तरह पूर्ण शक्ति लगाकर जब वह काम करने पहुँची, तो वहाँ नई समस्याएँ आ खडी होती हैं। पुरुष किसी स्त्री को अफसर या अधिकारीके रूपमें देखना पसन्द नहीं करते। जो त्रुटियाँ वे किसी पुरुषके काममें नजर-अन्दाज़ कर देते हैं और मामूली बात समझते हैं, वही त्रुटियाँ स्त्रियोके काममे देखकर उन्हें अयोग्य निर्धारित करते देर नही लगती। इसके फल-स्वरूप द्वेष, ग्लानि और ईर्ष्याके भाव पुष्टि पाकर व्यक्त होने लगते हैं। अब स्त्रीके लिए अनिवार्य हो जाता है कि कार्यमें उसकी दक्षताका स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा हो, अन्यथा वह असफल ही गिनी जाती है।

फिर दूसरी समस्या है काम करनेवाले पुरुषोके साथ मित्र-भाव रखते हुए भी घनिष्टता न बढने देना। यदि इसमें इधर या उधर कोई भूल हो जाय, तो वह या तो दम्भ और अभिमान समझा जाता है, या घनिष्टता बढानेका निमन्त्रण। सहकारियोंमें यदि कोई इस धारणाके हुए कि कामकाजी स्त्रियाँ अनिवार्यत चरित्रहीन होती है, तो उनसे भी आचार-व्यवहार करना आसान नही होता। यदि उन्हें कुछ कह दे, तो ऐसा दुःसाहस करनेवाली स्त्रीकी चरित्र-गाथाका प्रचार होने लगेगा और यदि चुप रह जायँ, तो घनिष्टता बढानेके अनेक उपाय किए जान लगेंगे।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो नारीकी स्वाधीनताकी माँग को एक नासमझ, हठीले बालककी ज़िद्दी समझते हैं और उनकी स्वावलम्बी बननेकी आकाक्षाको क्षणिक खिलवाड मानते हैं। आफिसोमें वयोवृद्ध अफसरोका व्यवहार प्राय ऐसा ही होता है। वे समझते हैं कि पल-भर मन बहलाकर नारी ऊब जायगी और फिर घर बैठकर बाल-बच्चोका पालन-पोषण करेगी, जो कि वास्तवमे उसे करना चाहिए। कार्यशीलता या काममे निष्ठा उनके मनोरंजनका साधन होता है। इससे खीझ और कुढन तो होती ही है, साथ ही कामकाजी नारीका उत्साह भी कम हो जाता है। इस प्रकारके दृष्टिकोणका उदाहरण इस बार ससदकी एक बहसमें भी मिला था, जब विवाहित स्त्रियोको इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसमे न लिए जानेका प्रस्ताव विचारा-धीन था। श्री गाडगिलने स्त्रियोको सलाह दी कि 'आप लोग अभी देशके बजाय घरमें पुरुषोपर शासन कीजिए और प्रधान मन्त्रीके निर्णयका इन्तज़ार कीजिए।' जैसे किसी ज़िद्दी बालकसे कह रहे हो कि अभी तू यह बर्फी खाकर सो जा, फिर बाज़ार ले जायँगे, तो खिलौना ले लेना!

पुरुषोके विरोधका एक कारण और भी है। उच्च मध्य-वर्गके परिवारोकी कुछ महिलाएँ बहुधा समय काटनेके लिए नौकरी कर लेती हैं। उन्हें काममे विशेष दिलचस्पी नही रहती और वे ज्यादा दिन टिककर काम करती भी नहीं हैं। इन कुछ महिलाओके कारण बेरोज़गारी कितनी बढती है, या वास्तवमे बढती भी है या नहीं, यह कहना तो कठिन है, पर हाँ, पुरुषोको उच्च स्वरसे शिकायत करनेका मौक़ा अवश्य मिल जाता है। यह बात भी कामकाजी नारीके मार्गमे बाधक सिद्ध होती है। नौकरी या किसी भी कामको मन बहलावका साधन बना लेना बडी भारी भूल है, जो व्यर्थकी अडचनें पैदा कर देती है। निन्दा, आलो-चना, उपहास करनेके अतिरिक्त पुरुष शक्तिशाली तर्कके रूपमे इसीका उपयोग करते हैं।

इन सब कठिनाइयोके अतिरिक्त कामकाजी नारीके समक्ष एक अन्य बडी समस्या होती है रहनेका स्थान ढूँढनेकी। यदि वह विवाहित है, तो अपने पतिके साथ रहेगी ही। किन्तु यदि अविवाहित है, तब मुश्किलें आ पडती हैं। हमारे समाजकी हालत ऐसी नहीं है कि अवि-वाहित स्त्रियोके लिए घरमें अकेले रहना खतरेस बाहर हो। ऐसा मोहल्ला खोजना पडता है, जो सुरक्षित समझा जाता हो। किन्तु ऐसे मोहल्लोमें रहना अधिकतर मँहगा पडता है, जो कि कामकाजी नारीकी सामर्थ्यके बाहर है। तो रहना ऐसे ही मोहल्लेमें पडेगा, जो आयके अनुकूल हो।

मोहल्लेके मनचले नवयुवक समझेंगे—'अच्छा, एक नई चिड़िया आई है। देखें, क्या-क्या रंग दिखाती है!' आसपास पड़ोसिनें पूछेंगी—'तुम्हारी माँ-बहन कोई तुम्हारे साथ क्यों नहीं रहती? आजकलकी लड़कियाँ तो बस!' इस 'बस' की व्याख्या न करना ही मानसिक शान्तिके लिए बेहतर होगा। अधिकतर बड़े शहरोंमें होटल और होस्टल आदि होते हैं, पर यहाँ भी कठिनाई होती है। एक तो इनमें रहनेकी जगह मुश्किलसे मिलती है, दूसरे यदि इन

निवासस्थानोंमें से कोई
भी अछूते नहीं बचते।
किन्तु इतनी बाधाओं
कामकाजी नारी प्रगतिके
और धैर्यके साथ वह आगे
समाजमें अपना स्थान
धिकार' केवल स्वर्णाक्षर ही
लक्ष्य है।

स्व० बाबूराव विष्णु पराड़

प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

काशीमें महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी अच्छी खासी बस्ती है। यदि कहा जाय कि वहाँ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी संख्या अन्य दक्षिणियोंसे अधिक है, तो भी अत्युक्ति नहीं है। इन महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी आपसी भाषा मराठी होनेपर भी ये हिन्दी भाषी हैं। हिन्दी-पत्रोंमें ही ये लिखते हैं और आजसे ही नहीं, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समयसे यही नियम चला आता है। मराठी समाचारपत्रोंके ये पाठक तो हैं पर लेखक हिन्दीके ही हैं। हरि रघुनाथ भत्ते नामके सज्जन राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दके 'बनारस अखबार' के सम्पादक थे। इनके बाद प० चिन्तामणराव धड़फलेने भारतेन्दुके जीवन-कालमें उनके 'कविवचनसुधा'का सम्पादन किया था। इन्हीं दिनों दो और महाराष्ट्री पंडित भी हिन्दी लिखा करते थे। इनमें से एक थे प० दामोदर शास्त्री सप्रे और दूसरे प० विनायक शास्त्री बेताल। दामोदर शास्त्रीने सस्कृतकी एक मासिक पत्रिका 'विद्यार्थी' नामसे निकाल रखी थी। यह बांकीपुरके खड्गविलास प्रेसमें छपती थी। शास्त्रीजीने हिन्दीका एक व्याकरण भी लिखा था। दोनों पण्डित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहन-चन्द्रिका'में भी लिखते थे। सन् १८८० (सवत् १९३७)में एक और महाराष्ट्र पण्डित सोमनाथजी शारखडी उक्त चन्द्रिकाके सहायक सम्पादक थे। इनके पुत्र प० शिवनाथ शारखडी भी हिन्दीके प्रेमी हैं।

पराड़करजीका घराना

इन्हीं मराठी-भाषी पण्डितोंकी परम्परामें प० बाबू-

पर विष्णु शास्त्री पहले
लगवाई थी। यह कार्य
पर उन्होंने किसीके मतकी
'बायर' लगाया जाता है,
लगानेके विरोधमें यही
था कि सभी जातियोंके लोग
इन्हीं प० विष्णु शास्त्री
बाबूरावजी थे। इनसे
पहलेका नाम माधवराव था
प्रसिद्ध थे। दूसरेका छोटू
राम या रज्जू था। ये द
का देहान्त कई वर्ष हुए
तक ये ज्ञानमण्डलके मुद्रक
चमड़ियाकी गलीवाले अपने
बाबूरावजीने तीन
एक लड़की थी, जो अपने
गिरकर मर गई थी।
था। उनकी नजरबन्दीके
तीसरी पत्नी बाल विधवा
समर्थन नहीं किया, पर
महत्व नहीं दिया। इसके
समाजका कोपभाजन न ह
पैतृक घर छोड़कर दूसरे
के स्नेहमें कोई अन्तर नहीं

इसकी शिक्षा आदिका भार श्यामरावजीके पुत्रोंपर आ गया है। बाबूरावका जन्म कार्तिक शु० ६, स० १९४० (ता० ६ नवम्बर, १९८३ ईस्वी)को हुआ था। खेद है कि उनके 'आज' पत्रमें उनका जन्म सवत् १९६० और सन् १८८६ छपा है, जो अशुद्ध है। शुद्ध गणनासे गत नवम्बरमें वे ७१ सालके हो चुके थे और ७२वें वर्षके कोई २॥ महीने पार कर चुके थे।

महाराष्ट्र पण्डित-घरानोका कर्मकाण्ड और वेदके पठन-पाठनसे विशेष सम्बन्ध रहता है, इसलिए यज्ञोपवीत हो जानेपर लडकेको वेद पढानेका नियम है। अब शायद नही रहा। बाल शास्त्रीके विषयमें प्रसिद्ध है कि जब यज्ञोपवीतके बाद उन्हे वेद पढाया जाने लगा, तब वे कहने लगे कि यह तो हमें आता है और जब कहा गया कि सुनाओ, तब सस्वर वेद-मत्र सुना दिए। इसका कारण यह है कि लडके अपने घरमें वेदपाठ सुनते-सुनते याद कर लेते था। पढने पढानेकी अपेक्षा सुननेसे याद भी अधिक होता है। यह क्रम वहाँ पीढी-दर-पीढी चलता था।

शिक्षा और नौकरी

पराडकरजीको वेद पढाया गया और उन्होने कुछ ऋचाएँ याद भी की। पर उनके पिता विष्णु शास्त्री स्थितिज्ञ थे। वे समझते थे कि आस्तिकताके लिए वेद और सस्कृतके ज्ञानका प्रयोजन है सही, परन्तु जीविकोपार्जन के लिए अँगरेजीका ज्ञान अनिवार्य है। इसलिए जब उनकी नियुक्ति भागलपुरके एक स्कूलमें सस्कृताध्यापकके पदपर हुई, तब वे बाबूरावको अपन साथ लेते गए और उसी स्कूल में अँगरेजी पढनेके लिए उन्हें भर्त्ती भी करा दिया। उन दिनो पण्डितोकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी, इसलिए भागलपुर में विष्णु शास्त्रीके अनेक शिष्य भी हो गए। इसी स्कूलके ऊँचे दर्जेमें बँगलाके प्रसिद्ध पत्रकार बाबू पाँचकौडी बनर्जी भी पढते थे। वे अपनेको विष्णु शास्त्रीका विद्यार्थी और बाबूरावको अपना गुरुभाई समझते थे।

बाबूरावजीने भागलपुरमें एफ० ए०में (उस समय आई० ए०को एफ० ए० कहते थे) शायद एक साल पढा था। फिर पिताके स्वर्गवास-जनित परिस्थितिवश उन्हें पढना छोडना पडा। उन्हीके साथ उनका एक साथी देवनाथ भी पढता था। यह जब उनसे मिलने 'भारतमित्र'-आफिसमें आया था, तब पराडकरजीने बताया था कि यह ६ या ७ साल एफ० ए०में फेल हुआ है। जो हो, भागलपुर में उनका रहना न हो सका, और वे काशी चले गए। अब कुछ काम किए बिना निस्तार नही था, इसलिए कुछ दिनो तक वे डाक-तार-विभागमें नौकरी करनेके लिए बाध्य हुए।

देउस्करजीके साथ

पराडकरजी *अध्ययनशील ही नही थे, बुद्धिमान भी थे।* जो पढते थे, वह जल्दी याद हो जाता था। काशीमें स्वाध्याय जितना हो सकता था, वह उन्होने किया। इन्ही दिनो उनके दूरके नातेमें मामा लगनेवाले प० सखाराम गणेश देउस्कर काशी गए। वहाँ उन्होने बाबूरावकी अध्ययनशीलता और बुद्धि देखी, तो इनको अपने साथ कलकत्ते लेते आए। वहाँ सुकिया स्ट्रीट (आजकलकी कैलास बोस स्ट्रीट)की एक गलीमें, जहाँ वे सपरिवार रहते थे, बाबूरावजीको भी रखा। इस मकानका सदर दरवाजा



स्व० पराड़करजी

सुकिया स्ट्रीटमें था। मकान-मालिक एक मुकर्जी महाशय थे, जिनके बराका लगाव सर आशुतोष मुकर्जीसे था। इस मकानके तीन भाग थे। अगले भागमें स्वय मुकर्जी महाशय रहते थे। इनका चश्मेका कुछ कारोबार था। इसके बादके भागमें देउस्करजी रहते थे और अन्तका जो तीसरा भाग था, उसमें कई महीने हम लोग भी रहे थे। सडकसे जो गली हम लोगोके घराको जाती थी, वह इतनी सँकरी थी कि दो आदमी साथ नहीं चल सकते थे। कोई आदमी आता हो और कोई जाता हो, तो तब तक निकलना-पैठना असम्भव था, जब तक कोई दबकर किनारे न खडा हो जाता।

जबतक पराड़करजी कलकत्तेमें रहे, तबतक उनके अधिक दिन इसी घरमें बीते।

सखारामजी सन्थाल-परगनेके करा-ग्राममें रहते थे। भास्कर पण्डितने जब नागपुरके भोसलोंकी ओरसे बंगालपर चढाई की थी, तब उनके साथ ही देउस्करजीके पूर्वज भी थे। उन्हें सन्थाल-परगनेमें कुछ जमीन मिल गई थी, इसलिए वे वहीं बस गए थे, जैसे राजा मानसिंहके साथ उड़ीसा विजयके लिए निकले कुछ कान्यकुब्ज ब्राह्मण बाँकुड़ा जिले के मारोपाड़ा गाँवमें बसे थे। उस समय सन्थाल-परगना बंगालके अन्तर्गत था। बंगाली सज्जन जलवायु बदलने के लिए जैसीडीह, देवघर, दुमका आदि स्थानोंमें जाया करते थे। इनके सिलसिलेमें कुछ बंगाली भी इन स्थानोंमें बस गए थे। चारों ओर बंगालियों और संथालोंके बीचमें देउस्कर-परिवार करोंमें रहता था। संथाल जंगली समझे जाते थे, इसलिए सभ्य बंगालियोंसे ही उनका रब्त जब्त हुआ।

बंगला बोलना और पढ़ना लिखना सीखकर देउस्करजी आधे बंगाली बन गए थे। उन्होंने मराठी तो बहुत बादको सीखा। कलकत्तेमें घर-बाहर सर्वत्र उनकी भाषा बँगला थी। वे अपने स्त्री-बच्चोंसे भी बँगला ही बोलते थे। इस प्रकार बँगलामें व्युत्पन्न होकर आसपासके समाचार कलकत्तेके साप्ताहिक-पत्र 'हितवादी' को भेजने लगे। कालान्तरमें वे कलकत्तेमें 'हितवादी'के प्रूफरीडरसे बढ़ते बढ़ते सम्पादक बन गए। बाबूरावजी जिस समय कलकत्ते गए थे, उस समय देउस्करजी 'हितवादी'के सहायक सम्पादक थे।

जिस समयकी चर्चा हम कर रहे हैं, उस समय बंगलामें तीन बड़े-बड़े साप्ताहिक पत्र कलकत्तेसे निकल रहे थे। इनके नाम थे 'हितवादी', 'वसुमती' और 'बङ्गवासी'। इनमें 'हितवादी' आकार प्रकारमें सबसे बड़ा था। छपता भी कोई २५००० था। इसके सम्पादक पं० कालीप्रसन्न काव्यविशारद थे। 'वसुमती'के संपादक पं० सुरेशचन्द्र समाजपति और 'बङ्गवासी'के बाबू विहारीलाल सरकार थे। 'बङ्गवासी'का हिन्दी-संस्करण भी 'हिन्दी-बङ्गवासी' नामसे निकलता था। इसकी कोई ७००० प्रतियाँ छपती थीं। काव्यविशारदजीके मनमें आया कि हम यदि 'हितवादी' का हिन्दी-संस्करण निकालें, तो वह भी चल सकता है। यह सोचकर १९०३में 'हितवार्त्ता'

यह सबसे पुराना हिन्दी पत्र
प्रतियाँ नहीं प्रकाशित होती

'हितवार्त्ता

'हितवार्त्ता' का सम्पादन
किया। अनन्तर बाबू
ये हिन्दी जानते तो थे,
इसीलिए पण्डित ~ ~
मिश्र। पराड़करजी १९०
'हिन्दी-बङ्गवासी'में सहायक
वेदीजीने १९०७में चमड़की
के सम्पादककी जगह शायद
जीको मिली। इन्होंने १९
'हितवार्त्ता'का सम्पादन किया
के सुपुत्र बाबू मनोरंजन
और पराड़करजी दैनिक

उन दिनों हिन्दीके पत्र
थे। इनमें 'हितवार्त्ता'का
पर आजकलके किसी दै
को अकेले ही सारा पत्र
नहीं रहना था।
अकेले बड़ी लगन और
करते थे। उनकी मेहनत
लेख आ जानेसे हो जाती थी
उमापतिदत्त शर्मा और पं०
१९०८में विभक्ति प्रत्ययका
कारण 'हितवार्त्ता' में लेखकी
पहले 'विभक्ति विचार' और
लेखमालाएँ प्रकाशित कराई
लेख, टिप्पणियाँ और
तो सम्पादकका ही था।

सम्पादक-रूपसे
बड़ा हाथ था। वे हिन्दीके
सम्पादक तो थे ही। क्या
चाहिए इस विषयकी
करते थे। देउस्करजीके
ही नहा ली थी, बंगालियोंकी

अध्ययनशीलता और तत्परता

बाबूरावजीको पहले तो पढनेका बहुत समय मिलता था। देउस्करजीके घरमें पुस्तक था और बाहरसे वे लाते भी थे। पढनका क्षत्र भी विस्तृत था। अँगरेजी, मराठी, बँगला और हिन्दी पुस्तकोंमें हिन्दीकी पुस्तक पढने का समय उनको कम मिलता था। हिन्दीका वातावरण भी न था। घरमें बँगलाका साम्राज्य था और आफिसम बँरोको छोड सब बगाली ही थ। पर उन्हें पढनका शौक था। इसलिए उन्होंने होमियोपैथिककी पुस्तकें पढी और इनका सग्रह भी किया। यही नहा, वे होमियोपैथिक बक्स भी रखते थ और आवश्यक होनपर लोगोको दवा भी देते थ।

१९१२में जब हमन उन्ह दैनिक भारतमित्र'म बुला लिया था, तब हमें उनकी फुर्ती और कायकुशलता देखनके बहुत अवसर मिला करत थे। जब हम आफिसम रहते थे, तब रात ९ बजसे पहले 'दैनिक भारतमित्र'का अक तैयार नही होता था। पर बाबूरावजा विशषकर हमारा अनुपस्थिति में इतनी जल्दी काम करात थे कि कभी कभी सूर्यास्तके पहले ही काम समाप्त हो जाता था। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि उन दिनो तारोका व्यवस्था नही थी। बादको प्रस ब्यूरोके तार 'दैनिक भारतमित्र म लिए गए, तब भी १२॥ या १ बज रातको वे काम पूरा कर डालते थ।

गिरफ्तारी और नजरबन्दी

पराडकरजीकी देशभक्ति देउस्करजीके ससगसे और भी बढ गई थी। उन दिनो क्रान्तिकारियोके मार-धाड के आन्दोलन चल रहे थ। इसलिए इनकी जान-पहचान भी क्रान्तिकारियोसे हो गई थी और एसा समझनके कारण हैं कि इन्हीके द्वारा क्रांतिकारी विचारोन मारवाडी युवकोमें प्रवेश किया था। यही कारण है कि १९१६म जब य भारत-रक्षा-कानूनमें गिरफ्तार किए गए थ तब इन्हीके साथ कोई आधा दर्जनसे अधिक प्रतिष्ठित मारवाडी युवक भी पकडे गए थे। इनके ऊपर अभियोग यह था कि इन्होन रोडा कम्पनीके कारतूस चुराए थे। बादको पुलिसन वाँसतल्ला स्ट्रीटके एक गोदामसे कारतूसोके बक्स बरामद भी किए थ।

१९१६के जुलाईमें बाबूरावजी पकड गए थ और अन्य बगाली युवकोके साथ कभी चटगाँवके पास काकद्वीपमें और कभी कही बगालम य नजरबन्द रख गए। १९१९ के अन्तमें सबके साथ य भी छोड गए। छूटनपर ये काशी पहुँचे और वहाँ १९२०म बाबू शिवप्रसाद गुप्तन अपने 'आज' पत्रके सम्पादकीय विभागमें इन्ह जगह दे दी। जब बाबू श्रीप्रकाशन आज'का सम्पादन-कार्य छोडा, तब बाबूरावजी उसके सम्पादक नियुक्त हुए। तबसे कोई दो वष १९४३ ४५ तक कारण विशषसे वे आज से अलग रहे। पर १९४६से अन्त तक वे 'आज'के सम्पादक रहे। बीचम वे खबर' और बादको ससार के भी सम्पादक थ। १९४२म समाचारपत्रोन सरकारी दमन नीतिके विरोधमें प्रकाशन बन्द कर दिया था। पर बाबूरावजी गुप्तरूपसे रणभरी'का सम्पादनकर प्रकाशित करते थ। यह रणभरी उनके घरके पास ही एक प्रसमें छपती थी।

पराडकरजीके स्वगवाससे हिन्दी पत्रकारिताको बडी क्षति हुई है। उनकी तरह नए-नए शब्द बनान और चलान वाला कोई सम्पादक अब नहा है। बगालम श्री और श्रीयुत पुरुषो और श्रीमती और श्रीयुक्ता स्त्रियोके नामोके पहले लिखनकी चाल है। बाबूरावजीन मिस्टरके बदले विदे शियोके नामोके पहले भी 'श्री' लिखना ही नहो आरम्भ किया 'मिसस के बदलकर सवश्री' भी चलाया था। सर्वेक्षण, पत्रकारी आदि बहुत-से शब्द उनके चलाए हुए ह। कोई ४८ वष उन्हान समाचारपत्रका काम किया और बडी निष्ठा और सचाईसे किया। उन्ह उनके कायके लिए ही लोगोको सदा स्मरण रखना चाहिए।



परात्पर ब्रह्म

श्री गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

कहीं कुंजमें एक सुमन है,
जिसका आप वही उपमान।
सबसे परे, निराला सबसे,
दिव्य रूप सौरभकी खान।
आँखोंको न दिखाई पड़ता
फिर भी 'है'—लेते यह मान।
सुरभित मारुतके झोंकोंसे
उसका हम करते अनुमान।
हारे - थके खोज कह देते—
'नहीं कुसुम, वह कहीं नहीं।'
तब तक गूंज कहींसे आती
—ठहरो, वह है यहीं कहीं!
उलझ-उलझ काँटोंमें मधुकर
अग रुधिरसे लेता रंग।
मिलता नहीं और मिलनेका,
आशा नहीं छोड़ती संग।
पखड़ियाँ आती-जाती हैं,
निर्विकार खिलता वह फूल।
भौंरे लगन लगाए चलते,
पथमें ही पथ जाते भूल।
जो भी गया न आ पाया वह,
किससे हम पाएँ सन्देश।
कोई हमें बताए आकर,
कैसा है वह पावन देश।
सीमाहीन कहीं लहराता
रत्नाकर रस-राशि अपार।
वैभव अगम, अनन्त, अनूपम
जिसका अचल अचिन्त्य प्रसार।
गर्जन-नाद श्रवण करके ही
खोज रहे उसको गतिमान।
यात्रा कहीं समाप्त न होती
दिखता कहीं तरंग निधान।
कोटि-कोटि रवि उसका जीवन

अमित मेघ टोलियाँ
आकर
हो न सका समृद्धि
फिर भी
उस अम्बुधिका
कुम्भज
उसे पार कर
विधि भी
जिसकी रूप क
मग्न हो
उस अनदेखेको
कौन विद
कहीं व्योममें
आलय
अखिल विश्वमें
जो
सरसिज देख न
फिर भी
लोक - लोकमें भे
पूछा
यमनिकेतका
अविरत
फिर भी अक्षत ही
उसका
उसकी ऊष्माके
अग्नि
दे न सके अभिमान
बना न
अस्तोदय - बाधासे
वारिदसे
रहता कहीं विचित्र
जिसका
गए खोजने लौट

अर्नेस्ट हेमिंग्वे

श्री कृष्णशंकर व्यास

हेमिंग्वेके एक साहित्यिक मित्रका कहना है कि हेमिंग्वे ने युद्धके अनुभवोंके आधारपर बीस वर्षकी अवस्थामें साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। पचीस वर्षकी अवस्थामें वह लोकप्रिय हो गया और तीस वर्षकी अवस्थामें तो वह अनुभवी साहित्यकार माना जाने लगा। पेरिस-नगरी में एक बढईके कमरेमें उसने साहित्य-सृजन-रूपी वृक्षका बीजारोपण किया, जो दस-बारह वर्षोंमें हो पक गया और उस वृक्षकी न जाने कितनी शाखाएँ निकलीं, कितने फल लगे, और न जाने कितनोंको उसने आश्रय दिया।

जन्म और शिक्षा-दीक्षा

अर्नेस्ट हेमिंग्वेका जन्म २१ जुलाई १८९९को शिकागो के निकट ओक पार्कमें हुआ था। अनेक पुस्तकों तथा हेमिंग्वेकी वार्ताओंसे पता चलता है कि उसने अपनी आयुको एक साल अधिक बताया ताकि वह सेनामें भर्ती हो सके। और सन १९१७से आज तक वह अपना जन्म दिन २१ जुलाई, १८९८ ही बताता है। उसके पिता क्लेरेंस एडमन्ड हेमिंग्वे एक डाक्टर और प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। दवाइयोंका पेशा और शिकार हेमिंग्वेके वंशका रिवाज था और उसने अपनी अनेक कहानियोंको इन्हींके आधारपर लिखा है। अन्य डाक्टरोंके पुत्रोंकी भांति हेमिंग्वेने भी लेखन-कार्यको ही अपना मुख्य पेशा बनाया। जैसे ही उसने अपनी शिक्षा ओक पार्क-स्कूलसे समाप्त की, उसे 'कंसास सिटी स्टार' में नौकरी मिल गई।

उसने प्रथम महायुद्धमें सक्रिय रूपसे भाग लेनेका प्रयत्न किया। इस सिलसिलेमें उसे अनेक नए स्थानोंको देखने का अवसर प्राप्त हुआ और अन्तमें एम्बूलेंस सर्विसेजमें उसे स्थान मिल गया। कुछ दिनों बाद उसका तबादला इटलीमें हो गया। यहांपर उसे बहुत अधिक चोट लगी, परन्तु उसने अपनी वीरता और साहसका अद्भुत परिचय दिया, जिसके लिए उसे चार बार सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया।

साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण

साहित्य-सृजनका कार्य हेमिंग्वेने पेरिसमें १९२०में आरम्भ किया। इससे पहले वह इटलीके मोर्चेपर काम करता था। उसकी छोटी कहानियोंमें युद्धके विभिन्न अनुभवोंका बड़ा रोचक वर्णन मिलता है। लेकिन १९२०-३०के बीच हेमिंग्वेको साहित्य-क्षेत्रमें बहुत ही निराशाजनक स्थितिका सामना करना पडा। उसकी कहानियाँ कहीं भी स्वीकृत न हुईं, अपितु बार-बार लौटती रहीं। परन्तु हेमिंग्वे इससे निराश नहीं हुआ और बराबर लेखन-कार्यमें संलग्न रहा। बादमें मार्डोक्स फोर्ड, स्काट फिट्जरेल्ड एवं स्टेन-जैसे मित्रोंके सहयोगसे साहित्य जगत्में वास्तविक अर्थोंमें वह पदार्पण कर सका। सन १९२६में उसके उपन्यास 'दी सन आल्सो राइजेज़' के प्रकाशनपर उसे पर्याप्त सम्मान मिला और सफलताके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। इसके बादसे उसका अबतक का जीवन अमरीकाके इतिहाससे सम्बद्ध है। कहना न होगा, इस लोकप्रियताकी पृष्ठभूमिमें हेमिंग्वेका उपन्यास 'दी सन् राइजेज़' है। कठिन समयमें उसका धैर्य नई पीढ़ी के साहित्यकारोंके लिए एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें उसकी सफलताका रहस्य छिपा है और छिपी है एक साधारण सैनिक की नोबुल-पुरस्कार पानेकी रहस्यमयी कहानी।

मार्क ट्वेनका साहित्यिक शिष्य

एसेन्ट'के १९५४के समर-अंकमें एडविन फसेल्ने 'हेमिंग्वे और मार्क ट्वेन'-शीर्षक लेखमें अर्नेस्ट हेमिंग्वेको मार्क ट्वेनका शिष्य बताया है। इन दोनों महान साहित्य कारोंकी शैलीमें हमें सामंजस्यके साथ-ही-साथ पार्थक्य की सीमा रेखाका भी परिदर्शन होता है। मार्क ट्वेन करवेंट और फिल्डिंगकी भांति रोमांटिक कथाएँ और कल्पित गाथाएँ लिखता रहा और इसके प्रमाणमें हम उसके 'हकलेबरी फिन' का उल्लेख कर सकते हैं। हेमिंग्वे मार्क ट्वेनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ और उसपर भी ट्वेनकी शैलीके जादूका असर पडा। उसकी पहली रचना 'दी सन् आल्सो राइजेज़' के अतिरिक्त 'दी टारेंट आफ स्प्रिंग' एवं 'इन अवर टाइम' उपयुक्त कथनकी पुष्टि करते हैं। और एडविन फसेल्ने भी कहा है— मिथ्यावादी काव्यकी उपेक्षामें ही हेमिंग्वेकी लेखन-कलाकी विशेषता निहित है और झूठी कविता (सत्यसे दूर रहनेवाली) का मार्क ट्वेनने भी अपने ग्रन्थोंमें उपहास किया है—इसलिए हेमिंग्वे मार्क ट्वेनका शिष्य है।

इतना साम्य होते हुए भी इन दोनों साहित्यकारोंमें एक बहुत बड़ा अन्तर है। ट्वेनका नैतिक दृष्टिकोण

काल्पनिक सहानुभूतिपर आधारित है, जबकि हेमिंग्वे अपने नैतिक दृष्टिकोणका निर्धारण विभिन्न भावनाओंके संघर्षके फल-स्वरूप करता है। यही 'भावनाओंका संघर्ष' हमें उसके उपन्यासोंमें देखनेको मिलता है। उसके पात्रों के जीवनमें विभिन्न धाराओंका संघर्ष चलता रहता है और वे अपनी जीवन-धाराको उसी ओर मोडते है, जिधर भावनाओंके संघर्षके फल-स्वरूप उनकी आत्मा उन्हें प्रेरित करती है।

हेमिंग्वेकी साहित्यिक मान्यताएँ

कुछ चीज सरलतासे सीखी नही जा सकती और उनको सीखने और समझनेके लिए हमे बहुत अधिक समय देनेकी आवश्यकता पडती है। व सरल नही जा सकती है, पर उसे जन-साधारणको सुलभ करनेके लिए कभी-कभी कुछ मनुष्यो को अपने प्राण तक निछावर कर देने पडते है, इसलिए हम उनको बहुमूल्य कहते है। सच्चे अर्थमे लिखा गया उपन्यास ज्ञानकी झोलीको बोझिल ही करता है। वह आगामी कलके उपन्यासकारको प्रेरणा देता है। इसके बाद लेखक का यह कार्य होता है कि वह उसम अपनी ओरसे क्या जोडे और जनताके सम्मुख अपने उपन्यासको किस प्रकार रखे। इन्ही साहित्यिक मान्यताओंको ध्यानमें रखकर हेमिंग्वेने अपना साहित्य-क्षेत्र चुना। उसका कहना है कि एक लेखक, जो गंभीरतापूर्वक लेखन-कार्य करता है, को यह प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता नही कि वह पढा-लिखा है। उसे विद्वता, संस्कृति एव माधुर्यादिताका प्रतीक न बन एक साहित्य-सेवक बननेकी जिज्ञासा रखनी चाहिए। एक सच्चे साहित्यकार और एक गंभीर साहित्यकारमे उतना ही अतर है, जितना एक हस और उल्लूमे होता है। हेमिंग्वे ने समकालीन साहित्यकारोकी अपेक्षा अधिक सुन्दर शैली में कहानी लिखनेका सफल प्रयास किया है। उसकी गद्य-लेखन-शैलीम निजी व्यक्तित्वकी झलक मिलती है और उसके कथोपकथन भी बहुत ही सुन्दर बन पडे है। हेमिंग्वेने अमरीकी उपन्यासोम तथा वहांके जीवनमे भावनाओंके संघर्षो फल-स्वरूप किसी निर्णयपर पहुँचनेकी पद्धतिका प्रचलन नही पाया और इसीलिए उसने मार्क ट्वेनकी साहित्यिक मान्यताओम अनेक तत्वोंका समन्वय

रीकाके कुछ अन्य साहित्यकारोने
और उनकी छाप साहित्यकी नई
और इसलिए हेमिंग्वेसे उन्होंने अ
पर यह आलोचना एकागी है।
हेमिंग्वेका सन् १९५४का
दे दिया है। सन् १९३०मे जब
को भावी अमरीकी नोबेल पुरस्क
किया था, उस समय हेमिंग्वे
उस समय उसकी तीन उच्च क
चुकी थी—'दि सन् आलसो
तथा 'ए फेयरवेल टू आर्म्स।' सन्
एक नया उपन्यास 'दि टारेन्ट अ
निर्योकी एक पुस्तक 'मैन विदाउ
थी, जिसकी प्रशसा सर्वत्र हो

सन् १९५३में भी हेमि
जानेवाला था, लेकिन च
रखते हुए विगत वर्ष यह स
जब अफ्रीकाकी हवाई
समाचार मिला, तो स्वेडिश
बहुत अधिक दुःख प्रकट किया
कई प्रतिद्वन्द्वी थे, उनमे
जिन्होंने स्तालिनका साहित्य
अतिरिक्त फ्रासके पाल क्लाडेल
कवि इजरा पाउड भी नोबे
पर हेमिंग्वेको ही स्वेडिश
समझा। हेमिंग्वे पाँचवा
नोबेल-पुरस्कार मिला।
लेविस, यूजेन ओ'नील, प
फाकनरको नोबेल-पुरस्कार
पुस्तक स्कडिनवियाम बडे
अनेक नवोदित साहि
भी है।

हेमिंग्वेको यह पुरस्कार
एण्ड दि सी' पर प्रदान किय
क्यूबाके एक मछुएके जीवन
जी

की नवीनता भी दृष्टिगत होती है। इस पुस्तकपर उन्हें सन् १९५३में उपन्यासका पुलटेजर-पुरस्कार भी मिल चुका है। जब नोबेल-पुरस्कार हेमिग्वेको देनेकी घोषणा हुई, तो उसी समय जान पी० मारकेन्डने कहा—"हेमिग्वे ही एक ऐसा जीवित अमरीकी साहित्यकार है, जो उच्चकोटि की छोटी कहानियाँ लिख सकता है।"

सन् १९३३में इवेन बेविनने नोबेल-पुरस्कार अपनी एक कहानी 'दि जेण्टलमैन फ्राम सेनफ्रासिसको' पर पाया था। हेमिग्वेके साथ भी प्राय वैसी ही बात हुई। पर एक बात है, हेमिग्वेके पक्षमें लेखन-शैलीकी विशिष्टताके साथ-ही-साथ लोकप्रियता भी रही है। जार्ज बर्नर्ड शा (जिन्हें १९२५में साहित्यका नोबेल-पुरस्कार मिला था) के बाद हेमिग्वे ही ऐसा साहित्यकार है, जिसकी लोकप्रियता सारे यूरोपमें एक बडे साहित्यकारके रूपमें है। चर्चिल नि सन्देह हेमिग्वेसे अधिक लोकप्रिय है, पर उनकी लोकप्रियता एक राजनीतिज्ञके रूपमें अधिक है, न कि एक साहित्यकारके रूपमें।

बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा

सम्प्रति एक क्षणके लिए हम भूल जायँ कि हेमिग्वे एक वीर सैनिक, खिलाडी, साहसी यात्री और बडा शिकारी है। उसे हम केवल उपन्यास-लेखक और कथाकारके रूपमें ही लेते हैं। दूसरे ही क्षण हम बिना किसी सकोच एव हिचकके यह कहना चाहेंगे कि हेमिग्वेकी साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी है और हेमिग्वेका यह कथन हमारे निष्कर्ष का प्रमाण होगा—"गद्य-लेखन एक कौशल है, जिसमें भीतरी सजावटकी आवश्यकता नहीं है। उपन्यासके पात्र ऐसे होने चाहिएँ, जिन्हें लेखकने अपने अनुभव मस्तिष्क एव हृदयकी अनुभूतिसे निर्मित किया हो। पात्रोंके चुनावमें लेखकको अपनी सारी जानकारीका उपयोग करना चाहिए। यदि लेखकका भाग्य होगा और वह अपने पात्रोंमें पर्याप्त गम्भीरता और अन्य आवश्यक तत्वोंका समावेश कर पायगा, तो उसके पात्र निश्चय ही अमर हो जायँगे।" लगता है हेमिग्वेने अपने इस कथनका अक्षरश पालन अपने उपन्यासों एव कहानियोंके पात्रोंके चुनावके रूपमें किया है। और तभी तो उसके पात्र जीते-जागते मनुष्योंकी भाँति उपन्यास एव कहानीके पाठकोंको अपनी नेक सलाह देते हैं।

कहा जाता है कि हेमिग्वेके उपन्यास 'दि ओल्ड मैन एण्ड दि सी' में स्वेडिश एकेडेमीने शैलीकी नवीनता एव अन्य साहित्यिक विशेषताएँ पाईं। लेकिन सच पूछिए तो इस उपन्यासकी सारी विशेषताएँ उसकी कहानी 'बिग टू हेडेड रिवर' में मिलती है। इस कहानीमें उसने एक सिपाहीके मेचिगम लौटनेकी बात कही है, जो पेरिसमें रहता था। यह कहानी उसने सन् १९३३में लिखी थी। वस्तुत वह मार्क ट्वेन और फाउलवर्टकी साहित्यिक मान्यताओंको तभी स्वीकार कर चुका था। जब हेमिग्वेकी कोई नई पुस्तक निकलती है, तो एक व्यक्ति जो नवीनतम साहित्यिक गतिविधिको जानेकी इच्छा रखता है, उसे उस नई रचनाको पढना आवश्यक हो जाता है। वह रचनाओंको पढनेके लिए इच्छुक हो या न हो, पर उसे हेमिग्वे की नई पुस्तक पढनी ही पडती है। हेमिग्वेको साहित्यिक चुम्बक कहना अनुपयुक्त न होगा, जो अनेक पाठकोंको आकर्षित करता है और अनेकोंको अपनी रचनाओंको पढने के लिए विवश करता है।

यह कहना कठिन है कि आजसे पचास वर्ष बाद हेमिग्वे की रचनाओंका क्या मूल्य रहेगा। पर वह अकेला साहित्यकार है, जिसने 'विट एण्ड आइरनी' के सिद्धान्तका प्रतिपादन अपनी रचनाओंमें किया है। वह अपने पात्रोंको कष्ट, पीडा एव मृत्यु तककी स्थितिमें रख देता है। एक मनुष्य हेमिग्वेके पात्रोंको भूल सकता है, लेकिन उसकी कहानियों को भूलना कठिन है। उसने वर्तमान पीढीकी भयानक एव दर्दनाक स्थितिका चित्रण बडे ही स्वाभाविक ढगसे किया है। सभव है उसके साहित्यका मूल्याकन भविष्यमें साहित्यिक ज्ञानके बोरोंके रूपमें न हो, पर यह तो मानना ही पडेगा कि हेमिग्वेकी कृतियोंमें उसके अपने समयकी गभीरतम उलझी हुई समस्याओंको सरलतम शैलीमें सुलझानेका प्रयत्न अवश्य किया गया है।

मृत्युके मुखसे बाहर

हेमिग्वे दो हवाई दुर्घटनाओंमें बुरी तरह घायल हुआ है। दूसरी हवाई दुर्घटनाका वर्णन करते हुए उसने कहा—"उस समय मुझे सकटकालीन सहायता भी नहीं मिली। मेरा बायाँ हाथ बेकाम था, इसलिए मुझे सिरके धक्केसे दरवाजा खोलकर बाहर निकलना पडा। इसी कारण मेरे बाएँ कानके ऊपरकी हड्डी टूट गई। जैसे ही मैं बाहर निकल रहा था, आगकी लपटोंने मेरा पीछा किया और मेरे बाल जल गए। इसके बाद फिर हम और हमारे दलके लोगोंको आगकी लपटोंसे खेलना पडा और केनियाके निकट ही मैं दूसरी बार बुरी तरह जल गया।" कुछ देर ठहरकर हेमिग्वे अपने मित्रोंसे बोला—"मुझे वेनिस कब और कैसे पहुँचाया गया, यह तो पता नहीं, पर यह सब मेरी स्त्री की कृपा है, जो आज मैं आप लोगोंके बीच हूँ। वेनिसमें भी मेरी स्थिति गभीर होती गई, पर मेड्रिडमें एक स्पेनिश डाक्टरने मेरी जान बचा ली। एक डाक्टर बोला—

'आपको दुर्घटनाओके तत्काल बाद ही मर जाना चाहिए था। लेकिन यदि आप उस समय न मर सके, तो झाडियो में लगी आगकी लपटोको अवश्य ही आपकी जीवन-लीला को समाप्त कर देना था। और आप वेनिसमे भी मर सकते थे, पर चूंकि आप अभी तक नही मरे है, इसलिए सम्प्रति आप नही मर सकेंगे।' इसके बाद मैंने अपने मित्रोंसे कहा कि मै भाग्यवान तो अवश्य हूँ, पर नियतिने मुझे बुरी तरह पीटा है।"

हेमिग्वेने लिखने-पढनेका कार्य पुनः आरम्भ कर दिया है और अफ्रीका-सम्बन्धी छोटी कहानियोको प्रकाशित करने की उसकी योजना है, जिन्हे वह दो माह पूर्वसे ही लिख रहा है। हेमिग्वेने जब पुरस्कारकी घोषणा सुनी, तो

कहा—"मुझे इस पुरस्कारको
यह मेरे लिए प्रसन्नता और
सम्मान मुझे मिला है, यह मेरे
साथ ही मुझे पैसेकी भी
राशिसे पूरी हो गई।" पता
के ३६,००० डालरोंमें से ८,००
चुकानेमे उपयोग करेगा और
मानीसे व्यय करेगा।
कथन है कि वर्तमान तथा
साहित्य चाहती है, इसका पता
दाताओंकी कृपासे लगता रहता
कथन सच माना जा सकता

शेक्सपीयरके नाटक

श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

ईसाकी सोलहवी सदीका उत्तरार्द्ध नाटककार और कवि शेक्सपीयरका रचना काल माना जाता है। तबसे अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी, कितनी ही नवीन विचार-धाराओंका जन्म हो गया, कितने ही सामाजिक उलट-फेर हो गए और उन्नीसवी सदीके उत्तरार्द्धमें तो कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगल्सने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादका प्रचलन करके आर्थिक जगत्में एक बहुत बड़ी अभूतपूर्व क्रान्ति ही कर दी। पर इस क्रान्तिसे कम महत्वपूर्ण वह क्रान्ति नही थी, जो इब्सनने स्वय नाट्यकलाके क्षेत्रमें लगभग उसी समय की। इस नाटककारने व्यक्तिके अधिकारो पर विशेष जोर दिया और विशेष रूपसे उन स्थलोपर आक्रमण किया, जहाँ समाज व्यक्तिके स्वत्वोका हरण करता दिखाई पडता है। इब्सनकी नाट्यकला, जिसका परवर्ती अनेक कलाकारोंने अनुकरण किया, अपनी स्वाभाविकता, सरलता और तत्वानुसधानकी प्रवृत्तिके लिए चिरस्मरणीय और पोषणीय रहेगी। किसी समस्याका प्रस्तुतिकरण, किसी सत्यकी खोज इब्सन और उसके अनुयायी नाटककारोंकी विशेषता है। निस्सदेह इन नवीन नाटको तथा शेक्स-

समझना चाहिए और दोनो
कोशिश करनी चाहिए।

मौलिकता और

शेक्सपीयरके विषयमें ए
ससारमें कभी कोई मौलिक
शेक्सपीयर था। उसकी मौ
मे मनुष्य-जीवनके सम्बन्धमे
मिलते है। शेक्सपीयरकी
विचित्रता, जो उसको अन्य
है कि वह जीवनको अनेक
स्वर्थ, मिल्टन, पोप तथा अन्य
हैं, उनकी समस्त रचनाओंक
अवगत हुए बिना न रहेगा
मार्गमें बहती है। उन
देखा है। जब वे उसका
उनके सामने आता है।
गम्भीर प्रकृतिका कपाट
आराधनामें उसका रस ह

मनुष्यको परवश ही माना है । उसने अपने काव्योमे ईश्वरके सामने मनुष्यके इसी परवश स्वरूपको अकित किया है। यह बात शेक्सपीयरमें नही है। वह मनुष्य को एक रूपमें दिखलाकर सतुष्ट नही होता। यदि कही वह हेमलेटका अथवा ब्रूटसका चरित्र अकित करता है, तो कही मैकबेथ और ओथेलोका और कही टचस्टोन तथा फ़ालस्टाफ़का। शेक्सपीयरके अनुभव-क्षेत्रका यह विस्तार उसीकी विशेषता है।

विनोद-प्रधान नाटक

शेक्सपीयरके जो नाटक विनोद-प्रधान कहे जाते है, यदि उनके असली स्वरूपपर ध्यान दिया जाय, तो उनमे कल्पना और जीवनके आनन्दका बाहुल्य ही मिलेगा। समाजमे जो-कुछ प्रकट अनौचित्य दीखता है, उसीको मिटानेके लिए विनोद-प्रधान नाटकोकी रचना होती है। उपहास और व्यग्यका आश्रय लेकर नाटककार बुराइयो की तीव्र समालोचना करता है और प्राय उसकी इच्छा के अनुकूल फल भी होता है। परन्तु उपहास दो प्रकार का होता है। एक उपहास वह है, जिसमें तीक्ष्ण व्यग और घृणाका प्राबल्य होता है। दूसरे प्रकारके उपहासमे व्यग और घृणाका नाम नही होता, उसकी उत्पत्ति और उसका जीवन प्रेमके अन्तर्गत ही होता है। शेक्सपीयरके विनोद-प्रधान नाटक ऐसे ही है। 'एज यू लाइक इट', 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' और 'मच एडो एबाउट नथिंग' आदि मे वह कही भी तीक्ष्ण व्यगमें रत नही होता। सच पूछिए तो इन नाटकोमे काव्य, कल्पना और जीवनके आनन्दकी मस्ती ही अधिकतर दिखाई पडती है। चारो ओर जीवन की सरसताको देखकर शेक्सपीयर उन्मत्त हो जाता था। कभी-कभी यह ससार उसे स्वर्ण-रजित-सा जान पडने लगता था। उसके उक्त नाटकोसे यही परिचय मिलता है।

उदात्त और दुर्बल भावनाका चित्रण

किन्तु ससारका यह मोहक रूप दिखाकर शेक्सपीयर मौन नही होता। वह हमारी उस दुर्बलताका दृश्य भी दिखाता है, जो मनुष्यको पग-पगपर अदृष्टके सामने उसकी विवशता दिखलाती है। 'हैमलेट'में बादशाहको मार न सकनेमें हैमलेटकी असमर्थता दिखलाकर वह हमारे सामने वेढब प्रश्न खडा कर देता है। हैमलेट कवि है, दार्शनिक है, उदात्त विचारका पुरुष है, फिर भी वह उस कार्यको नही कर सकता, जिसे करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है, और जिसे लेरटीज़-सा साधारण आदमी बिना विलम्बके कर सकता है। भिन्न-भिन्न लेखकोने हैमलेट की इस असमर्थताके भिन्न-भिन्न कारण बतलाए है। किसीका कहना है कि वह दार्शनिक एव कवि होनेके कारण व्यावहारिक कार्यमे कुशल नही था और उसे मानसिक रोग था, इसी कारण वह अपना कार्य नही कर सका। किसीका कहना है कि वह व्यावहारिक कार्यमे कुशल होने हीके कारण अपने पिताकी हत्याका प्रमाण पाए बिना बादशाहका वध न कर सका। इन भिन्न-भिन्न मतोमें किसका मत ठीक है और किसका नही, इससे हमे कोई मत-लब नही। हमारा मतलब तो है इस बातसे कि हैमलेट-जैसा बलवान् मस्तिष्क और उदार नैतिक भावोका पुरुष जीवनके ऐसे चक्रमे पड गया कि उसे उस कार्यमे रत होने की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसके करनेकी योग्यता उसमे इसी कारण नही थी कि वह इतना अधिक उदात्त विचारवाला है। इस प्रकार शेक्सपीयर हमारे सामने बडा गहरा प्रश्न खडा कर देता है। जिन आदर्शोको जीवनमे प्राप्त करना मनुष्य अपना लक्ष्य समझता है, उनके कारण जब वह जीवनके कर्त्तव्योको कर सकनेकी योग्यता खो बैठता है, तब फिर हमे क्या करना चाहिए ? शेक्स-पीयर इसका उत्तर नही देता, केवल सकेत-मात्र करके वह हमे छोड देता है। वह अदृष्ट मनुष्यके आत्म-विकासके प्रयत्नके विरुद्ध नही है। वह हममे पूर्णता चाहता है और हमारी अपूर्णताके लिए हमे कठोर दण्ड देता है, यही उसका सकेत है।

बुराईको प्रश्रय देनेका परिणाम

पर 'मैकबेथ'मे शेक्सपीयर एक दूसरी ही बात बतलाता है। मैकबेथ क्रूर हत्या और अनाचारका आश्रय लेकर राज्य प्राप्त करता है, पराजित होता है और मृत्युकी गोदमे जाता है। यदि इतना ही होता, तो मैकबेथ शोकान्त नाटक न कहलाता, क्योकि दुराचारी पुरुषके जीवनके दु खमय परिणामपर शोकान्त नाटक अवलम्बित नही किया जा सकता। लेकिन दुराचारी होनेके साथ ही मैकबेथ मे पहले सज्जनता विशेष परिमाणमे थी। जिस दिन उसके राज्य पानेकी भविष्यवाणी की गई, उसी दिनसे उसमें प्रबल लालसाकी लहर आई और तभीसे वह एक अनाचारके बाद दूसरा अनाचार करने लगा। धीरे-धीरे उसके सम्पूर्ण अच्छे गुण नष्ट हो गए। मनुष्यमें थोडी-सी बुराई किस प्रकार बल पाकर उसके मृदु स्वभावको नष्ट करके उसे राक्षस बना देती है, इसी दु खमय सत्यका अवलम्बन करके इस शोकान्त नाटकने जन्म पाया।

'ओथेलो'में आइगोका चित्रण करके शेक्सपीयरने हमें मानव-प्रकृतिकी एक दूसरी ही दुर्बलताका पता दिया है। मनुष्य अपने क्षणिक विनोदके लिए औरोका सर्व-

नाश कर सकता है, ओथलो और डसडमोना जैसे दो प्रेमियो का जीवन दुःखमय कर सकता है क्या यह शोचनीय नही है ?

आत्म शुद्धिका हेतु

शक्सपीयरके शोकान्त नाटकोंकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे हमारा ध्यान मानव-जीवनकी अपूर्णताकी ओर ले जाते है। अन्य शोकान्त नाटकोंकी तरह वे प्रयत्न विशेषमें हमारी असफलताको दिखलाकर हमारे हृदयको निराशाका धक्का नही देत। वे केवल उस कर्मोंकी याद दिलाते ह, जिसने मानव-जीवनको चारो ओरसे घेर रखा है। और इस क्रिया द्वारा वे हमे अदृष्ट की ओर अग्रसर होनेके लिए प्रेरित करते हैं। हम यह मानते हैं कि हमारी असफलताको दिखानेवाले नाटक हमारा अपकार ही करेंगे और शायद इसी कारण हमारे संस्कृत-साहित्यमें शोकान्त नाटकोंके लिए कोई स्थान नही है परन्तु मेरा विचार है कि शक्सपीयरके ढंगके नाटक हमारी प्रकृतिसे कलुषित अंशको निकालकर हमारी आत्म-शुद्धि ही करेंगे।

शेक्सपीयरकी

यदि शक्सपीयर जीवनके
मुग्धता दिखलाता है, तो कहीं
का चित्रणकर हमें क्षुब्ध भी
वह हम यह पता नहीं देता कि
उसका एक निश्चित विचार क
दृश्योंको दिखाकर, भिन्न भिन्न
कर मौन हो जाता है और हम हो
जिस संसारमें इतना सुख है, उ
जिसमें इतना आनन्द है, उसमें
द्वेष भी है, जिसमें इतनी
भी है। शक्सपीयर हम
करता है। यह सब देखकर
लगते है। इस विचित्रताका
अज्ञात शक्तिकी महत्ताका
शक्सपीयरकी विशेषता है, यही
अधिक नाटककार कुछ नहीं
शक्सपीयर महान् और सर्वश्रेष्ठ

रूसी कथाकार तुर्गनेव

श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय

तुर्गनवके नामसे हिन्दीके कहानी प्रेमी अपरिचित नहीं हो सकते, किन्तु उसके जीवन चरित्र एवं कृतियों का व्यवस्थित परिचय अभीतक हिन्दी जगत्में कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। संसारके चोटीके कथाकारोंमें से चुने हुए आठ-दस लेखकोंकी कृतियोंको यदि सामने रखा जाय, तो उनमें कम-से-कम एक पुस्तक तो तुर्गनवकी अवश्य ही लेनी होगी। जिस प्रकार रूसी साहित्यकार टाल्स्टाय और गोर्कीसे हिन्दीके साहित्यकार परिचित है, उतने ही परिमाणमें तुर्गनेव अभी उनके सामने नहीं आ सके हैं। फिर भी उनकी विशिष्ट शैली और कलाका परिचय उनकी एकाध कहानीसे भी सहज ही प्राप्त हो जाता है।

तुर्गनेव और शरच्चन्द्र

रचनाएँ किसी भी सहृदय
वीय भावना एवं कल्पनाका
देशमें उपस्थित कर सकती है।
के लिए लेखकमें व्यापक
कुशल चित्रण शक्ति बड़ी
और तुर्गनवमें ये तीनों ही
कारण बंगलामें शरच्चन्द्र
पाश्चात्यसनमें सफलता मिली
नाते चिरस्मरणीय बन गए।
सहृदयता और सहानुभूतिकी स
है और इनकी रचनाएँ पढ़न
अनुभव होता है कि लेखकने अ

नामक नगरमे हुआ था। उनके पिता सेनामे लेफ्टिनेंट थे। उनकी माता एक धनवान जमीदारकी पुत्री थी। उसके पिताके अधिकारमे हजारो एकड जमीन एव पाँच हजार गुलाम (दास) थे। बाल्यावस्थामे ही तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ फ्रास, स्विट्जरलैंड, जर्मनी आदि देशोकी यात्रा कर चुके थे। किन्तु नौ वर्षकी अवस्था तक उन्हे अपना जीवन जमीदारीके गाँवोमे ही बिताना पडा। अतएव खाना-पीना और मस्त होकर घूमना ही उस समय उनके जीवनका मुख्य कार्य रहा। गाँवके चारो ओर प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा हुआ था। अतएव कभी वे वन-उपवनकी सैर करते, तो कभी गहन वनमे भटकते रहते थे। इसी प्रकार कभी अपनी छोटी नौकामे बैठकर वे सरोवरके जल विहारका आनन्द भी प्राप्त करते थे। इस प्रकार बाल्यावस्थामे ही प्रकृतिने उनके कोमल अन्त -करणपर अपने अमिट सस्कार अकित कर दिए थे, जो कि आगे चलकर युवावस्थामे उनके साहित्य-सृजनमे परम सहायक सिद्ध हुए।

विलासी पिता और निष्ठुर माँ

तुर्गनेवके पिता तत्कालीन अन्य भूमिपतियोकी ही तरह शौकीन एव विलासी थे, अतएव उनका जीवन आनन्दमे ही व्यतीत होता रहा। साथ ही नीति-नियमोके पालन या सामाजिक बन्धनकी भी वे परवाह नही करते थे। फलत तुर्गनेवने भी अपने पिताका ही अनुकरण किया। किन्तु उसकी माता दिन-रात अपनी जमीदारीकी महत्तामे निमग्न रहती थी। फिर भी उनका स्वभाव निष्ठुर था। एक बार उनकी वाटिकामे काम करते हुए दो श्रमजीवियो ने अपने काममे तल्लीन रहनेके कारण उनके आनेपर उठकर सलाम नही किया, इसीपर क्रुद्ध होकर उन्होने उन दोनोको जन्म-भरके लिए साइबेरिया भेज दिया। इसी प्रकार तुर्गनेवके बडे भाईको भी उन्होने किसी साधारणसे अपराध पर स्वत अपने हाथोसे निर्दयतापूर्वक चाबुक लगाए थे। यहाँ तक कि मारते-मारते जब वे खुद बेहोश होकर गिर पडी, तो नगे बदनसे काँपता हुआ एव बेतरह पीटा जानेके कारण अधमरा हो जानेवाला वही पुत्र चिल्लाने लगा—"अरे, कोई जल्दीसे पानी लाओ। माँ बेहोश हो गई है।"

घरसे पलायन

इसी उपाय (पिटाई) का उन्होने तुर्गनेवपर भी कई बार प्रयोग किया था। तुर्गनेव कहते थे कि "छोटे-से-छोटे अपराधपर पहले मुझे अपने मास्टर धमकाते और बेतरह क्रुद्ध होने, इसके बाद माता मुझे चाबुकसे पीटती और फिर मेरा खाना बन्द कर दिया जाता था। इस प्रकार भूखे-पेट वाटिकामें घूमते हुए रो-रोकर आँसुओकी जो धाराएँ मेरे मुँहमे चली जाती, उन्हीके खारे स्वादके द्वारा मुझे अपनी भूख-प्यास शान्त करनी पडती थी।" फलत माताके इस निष्ठुर व्यवहारसे तग आकर वे एक दिन रातको घरसे भाग निकले। किंतु उनके जर्मन अध्यापकको इस बात का पता चल गया था, अतएव वे उन्हें समझा-बुझाकर वापस घर ले आए।

स्वाभाविक सौंदर्य-दृष्टि

तुर्गनेवका शरीर भरा-पूरा होनेके साथ ही उनकी लबाई-चौडाई भी पर्याप्त थी। साथ ही उनके सिरपर भूरे बालोका जगल-सा बढा हुआ था, और चौडा ललाट उनकी भव्यताको प्रकट करता था। साथ ही उनकी बुद्धिमत्ताकी चमक भी स्पष्टतया दिखलाई देती थी। उनके नेत्रोपर से भी उनकी कुशाग्र बुद्धि एव भावना-प्रधान वृत्तिका परिचय मिलता था। उनके होठोके सिरेपर हमेशा ही हल्की मुस्कुराहट झलकती रहती थी। वे स्वत सुरूप थे, इसी कारण सुन्दर वस्तुओकी ओर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी और अभिजात सौन्दर्यकी परख भी वह भलीभाँति कर सकते थे। फिर भले ही वह कोई सुन्दर पुस्तक हो या सुन्दर स्त्री, वे अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ उसका स्वागत करते और उसे स्वीकार करते हुए अपनी रसिकता व्यक्त करते थे।

उनकी बाल्यावस्थामे एक बार राज-परिवारकी एक वृद्धा स्त्री उनकी मातासे मिलने आई, तो बालक तुर्गनेवके इन्कार करनेपर भी माताने उन्हें उसकी गोदमें बैठा दया। अत कुछ देर तक उस वृद्धाके मुखकी ओर देखनेके बाद तुर्गनेवने कहा—"तुम तो एकदम बँदरिया-जैसी दिखाई देती हो।"

यह सुनकर तुर्गनेवकी माता उस वृद्धाके विदा होने तक मन-ही-मन फडफडाती रही और उसके जाते ही तुर्गनेवकी इस स्पष्टोक्तिके लिए उसने खासा 'पुरस्कार' दिया।

कविताकी पुस्तकें चुराकर पढ़ीं!

अँगरेजी शासनमें हमारे यहाँ कुछ अल्ट्रा-फैशनेबल लोग देशभाषा और मातृभाषासे विमुख होकर अपने बच्चो को केवल अँगरेजी ही पढाते थे। ठीक यही दशा उस समय रूसमे भी थी—अर्थात् रूसी-भाषा गँवारू समझी जाकर बच्चोको फ्रेंच सिखलाई जाती थी। इसी कारण तुर्गनेव को भी बचपनमे फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ सीखनी पडी। किन्तु रूसी-भाषा तो वे घरके नौकरोसे ही सीख गए। यहाँ तक कि एक नौकरके लडकेकी सहायतासे घरकी अरगनी

या टाँडपर पड़ी हुई रूसी-कविताकी पुस्तकें भी चुराकर उन्होंने पढ़ीं।

उनकी माताका परिचित एक भुक्खड़ रूसी लेखक जब एकबार उनके घर आया, तो उनकी एक कहानी तुर्गनेवको देकर माताने कहा—"ज़रा इसे पढ़ना तो, बेटा!" और तत्काल तुर्गनेवने वह कहानी पढ़कर सुना दी। इतना ही नहीं, उस लेखकसे यह भी कह दिया कि "तुम्हारी अपेक्षा तो क्राइलोवकी कहानियाँ कहीं अधिक सुन्दर होती हैं।" किन्तु इस सम्मति-प्रदर्शनके लिए भी उन्हें माताके चाबुककी मार ही खानी पड़ी। फिर भी तुर्गनेवने कहा—"अपनी मातृभाषाके इस प्रथम लेखककी भटके उपलक्ष्यमें प्राप्त इस पुरस्कारको मैं आजन्म नहीं भूल सकूँगा।"

नौ वर्षकी अवस्था हो जानेपर तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ मास्को गए और वहाँ जाकर उन्होंने अँगरेज़ी की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने शेक्सपीयर, शेली, कीट्स, बायरन आदिका अध्ययन किया। अन्तत १४ वर्षकी अवस्थामे वे मास्को-विश्वविद्यालयकी प्रवेश-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और तब उन्हें सेंट पीटर्सबुर्गके विद्यालयमें भर्ती कराया गया। उसी समय उनके पिताका देहान्त हो गया। उनकी माता उस समय इटलीमें थी।

बाल्यावस्थाके कुसस्कार

पीटर्सबुर्गसे बादमे वे बर्लिन जाकर तत्वज्ञानका अध्ययन करने लगे। मनोरंजनके अन्य प्रयोगोंमे भी उन्होने बहुत-सा समय नष्ट कर दिया। इधर बचपनमें घरके दास-दासियो एव नौकरोकी सगतिसे भी उनमे अनेक बुरे सस्कार आ चुके थे। बर्लिनमें रहते हुए प्रसिद्ध अराजकतावादी बाकुर्नीनसे उनकी मित्रता हो गई। इधर घरसे आनेवाले रुपए वे नाटक देखनेमें उड़ाने लगे। साथ ही बाकुर्नीनने भी उनके रुपयोसे अपने सिरका बहुत-सा कर्ज़ उतार दिया! इस प्रकार तुर्गनेव कभी तो किसी साहित्य-गोष्ठीमें वाद-विवाद करते दिखाई देते और कभी किसी प्रसिद्ध नटीके साथ होटलमें भोजन करते।

पुत्रके साहित्यकी आलोचनापर माताको खेद

तुर्गनेव यद्यपि अध्ययनमें कुशल थे, किन्तु अपनी माता की इच्छानुसार कोई उच्च उपाधि प्राप्त करनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। अन्तत अठारह वर्षकी अवस्था

कठोर आलोचना प्रकाशित की
उन्होंने कहा—"छि-छि, तुम
पर एक साधारण-से पुरोहित
जाती सर्वथा अपमानास्पद ही
मनोवृत्तिपर खासा प्रकाश

एक ि

तुर्गनेवकी सबसे पहली
कहानी' के नामसे प्रकाशित
बाबूकी 'श्रीकातेर भ्रमन
हो आता है। दोनो
दोनो लेखकोका उद्देश्य अपनी
घटनाका विवरण देना ही नहीं
कुछ नमूने ही जनताके सम्मुख
तुर्गनेवने अपनी इस पुस्तकमे
प्रकाश डालते हुए गुलामीकी
पूर्वक चित्रित की है। इस
आँसू आए बिना नहीं रहते।
प्रथा नाम-शेष करानेमें अन्य
इस पुस्तकका भी विशेष
अलेक्जेंडरने भी इस पुस्तकको
भी पढ़ते-पढ़ते आँसू रोकना
यह तो नहीं कहा जा सकता
सर्वोत्तम पुस्तकोमें इसकी
उस शताब्दिके कथाकारोमें
सेवियोमें अवश्य रहा है।

जेल

सन् १८५२ में प्रसिद्ध
होनेपर तुर्गनेवने उनके
पीटर्सबुर्गके सरकारी सेंसरने
अतएव इन्होंने उसे मास्को भेज
हो गया। इस लेखसे
उन्होंने जारके कानो तक यह
तुर्गनेवको पकड़कर जेल
नेवकी लोकप्रियता बहुत बढ़
गया था, उसके सामनेवाली

होती है, उसका अनुभव मुझे यहाँ रहते हुए भलीभाँति हो रहा है।"

संसारकी सर्वश्रेष्ठ कथा

जेलमें रहते हुए ही उन्होंने 'मम्' नामकी कथा लिखी, जो कार्लाइलके मतानुसार संसारकी सर्वश्रेष्ठ करुणाजनक कथा है। इसमें जिस कठोर स्त्रीका चित्र खींचा गया है, उसकी कल्पना कदाचित् उन्हें अपनी माताके स्वभावपर से ही हुई जान पड़ती है।

लोकमत और कलाकार

तुर्गनेवका 'फादर एण्ड चिल्ड्रेन' (पिता और पुत्र) नामक उपन्यास प्रकाशित होते ही रूसके युवक-समाजमें एक खलबली-सी मच गई। अराजकवादकी ओर युवकगण विशेष परिमाणमें आकर्षित होने लगे। दासताकी शृंखला तोड़कर नए प्रयोगोंके लिए यह अराजकवादी दल आतुर हो उठा था—अर्थात् पुराने नीति-नियमोंके बन्धन तोड़नेके लिए यह समूह छटपटा रहा था। इसीलिए इस प्रकारके लोगोंके प्रतिनिधि-रूपमें तुर्गनेवने 'बेज़रोव' नामके नायककी सृष्टिकर उक्त उपन्यासमें सामाजिक दोषोंका दिग्दर्शन कराया। बस, फिर क्या था? तत्काल ही युवा-समाजमें उनके प्रति अप्रियता बढ चली। किन्तु इन्होंने उसकी जरा भी परवाह नहीं की, क्योंकि लोक-प्रियता लगभग वारांगना-जैसी ही होती है। अतएव कलाकारको भूलकर भी उसके चक्करमें नहीं फँसना चाहिए। उसकी अनन्य निष्ठा तो कलापर ही होनी चाहिए। जो-कुछ दिखाई दे तथा जो बात हृदयको पट जाय, वही कलाकारकी कृतिके द्वारा व्यक्त होनी चाहिए। उसके सम्मुख राग-द्वेषकी कोई भावना नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि अपनी आत्म-शान्तिके अतिरिक्त अन्य कोई भी कसौटी उसके लिए श्रेष्ठ सिद्ध नहीं होती। कलाकारको लोकमतकी तराज़ूपर अपनी कला-कृतिको तौलकर देखनेकी मूर्खता भूल-कर भी नहीं करनी चाहिए। तुर्गनेवने प्रत्येक स्वभाव का चित्रण हल्के हाथोंसे ही सहानुभूतिपूर्वक किया है—अर्थात् अपनी किसी भी कथामें उन्होंने उपदेशक बननेका प्रयत्न कभी नहीं किया है। तुर्गनेवके सुसंस्कृत हृदयका दर्शन उनकी 'पिता और पुत्र' नामक रचनामें भलीभाँति होता है।

क्रांतिकारियोंकी सहायता

यद्यपि निहिलिस्ट लोगोंने तुर्गनेवके विषयमें अपना मन भले ही दूषित कर लिया हो, किन्तु उनके मनमें तो केवल अन्यायका विरोध करनेके लिए सर्वस्वकी बाज़ी लगा देने-वाले इन क्रांतिकारकोंके प्रति आदरकी ही भावना थी। उनके जीवनके अनेक वर्ष रूसके बाहर फ्रांस, जर्मनी आदि अन्य देशोंमें व्यतीत हुए। साथ ही वे इन देशोंसे अथवा रूससे भागकर अथवा निर्वासित होकर आनेवाले क्रांति-कारियोंकी यथाशक्ति सहायता भी करते रहे। प्रिंस क्रोपाटकिन जब रूसकी जेलसे सही-सलामत भाग आए, तो तुर्गनेवने उनके स्वागतार्थ एक भोज भी दिया था। तुर्गनेव मिस्किनसे भी परिचित थे। इसी प्रकार जिनीवा के एक समाचारपत्रको तुर्गनेवने तीन वर्षों तक प्रतिवर्ष ५०० फ्रांककी सहायता भी दी थी, क्योंकि वह पत्र क्रांति-कारी विचारधाराका था। ज़ार द्वारा फाँसीपर चढाए गए क्रांतिकारी विद्रोहियोंके चित्रोंका एल्बम भी तुर्गनेवने अपने पास रख छोड़ा था।

तुर्गनेव और टाल्स्टाय

तुर्गनेव और टाल्स्टाय यद्यपि समकालीन साहित्यकार थे, फिर भी दोनोंके दृष्टिकोणमें आकाश-पातालका अंतर था। टाल्स्टाय जीवनके लिए कलाका उपयोग करना चाहते थे, जबकि तुर्गनेव नितान्त कलावादी थे। वे 'कलाको केवल कलाके लिए ही' मानते थे। ऐसी दशामें इन दोनोंके बीच विवाद होना स्वाभाविक ही था। किन्तु ऐसा होते हुए भी जब टाल्स्टायको पता लगा कि तुर्गनेव अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहे हैं, तब उन्होंने इन्हें एक पत्र लिखा—"तुम्हारे अस्वस्थ होनेका पता लगा और यह भी ज्ञात हुआ कि तुम्हें भयंकर रोगने त्रस्त कर दिया है। किन्तु तुम्हारे प्रति मेरी कितनी श्रद्धा है, यह मैं आज ही अनुभव कर सका हूँ—अर्थात् यदि इस बीमारीमें तुम्हारी मृत्यु हो गई, तो मुझे कितना दुःख होगा, यह मैं कैसे बताऊँ? परमात्मा करें, हम-तुम परस्पर फिर मिल सकें। यदि संभव हो, तो सविस्तार समाचार तुम स्वतः अथवा दूसरेसे ही लिखवाकर अवश्य भेजो।"

वह हृदयस्पर्शी पत्र

जिस समय यह पत्र मिला, तुर्गनेव उस समय तक अत्यन्त दुर्बल हो चुके थे, फिर भी उन्होंने काँपते हुए हाथोंसे स्वतः इसका उत्तर दिया—"प्रिय ल्डिओ निकोलाय, मैं अत्यन्त अस्वस्थ होनेके कारण कितने ही दिनोंसे आपको पत्र नहीं लिख सका। और यदि सच कहा जाय, तो अब मैं मृत्यु-शय्यापर ही हूँ। अब मेरा इसपर से उठ सकना असंभव ही है। और इसीलिए उसके सम्बन्धमें विचार या चिन्ता करना व्यर्थ है! किन्तु एक बात मैं आपसे अवश्य कह देना चाहता हूँ कि मैं आपका समकालीन हूँ और इसी कारण मैं अपने-आपको अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ। प्रिय मित्र, आप पुनः साहित्य-सेवा आरम्भ कीजिए।

यह ईश्वरीय देन आपको प्राप्त हुई है यदि किसीने मुझको यह समाचार सुनाया कि मेरे इस निवेदनका आपपर प्रभाव पडा है, तो सचमुच मुझे कितनी प्रसन्नता होगी ! मैं तो अब समाप्तिपर ही हूँ। लिखनेमें भी मुझे बडा श्रम होता है । इसके महान् लेखक ! मेरे इस अतिम निवेदनको स्वीकार तो करेंगे न ? आपको तथा आपके सम्बन्धियो के प्रति हार्दिक स्नेह स्वीकार कीजिए। अधिक लिख नही सकता, थक गया हूँ !"

विवाहोत्तर स्त्री-सम्बन्धका समर्थन

तुर्गनेवकी अधिकाश कथाओंमें सूक्ष्म मनोविश्लेषण अत्यन्त स्पष्ट दिखलाई देता है। उन्होने मानवीय गुण-दोषोका समान रूपसे सहृदयतापूर्वक विवेचन किया है। 'रूदीन' तथा 'ए हाउस आफ् जेंटल फोक', 'आन द ईव', 'फादर एण्ड चिल्ड्रेन', 'स्मोक', 'वर्जिन सायल', 'पोर्टमैन्स स्केचेस' आदि उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें है। उनके स्वभाव एव पुस्तकोपर भी विषाद एव करुण निराशाकी गहरी छाया स्पष्ट दिखाई देती है। मानवी स्वभावपर उनका विश्वास था। इसीलिए मानवी दोषोके प्रति वे सहानुभूति प्रकट

करते थे, किन्तु वे खुद भी सम्बन्धकी अपेक्षा ... था। किसी नौसिखुए कहते है—"विवाह करके कोई आनन्द नही। भिन्न-कलाके विकासके लिए जितना तृप्त करनेके लिए नही। विवाहिता स्त्रीके प्रेममें उत्साह होता है।"

ठेठ अतिम क्षण तक सहृदयता कायम रही। नवोदित लेखक उनके पास कानेके लिए प्रकाशकसे प्रार्थना की, तो उस दशामें पत्र देकर उसकी पुस्तक महान् चित्रकार १८८३के यदि पाठक मानव-स्वभावके चाहें, तो उन्हें तुर्गनेवकी

नया मकान

क० ना० सुब्रह्मण्यन्

राव बहादुर नरसिहम्की अतिम लालसा भी पूरी हो गई। उनका नया मकान बनकर तैयार था और प्रात-काल होते ही शुभ घडीमें वे गृह प्रवेश करनेवाले थ। इस अवसरपर धार्मिक कृत्योके साथ-साथ वृहत् धूमधाम एव भोज आदिका प्रबध भी किया गया था।

प्राय तीस वर्ष पूर्व, नरसिहम्ने अपना जीवन सरकारी दफ्तरकी एक बहुत मामूली और नगण्य-सी नौकरीसे शुरू किया था। बडे ही कष्ट और अध्यवसायसे धीरे-धीरे उन्नति करके वे पहले 'अफसर' बने और फिर 'राव बहादुर'। चिरकालसे उनकी इच्छा मद्रासके रईसोवाले सबसे अच्छे मुहल्लेमें अपना एक मकान बनवानेकी थी और आज उनकी वह इच्छा भी पूरी हो गई थी। कलके स्वर्णिम नव-प्रभात में वे -वदना धमधामके साथ नग

सम्पन्नताकी प्रतीक है। वाली चीजोमें मकान ही इस मौकेपर नरसिहम्के न था।

कोई खास जरूरत न प्रवेशके उत्सवकी नौकरोके मामलेमें वे भी उन्हें ऐसा मिला, जैसा बहादुरका बच्चा, छोटा अपने जीवनके इस परम भी नौकरके ऊपर छोडना कारण वे स्वय ही पूरी

एक बडा-सा शानदार पडाल तैयार किया गया। ऐसे बडे-बडे लोग आनेवाले थे, नरसिहम् जिन सबकी पूजा करते थे। एक-दो राजकुमार और बहुतोंके प्रतिनिधि भी आनेवाले थे। जैसे कोई दूसरे हो, वे कह उठे—'नरसिहम् ने जीवनमें सचमुच कुछ कर दिखाया है।' और अपने जीवनके इस श्रेष्ठतम सुप्रभातका उन्हे जैसे पर्याप्त गर्व था। आम्रपत्र, ताड व केलेके पत्तोसे पडालका कोना-कोना सजाया हुआ था। उस पट्टीदार नीले रगके शामियानेकी शोभा देखते ही बनती थी। बहुत भड-कीला न होनेपर भी वह सुरुचिपूर्ण था। पुरोहित और ब्राह्मण लोग इस वैभव-प्रदर्शनसे हतबुद्धि हो गए थे। बादमें होनेवाला भोज तो लोग लबे अर्से तक याद रखेंगे।

नरसिहम्ने खूबसूरत निमत्रणपत्रोपर स्वय सबके नाम और पते लिखे थे। इन आमत्रितोमे से कुछ उनके मित्र थे। किंतु अधिकतर लोग ऐसे थे, जिन्हें न तो मित्र और न शुभचिंतक ही कहा जा सकता था। कुछ ऐसे भी थे, जो केवल 'परिचित'की श्रेणीमें आते थे। इस अवसरपर नरसिहम्ने शहरके सबसे अच्छे नाद-स्वर-विद्वान को बुलाया था और उनसे कहा था कि ऐसा गाना-बजाना होना चाहिए, जैसा कि कभी न हुआ हो। दिनके बारह घटोमे भला सारे काम पूरे हो सकते थे? अत रातमे बहुत देर तक वे काम देखते रहे। नरसिहम् जब सोने गए, तो बेहद थक गए थे, किन्तु फिर भी उन्हे नीद नही आई। बहुत देर तक वे करवटें बदलते रहे। उनके दिमागमें अनेको प्रसग आ रहे थे, किंतु एक बात बार-बार घूम रही थी कि 'अतमें आज मेरी इच्छा पूरी हुई। अब मैं नए मकानमें पदार्पण करूँगा। जीवनमें मुझे अब सब-कुछ मिल गया।' उनके मनमे आता था कि क्यो न अभी ही सबेरा हो जाय और जल्दीसे गृह-प्रवेश कर डाला जाय। घडीकी आवाज़ सुनाई पडी—चार। ओफ्, अभी तो दो घटेकी देर है सबेरा होनेमे। नरसिहम्के लिए बिस्तर पर पडे रहना असभव हो गया। अपने किरायेकी छत के ऊपर एक आरामकुर्सी खीचकर वे लेट गए—नव-प्रभात के स्वागतकी तैयारीमें।

घरके सब प्राणी अभी सो रहे थे। दिन-भर वे व्यस्त रहे और अगले दिन भी बहुत काम था, अत सभी लोग नीद पूरी करनेकी चेष्टामें थे। अगर नीद न थी, तो केवल नरसिहम्की आँखोमें। आरामकुर्सीपर लेटते हुए उन्होने सामनेकी ओर एक नज़र डाली। नया मकान इस मकानके ठीक सामने था। अधकारके कारण यद्यपि मकान दिखलाई नही पडता था, पर उन्हें निश्चय था कि नारियलके झुरमुटके पीछे ही वह था। मिलापुर मे यह सबसे अच्छा मुहल्ला था—साथ ही सबसे मँहगी जगह भी। भविष्यके मान-सम्मानकी कल्पनामे नरसिहम डूब गए।

मनुष्य समयके हाथकी कठपुतली है। भविष्यकी कल्पना करते-करते अचानक राव बहादुरका ध्यान अतीत की ओर चला गया। उन्हें पत्नीकी याद हो आई। बहुत वर्ष पूर्व वे उसे याद किया करते थे, पर अब तो वे उसके बारेमे जैसे बिल्कुल ही नही सोचना चाहते। उन्होने अपने सिवा और किसीके बारेमें कभी नही सोचा। फिर भला इस शुभ अवसरपर उसकी याद? वे उसको अपने ध्यानसे दूर करनेकी पूरी चेष्टा करने लगे और अपनी आशा-प्रत्याशापर फिर विचारने लगे। बीते दिनोकी ऐसी स्मृति थी, जिसे वे आज स्मरण करना चाहते हो। भूलमे तो नीरसता और शुष्कताके सिवा और कुछ था नही, जिसे याद किया जाय। स्कूल और कालेजके दिनोमे भूख उनकी चिर-सहचरी थी। नरसिहम्ने जबसे होश सँभाला, अपनेको अकेला ही पाया। अकेले ही उन्होने परिस्थितियोका सामना किया और आजकी इस स्थितिपर भी वे अकेले ही पहुँचे थे। किसीको भी उन्होने पास नही फटकने दिया। आरभसे ही उन्होने अपने-आपको सफलता प्राप्त करनेकी चेष्टामें जी-जानसे लगा दिया। जीवन की शुरुआत उन्होने एक बहुत मामूली नौकरीसे की थी और जार्ज टाउनमें आ बसे थे। जार्ज टाउनको कुछ लोग 'ब्लैक-टाउन' भी कहते है, जो बडा ही उपयुक्त जान पडता है। जार्ज टाउनसे चिलाड्रिपेट तककी यात्रा बडी लबी और कष्ट-साध्य थी। किन्तु उसके बाद रास्ता आसान हो गया और दूसरी मजिल—ट्रिप्लिकेन—की यात्रा उतनी कठिन न रही। फिर तो प्रगति अपने-आप होती गई। ट्रिप्लिकेनसे मिलापुरके पूर्वी भागमे और वहाँसे फिर ठेठ पश्चिमी भाग तक राव बहादुर बहुत सुगमता-पूर्वक पहुँच गए। जिस महान् कार्यको उन्होने उठाया था, वह अतमें पूरा हुआ। साथ ही उनकी चिर-अभि-लषित इच्छाकी भी पूर्त्ति हो गई। अभी भी वे एकदम अकेले थे। उन्होने मन-ही मन कहा—'मेरी यात्रा अच्छी ही रही। अब तो सतोष और शाति दोनो ही मिल गए।'

और नवीन सुप्रभातमे वे अपने नए मकानमे पदार्पण करेंगे। यद्यपि इसमें रुपए बहुत लग गए थे, तथापि उन्हें इसकी प्रसन्नता थी। प्रत्येक पाई ठीक-ठीक ही खर्च हुई है—उन्होने अपने-आप ही कहा। आज उनके लिए पैसेका आना बहुत आसान हो गया था, किंतु इसका यह

मतलब नही कि उसे व्यर्थ फूंका जाय। एक समय था जब उन्हें पैसे-पैसेका मुँह देखना पडता था। पर अब तो वे गजेटेड आफिसर थे। उनके नामका उल्लेख अक्सर सरकारी गजटोंमें होता था। एक पूरा विभाग उनके नीचे था और वे अपने विभागके डिक्टेटर थे—एक उपदेवताकी तरह। उनकी पगडी, उनकी भाग-दौड, उनकी भाव-भगिमा तथा तेवर आदिकी ओर उनके सहकारियोंकी नजर लगी रहती थी। कभी-कभी वे बडी ही निर्ममता और कठोरतापूर्वक राव बहादुरकी आलोचना करते थे, किंतु उनके मुंहपर कुछ कहनेकी हिम्मत किसीमें न थी।

एक दिन अचानक वे राव बहादुर बन गए। निश्चय ही यह कोई अप्रत्याशित बात न थी और वे अपनेको इस सम्मानके लिए बहुत उपयुक्त मानते थे। उसकी खुशी का उत्सव मनाते समय ही उन्हे खयाल आया था कि यदि अपना एक मकान हो, तो क्या ही अच्छा रहे। और उसी दिनसे वे इस कार्यमें जुट पडे थे। सवेरा होते ही राव बहादुर नए मकानमें आएँगे। भला एक आदमीको इससे अधिक और क्या चाहिए!

अचानक उन्हें ऐसा लगा कि कोई हँस रहा है। चौक कर उन्होने इधर-उधर देखा। कही कोई भी न था। यहाँ वे अकेले थे। आज ही क्यो, उनका सारा जीवन ही एकाकी रहा है। निश्चय ही छतपर ऐसा कोई न था, जो उनके ऊपर हँस सके। इस समय छतपर हँसनेवाला कोई न था, केवल भ्रम हो गया था उन्हें।

वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि नये मकानमे प्रवेश करनेके पूर्व सभी आदमियोंको बहुत सावधानीसे काम करना चाहिए—विशेषकर मेहमानोको निमंत्रित करनेमें। ऐसे लोगोंको न बुलाना चाहिए, जिनके पास अपना मकान न हो, क्योंकि उन्हे गृह-स्वामीके भाग्यपर अवश्य ही ईर्ष्या होगी और इस प्रकार शुभ कार्यमें वे अशुभका बीज बोएँगे। ऐसे लोगोंसे भी दूर रहना चाहिए, जिनके पास रहनेकी जगह अच्छी और आरामदेह न हो। जिंदगी-भर किराए के मकानोमें सडनेवालोंसे तो कोसो दूर रहना चाहिए। मकान-मालिकके सौभाग्यके ऊपर उनकी दृष्टि लगे बिना न रहेगी। ऐसे लोग इन मौकोंपर खूब हँसी उडाते हैं और

है और दूर नही,
अभावग्रसितोंका साथ
हो गया। आज तो
आवेंगे—नई, सुन्दर और
स्वय राव साहबके पास
श्रीमती स्टोन, लेडी
मिस्टर रत्नम्—एक-ए
बहादुरने गिन डाला।
नरसिंहम् गर्वसे फूल उठे।
उच्चारण किया। थे वे
मधुर और सुखद! हाँ,
जो बोले बिना न रहेंगे,
वे लोग जान-बूझकर नही
बुराई करेंगे। ये पुराने
होते हैं—राव बहादुरने
यहाँपर उनकी
नरसिंहम् स्वाभाविक
सोचते थे—जब वह जि
स्मृतिमें भी न थी।
नरसिंहम्का ध्यान उसीकी
पत्नीकी अनुपस्थितिका
था। या यों कहें कि इसपर
न होगा। जब तक वह
ही रहे। उसके मरनेके
हुई और आज तो वे
जहाँ तक प्रेम या ऐसी
नरसिंहम्ने दुनियामें कभी
अपनी पत्नीसे भी नही।
बाद कभी भी वह पतिके
नही कर पाई। एक
नौकर थी, बस और कुछ
करते थे—'वह खाना
अस्तित्वकी एकमात्र
पुत्र जरूर पैदा किया,
ऐसी नौकरानी भी न थी,
हो सके। पत्नीकी

आफिस दोनो ही जगह वे सर्वेसर्वा थे। प्रेमको रावबहादुर एकदम अनावश्यक मानते थे, यहाँ तक कि उनका पुत्र भी उन्हे पिताके रूपमे न जानता था। वह तो उन्हें 'राव-बहादुर', 'गज़ेटेड आफिसर' या 'अमुक विभागके प्रधान' के रूपमे ही जानता था। यही पर्याप्त है, मन-ही-मन राव बहादुर बोले।

सबेरा होते ही वे अपने नए मकानमे प्रवेश करेंगे। अचानक भावुकताके वश हो उन्होने मन-ही-मन जिज्ञासा की—मैंने यह मकान किसके लिए बनवाया और क्यो बनवाया? किंतु तुरन्त ही उन्होने अपने-आपको स्वस्थ कर लिया और बोले—मैंने इसे अपने सतोषके लिए बनवाया है। यह मेरे जीवनका एक अग है। इससे अधिक क्या और कोई चीज़ हो सकती है?

आरामकुर्सीपर लेटे-लेटे नरसिंहम्को लगा कि उनका मन और शरीर दोनो ही अस्वस्थ-से हो रहे हैं। जीवनमें उन्होने कभी भी किसी विषयपर सोच-विचार नही किया, क्योकि उसे वे समय बर्बाद करना ही समझते थे। किंतु आज ऐसा लगता था, मानो कुछ विशेष घटनाओंपर विचार करना आवश्यक हो गया है। गृह-प्रवेशके-से शुभ अवसरके पूर्व जो चित्र पिछले जीवनका उनके सम्मुख आ रहा था, वह बडा ही नीरस और महत्वहीन था। राव बहादुरने ऐसा अनुभव किया कि कोई उनके पीछे खडा है। उन्हे बडा ही आश्चर्य हुआ। ऐसा लगा कि उस अदृश्य व्यक्तिकी उपस्थिति उन्हें अपनी प्रवृतिके विरुद्ध सोचनेको प्रेरित कर रही है। फिर अचानक ऐसा लगा कि कोई उनके पीछे एकदम सटकर खडा है, बहुत ही पास। वे पीछे देखनके लिए मुडे। कैसी बेवकूफी है? भला कौन हो सकता है यहाँ? राव बहादुर कभी भी भावुक न थे। और आज इस उम्रमें निरर्थक कल्पनाओ और विचारोमे बहना उन्हें महज़ बेवकूफी मालूम पडी।

एक क्षणके लिए उन्हें फिर कुछ भय-सा हुआ। उनको लगा कि उनकी पत्नी खडी है—वह पत्नी, जिससे उन्हे कभी भी कोई आसक्ति न थी। आज वह महाकालीके रूपमें खडी थी। यह सब कुछ नही, केवल क्षणिक भ्रम है राव बहादुरने अपने-आपको स्थिर किया और इस विचार को दिमागसे एकदम निकाल फेंका, जैसे दूधसे मक्खी। फिर कुर्सीपर अपना स्थान जरा-सा बदलकर वे आरामसे बैठ गए और अपने-आप बोले—'मै नरसिंहम् हूँ, राव बहादुर नरसिंहम्, मिलापुरके एक नए मकानका मालिक! उन्हें इस बातका हमेशा गुमान था कि उनका मस्तिष्क एकदम स्वस्थ और सुलझा हुआ है। उन्होने कभी भी व्यर्थकी बातोको महत्व नही दिया। ग़लतफहमी और रूढिमय विचारोसे वे अपनेको कोसो दूर रखते थे। उन्हे कालीमे कोई आस्था न थी—चाहे वह लौकिक हो या दैविक। अपने जीवनमें उन्होने कभी भी धर्म-कर्ममें विश्वास नही किया।

पूर्वका गहन अधकार धीरे-धीरे कम हो रहा था। प्रात कालका शीतल समीर मद-मद वह रहा था। कौओ की काँव-काँव शुरू हो गई। नरसिंहम्का ध्यान उन गरीब मज़दूरोकी ओर चला गया, जिन्होने सुबहसे शाम तक पसीने-पसीने हाकर मेहनत की थी और उनका मकान तैयार किया था। किंतु, इसमें एहसान अनुभव करने की तो कोई बात नही। उन्होने काम किया और पूरी मज़दूरी पाई, बस। नरसिंहम्ने सामनेकी ओर देखा। सबेरेके बढते हुए प्रकाशमें नारियल्के झुरमुटोके पार उनका नया मकान धीरे-धीरे स्पष्टतर हो रहा था। उनका लक्ष्य पूर्ण हो गया था। मेरे नए मकानमें वह सब-कुछ है, जो एक मकानमे चाहिए। कितनी भव्य इमारत है। यह सब मेरा है—मेरा, मेरा। खुशीके मारे राव बहादुर मदहोश हो गए। किंतु यह ऐसी खुशी थी, जो सचमुच राव बहादुर पूरी तरह अनुभव नही कर पा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि कही कुछ कमी रह गई है। जी खोलकर खुशी मनानेके मौकेपर लग रहा था जैसे कोई उन्हें पीछे खीच रहा था।

घरमें और बाहर लोगोका चलना-फिरना शुरू हो गया था। आध घटे बाद ही तो गृह-प्रवेशका काम शुरू हो जायगा। नरसिंहम्को फिर ऐसा लगा कि उनकी कुर्सी के पास कोई खडा है और चुपचाप हँस रहा है। चौंक कर उन्होन देखा, किंतु वहाँ कोई न था। उनपर कोई हँसे, ऐसी हिम्मत किसमें थी?

उनकी लालसा पूरी हो गई थी। जिस-जिस चीज़की उन्हें कामना थी, वह सब उन्हे प्राप्त हो गई थी। आज का प्रभात, जो धीरे-धीरे स्वर्णिम चरणोसे पदार्पण कर रहा था, आजीवन याद रहेगा। इसी प्रभातमे वे अपने नए मकानके मालिक बनेंगे। और यह कोई मामूली मकान न था, पूरा किला था, किला। बडी ही तबीयत और परिश्रमसे राव बहादुरने इसे अपनी रुचिके अनुकूल बनवाया था। किसीकी हँसी फिर सुनाई पडी। यह आवाज़ जितनी ही आश्चर्यजनक थी, उतनी ही परिचित, जितनी ही दूर, उतनी ही निकट। बडी ही विचित्र बात थी। नरसिंहम्ने पुन अपना स्थान जरा-सा बदला।

उन्हें लगा जैसे नशा चढ़ रहा हो। उन्हें नींद-सी आने लगी। यह कोई नींद आनेका समय है? अभी पता नहीं कितने काम पड़े हैं।

पूर्वमें सूर्य अब धीरे-धीरे आकाशको आलोकित करता हुआ ऊपर उठ रहा था। शहनाईवाला नीचे सड़कपर दिखलाई पड़ा। अभी ही मंगल-वादन प्रारंभ होगा, जो पूरे समय तक चलता रहेगा। शहनाईवालेको अपने मकानकी ओर जाते देखकर नरसिंहम्‌ने उठनेकी कोशिश की। उधरसे शहनाईकी आवाज आने लगी। अभी बहुत-सा काम पड़ा है, उन्होंने अपने-आपसे कहा।

हा हा हा! इस बार भ्रमकी गुंजाइश न थी।

अवश्य ही कोई था, जो बार
उनके कानके पास। यह
खींचे ले रही थी। ऐसा
रहा हो। राव बहादुरने
किंतु वे हिल भी न पाए।
हिला पाए। ऐसा लगता था,
कुर्सीमें ठोक दिया गया हो,
खड़े होकर अपनेको देख रहे

इस समय गृह-प्रवेशका
मकानसे शहनाईका मधुर

प्रेमचन्दजीका बचपन

श्री नरोत्तम नागर

खोजनेपर भी ऐसे लेखक विरले ही मिलेंगे, जिनके साहित्य और जीवनमें इतना मेल और इतनी अभिन्नता हो, जितनी कि प्रेमचन्दजीमें पाई जाती है। यही उनकी महानता है, इसी रूपमें हमने उन्हें जाना, पहचाना और परखा है, उनका सम्मान और आदर किया है, साहित्य-जगत्‌की एक महान् विभूतिके रूपमें उन्हें अपने हृदयोंमें स्थापित किया है। प्रेमचन्दजीकी महानताको सभी स्वीकार करते हैं—वे लोग भी, जो उन्हें गांधीवादी मानते हैं, और वे लोग भी, जो उन्हें समाजवाद-साम्यवादका अग्रदूत घोषित करते हैं। कभी-कभी, बल्कि कहना चाहिए कि बहुधा, इन दोनोंमें झगड़ा भी उठ खड़ा होता है और ये दोनों एक-दूसरेसे सीधा सवाल करते हैं, "तुम ढोंगी हो। तुम्हें प्रेमचन्दकी सराहना करनेका कोई अधिकार नहीं है। तुम्हारी सराहना झूठी है, इसलिए प्रेमचन्दजीको जैसा तुम समझते हो, वैसा वे नहीं हैं।"

इस झगड़ेमें हम यहाँ नहीं पड़ेंगे। इसके उल्लेख करनेका प्रयोजन भी इतना ही है कि इसकी वजहसे प्रेमचन्दजीके बारेमें जो-कुछ पढ़नेको मिलता है, वह अधिकांश एकांगी और बहुत-कुछ अतिरंजित होता है, प्रेमचन्दजीके

गांधीवादका समर्थन करनेवाले
वादी आलोचक इन पात्रोंकी
वादकी आलोचना करना
प्रेमचन्दजीके ये पात्र गद्दारीके
उन तत्वोंको प्रकट करते हैं,

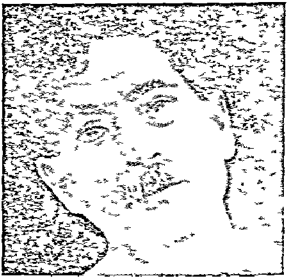
इस प्रकार प्रेमचन्दजीके
उनका मूल्यांकन भी विरोधी
के संघर्षसे पूर्ण है। यह
जीवनके साथ उनके सम्बन्ध
का नाम लेते ही एक ऐसे
सामने मूर्त्त हो उठता है, जो
में धनपना और संघर्षोंमें
इतना ही नहीं, प्रेमचन्दजीका
हमारे सामने उठ खड़े होते
साम्यवादी, आदर्शवादी थे या
या क्रान्तिवादी? ऐसे
आसान नहीं होता। उसके
अपने प्रिय साँचेमें ढालनेका
और हम एक खास किस्मकी

और इतना प्रभावपूर्ण चित्रण किया है कि हम प्रेमचन्दजीको उनसे अलग करके नहीं देख सकते—या कहिए कि उन्हें अलग करके देखना हमें अच्छा नहीं लगता। कल्पना तजवीज करती है कि उन्होंने एक गरीब किसानके घरमें जन्म लिया था, 'गोदान' के होरीके रूपमें प्रेमचन्दजीने अपने ही जीवनका चित्रण किया है। हमें यह अच्छा नहीं मालूम होता, प्रेमचन्दजीका जो कल्पना चित्र हमारे मनमें बना है, उससे इस बातका मेल नहीं खाता कि वह किसानकी टूटी-फूटी झोपड़ी या किसी मजदूरकी खोलीको छोड़कर और कहीं जन्म लें। इसके साथ-साथ एक और बात है जो प्रेमचन्दजीके साथ सम्बद्ध है। वह यह कि सात-आठ वर्षकी आयुमें उनकी माँका देहान्त हो गया था। इतना ही नहीं, बल्कि उनके पिता घरमें एक विमाता भी ले आए थे। करेलेको नीम चढ़ा बनानेमें और क्या चाहिए। एक तो जानलेवा गरीबी, दूसरे माँका न होना, तीसरे विमाताका आगमन। ऐसा मालूम होता है मानो विधाताने कड़वी घूँटी पिलानेके लिए ही प्रेमचन्दजीको इस दुनियामें भेजा था।

स्थितिके इस कारुण्यको गहरा रंग देनेमें खुद प्रेमचन्दजीकी कहानियों और उपन्यासोंने भी काफी योग दिया है। माँके परलोक सिधारनेके बाद सदाके लिए अनाथ हो जाने वाले कितने ही पात्रोंकी प्रेमचन्दजीने रचना की है, जिनका एकमात्र लक्ष्य माँकी गोदके सुख और उससे वंचित होनेके दुर्भाग्यको प्रकट करना है। इन पात्रोंको माँकी गोदकी रह रहकर याद आती है और इसी यादमें वे तपेदिकका शिकार होकर मर जाते हैं। माँकी गोदकी बलिवेदीपर इस प्रकार प्रेमचन्दजीने न जाने कितने पात्रोंकी भेंट चढ़ाई है। नतीजा इसका यह है कि प्रेमचन्दजीके बचपनकी कल्पना करते ही हमें इन पात्रोंकी याद हो आती है, और माँकी गोदके सुखके पीछे—जिसका प्रेमचन्दजीने अतिरंजित और कुछ हद तक विकृत चित्रण किया है—उस सुखको हम भूल जाते हैं, जो कि बालकको अपनी माँकी गोद छोड़कर पाँव-पाँव चलने और घरसे बाहर घूमनेमें प्राप्त होता है। प्रेमचन्दजीका बचपन भी इसका अपवाद न था। दोनों डैने फैलाकर वह उड़ना जानता था, उड़ता था।

बनारसके पास लमही गाँवमें प्रेमचन्दजीने जन्म लिया था। उनका घर किसी गरीब किसानकी झोपड़ी या मजदूरकी खोली नहीं, बल्कि जमींदारके बंगलेकी याद दिलाता है। अतीत कालमें यह निश्चय ही किसी बंगलेसे कम नहीं रहा होगा। यह बात दूसरी है कि चहुँओर किसानोंकी झोपड़ियों और गाँवकी दीनतासे घिरा होनेके कारण उसका अस्तित्व उल्लासकी जगह हृदयमें वेदनाका संचार करता हो, या उसकी पहलेवाली सम्पन्नता विलीन हो गई हो और उसकी मौजूदा खस्ता हालतको देखकर चहुँओर स्थित किसानोंकी झोपड़ियाँ भी उसका उपहास करती प्रतीत होती हों। पुराना वैभव बीत जाता है, लेकिन उसकी याद फिर भी बनी रहती है। पुरानी आदतें आसानीसे पीछा नहीं छोड़तीं। अतीतका मोह और उसकी यादको अमर बनानेकी ख्वाहिश फटे तकिएमें भरी रुई की भाँति जब-तब अपना चेहरा दिखाती रहती है।

प्रेमचन्दजी तेतर कहलाते थे। तीन लड़कियोंके बाद उन्होंने जन्म लिया था। पिताने बड़े प्रेमसे उनका नाम रखा—धनपतराय। उनके चचा और भी आगे बढ़े। धनपतराय नाम उन्हें हल्का मालूम हुआ। उन्होंने दूसरा



प्रेमचन्द

नाम तजवीज किया—नवाबराय। उन्हें क्या मालूम था कि उनका यह धनपतराय और नवाबराय बड़ा होकर प्रेमचन्द बनकर धनकी दुश्मनीको अपने जीवनका आधार बनाएगा, नवाबोंकी नवाबी और राजाओंकी राजाईकी चिन्दियाँ उड़ाएगा।

लेकिन यह बादकी बात है। अभी तो उसी दौरको लेना है जबकि खुद प्रेमचन्दजीको भी नवाबराय कहलाना और नवाबराय बनना अच्छा लगता था, यह बात दूसरी है कि वह नवाब [illegible] थे या उनकी रियासत केवल उस डाकखाने तक सीमित थी जहाँ उनके पिता अजायबराय काम करते थे। पूर्वजोंके वैभवका चाहे जो रूप रहा हो लेकिन प्रेमचन्दजीने—बल्कि कहना चाहिए कि धनपतराय

या नवाबरायने—जब जन्म लिया, तब उनके पिता अजायबराय गाँवके डाकखानेमें मुंशी थे। यह डाकखाना उनकी रियासत था और डाकका थैला लानेवाला हरकारा उनका कारिन्दा, जो जब भी आता था, अपने साथ ईख, अमरूद, मूली और गाजर आदि लेकर आता था। प्रेमचन्दजीकी उससे खूब पटती थी और उसके कन्धोंपर सवार होकर उसे हाँकते और किलकारियाँ भरते थे। कन्धेपर बल्लम रखे, अपनी घुँघरू बजाता, वह दूरसे आता दिखाई देता। प्रेमचन्दजी को देखकर वह और भी तेज़ दौड़ने लगता, खुशीसे उछलकर प्रेमचन्दजी उसकी ओर लपकते और अगले ही क्षण उसका कंधा प्रेमचन्दजीका सिंहासन बन जाता। प्रेमचन्दजीको कन्धेपर बैठाकर वह और भी तेज़ दौड़ने लगता और प्रेमचन्दजीको ऐसा मालूम होता मानो हवाके घोड़ेपर उड़े जा रहे हों।

शायद ही कोई बालक हो, जिसने गुल्ली-डंडेके खेलके पीछे खाने-पीनेकी सुधि तक न बिसार दी हो। प्रेमचन्दजी भी इसका अपवाद नहीं थे। सुबह होते ही घरसे निकल जाना, पेड़पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डंडे बनाना ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें भुलाना मुश्किल है। हाथ-भरका डंडा और बित्ता-भरकी गुल्लीमें न जाने क्या जादू समा जाता है कि न नहानेकी सुधि रहती है, न खानेकी, न माँ-बापकी झिड़कियोंकी। खुद प्रेमचन्दजीके ही शब्दोंमें—"गुल्ली है तो ज़रा-सी, पर उसमें दुनिया-भरकी मिठाइयोंकी मिठास और तमाशोंका आनन्द भरा हुआ है।

कनकौवा उड़ानेका शौक भी कुछ कम नहीं होता। कनकौवा उड़ानेसे भी अधिक मज़ा आता है कटा हुआ कनकौवा लूटनेमें। लग्गे और झाड़दार बाँस लिए बालकोंकी एक पूरी सेना जब कटे हुए कनकौएको लूटनेके लिए दौड़ती है, तो आगे-पीछेकी कोई सुधि नहीं रहती। सभी मानो उस कनकौवेके साथ आकाशमें उड़ने लगते हैं, जहाँ सब-कुछ समतल होता है, न वहाँ मोटरकारें होती हैं, न ट्राम, न गाड़ियाँ। लग्गे और झाड़दार बाँस लिए कनकौवा लूटने में व्यस्त बालकोंकी इस सेनामें प्रेमचन्दजी भी किसीसे पीछे नहीं रहते थे। माँझा देना, कन्ना बाँधना, कनकौवा उड़ाने की कलाकी सभी बातोंमें वह परिचित थे।

आम और अमरूदके पेड़ोंपर चढ़ना, खेतोंमें घुसकर

प्रेमचन्दजी उन बालकोंमें कभी नहीं छोड़ना चाहते, हर रहते हैं। माँ उनकी बहुधा समय बिस्तरेपर पड़े-पड़े बीतता करते थे, लेकिन गुड़की से भी उनका प्रेम कुछ कम नहीं रहती थी। आँखें बचाकर श फाँकने या हँड़ियामें से गुड़की का मोह छोड़ना उनके बूतेसे बैठकर पंखा झलते समय उनकी चाबुका लेती रहती थी।

खेलनेमें ही नहीं, एक मौलवी साहबके यहाँ पढ़ने उनसे खूब खुश रहते थे। पढ़नेमें तेज़ थे, दूसरे इसलिए खुश रखना जानते थे। घरसे लिए कोई-न-कोई सौगात ले मटरकी फलियाँ तोड़ लीं, कभी गेहूँकी हरी बालें।

स्कूल मौलवी साहबके को पढ़ानेके अलावा मौलवी कराते थे। मौलवी साहबको चिड़ियोंके लिए बेसन पीसना लड़कोंके पाठ्यक्रममें शामिल चिड़ियाँ भी पढ़नेमें योग देती हों चाहे न हों, लेकिन साहबको एक और हुनर आता भाँति नहीं थे, जिन्हें लड़कोंके सिवा और कुछ नहीं आता, तक वे नहीं टाँक सकते। के सामने अँधेरा छा जाता है साहब हाथ-पाँवके इतने सीनेकी कला जानते थे और का काम करते थे।

प्रेमचन्दजीका काम था -

तो चारपाई खडी करके उनमें से एक रुपया उठा लिया। रुपया हाथमें आते ही ऐसा मालूम हुआ मानो सारी खुदाई अपने हाथमें आ गई हो। बारह आने तो मौलवी साहबको उनकी फीसके भेंट कर दिए। सोचा, मौलवी साहब महीना खत्म होनेसे पहले ही फीस लेकर खुश हो जायँगे। बाकीके अमरूद और रेवडी आदि खरीदकर अपनी जेबें भर ली।

चाचाको जब पता चला कि एक रुपया ग़ायब है, तो दोनोकी खोजमें निकले। झूठ बोलनेकी कलामें दक्ष न होनेके कारण तुरत सारा भेद खुल गया। चचेरे भाईकी खूब मरम्मत हुई। प्रेमचन्दजी बच गए। चाचा और चाची दोनोका गुस्सा अपने लडकेपर ही उतरा।

पडौसमें ही एक अहीरन रहती थी। वह विधवा थी। चाचीजीकी उससे बहुत घुटती थी और दोनो मिलकर ऐसी बातें किया करती थी, जिनका सुनना बच्चोंके लिए वर्जित माना जाता है। प्रेमचन्दजी उनकी बातोको सुनते और काम विज्ञानकी जानकारी प्राप्त करते!

प्रेमचन्दजीके एक मामू थे। वह अधेड हो गए थे, लेकिन अभी तक बिन ब्याहे थे। पासमें जमीन थी, मकान था, पर गृहिणी-रूपी खूंटेसे बँधे न रहनेके कारण छुट्टा घूमते थे। एक बार, होलीके दिनोमें, वे प्रेमचन्दजीके घर भी आए। उन्होने शराबकी एक बोतल मँगाई और कोठरीमे रखकर कही चले गए। प्रेमचन्दजीने मौका देखा और कोठरीमें घुसकर ग्लासमे एक घूँट शराब डाली और मीठा शरबत समझकर पी गए। लेकिन उसका स्वाद मीठा नही, कडुवा था। अभी गला जल ही रहा था कि मामू साहब आ गए और इतना बिगडे कि जिसका ठिकाना नही। पिताजीसे भी उन्होने शिकायत की और प्रेमचन्दजीपर खूब डाँट पडी। मामूकी यह हरकत और बात-बातमें उनका रौब झाडना तथा पिताजीसे शिकायत करना प्रेमचन्दजीके हृदयमें काँटेकी भाँति खुब गया। आखिर प्रेमचन्दजीकी भी बारी आई और उन्होने मामूसे ऐसी कसर निकाली कि उन्हे मुँह छिपाकर भागते ही बना।

मामूके यहाँ एक चमारिन गोबर पाथने और बैलोको सानी-पानी देने आती थी। मामू साहब उसे देखकर मचल गए। वह भी एक ही चण्ट थी। मामू साहबको उसने खूब नचाया, उनसे पैसे व चूनरी आदि वसूल की और अन्तमें चमारोंके एक जत्थेसे मामूको इतना पिटवाया कि उन्हें छठीका दूध याद आ गया। प्रेमचन्दजीको जब यह घटना मालूम हुई, तो बहुत खुश हुए। इस घटनाको लेकर उन्होने एक नाटक लिखा, जिसे प्रेमचन्दजीकी पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। जब मामू घर आए, तो उनके सिरहाने यह नाटक रख दिया। प्रेमचन्दजी यह देखनेके लिए बेचैन थे कि उनके नाटकका उनपर क्या असर हुआ। लेकिन दूसरे दिन सवेरे ही जब प्रेमचन्दजीने उनकी कोठरी में जाकर झांका, तो मामू साहब वहाँ नही थे। उनका नाटक भी नही था। दोनो ही ग़ायब हो गए थे।

प्रेमचन्दजीके जीवनकी इस घटनाको उनके बचपनके अन्तका सूचक कह सकते हैं। उस समय उनकी आयु तेरह साल थी। इसके एकाध साल बाद ही उनका विवाह हो गया। पन्द्रह सालकी आयु तक पहुँचते-न-पहुँचते उनके पिता भी मर गए, पूरी गृहस्थीका बोझ उनके कन्धोपर आ पडा और उनके जीवनका एक नया दौर शुरू हो गया।

ग़ज़ल

श्री शम्भूनाथ 'शेष'

टूट जायगा कसते-कसते, प्राणोंका यह तार किसी दिन!
आप कहानी बन जाएगा, गीतोंका स्वरकार किसी दिन!
कौन रहेगा आता-जाता, कबतक खुली रहेंगी राहें;
बन्द स्वयं हो जाएगा प्रिय, श्वासोंका सचार किसी दिन!
लहरोंपर बहनेमें क्या है, नौकापर रहनेमें क्या है;
तूफ़ाँके हाथोंमें होगी, जीवनकी पतवार किसी दिन!
मधु-सिंचित उपवनमें कब तक, मुसकाएँगी मानस-कलियाँ:
पतझडमें कजला जाएगा, बासन्ती शृंगार किसी दिन!
कबतक सलज उषाकी स्मितिको निर्निमेष मन्यं रहेंगे देते;
गहन तिमिरका बन जाएगा, सूर्य स्वयं आहार किसी दिन!
रजकणके नयनोंमें कब तक, थिरकेंगे तारोंके सपने,
हो जाएँगे धरती-अम्बर, दोनों एकाकार किसी दिन!
आशाओंके स्वर्ण-जालमें, कौन रहेगा बैठा खग-सा;
उड जाएगा स्वप्न-सुरभि-सा, साधोंका ससार किसी दिन!
प्रणय-गीत बन लहराएगा, कब तक प्रिय हृदयोंका स्पदन;
निपट शून्यमें खो जाएगा, भ्रमरोंका गुजार किसी दिन!
अन्तरकी अभिलाषा कब तक, पाएगी वाणीका आश्रय;
शब्दहीन हो जाएगा कवि, मानसका उद्गार किसी दिन!

तुलसी-रामायणकी रच

श्री ए० पी० वारान्निकोव

तुल्सी रामायणपर प्रथम-दृष्टिपातसे ही एसा प्रतीत होता है माना इस महाकाव्यका सात काण्डोमें विभाजन उनकी कथावस्तुके आधारपर ही किया गया है। वास्तवम साता काण्डके नाम ही सम्पूर्ण काव्यकी रूप रेखा हमारे सामन प्रस्तुत कर दते हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड सुन्दरकाण्ड, लकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। काव्यमें रामके बचपन, उनका अयोध्या का जीवन, राम वनवास और वहाँ उनकी पत्नी सीताका राक्षसराज रावण द्वारा हरण, वानरदेश किष्किन्धाकी घट नाएँ, हनमानका लकागमन और सीताको रामके विषयम शुभ सूचना देना, लकामें युद्ध और अन्तमें चौदह वर्षके वनवास के पश्चात राम और सीताका लक्ष्मण और अन्य मित्रा समेत अयाध्या वापस लौटना इत्यादिका वणन है।

काण्ड विभाजनकी रचना

तुल्सी रामायणस पहले लिख गए राम विषयक काव्यो के अध्ययनस पता चलता है कि भारतमें काव्यका केवल सात ही काण्डाम विभाजित करनका एक परम्परा चली आ रही थी। प्राचीन वाल्मीकि रामायणसे लेकर सारी की सारी वृहत कथाआके लेखकान अपनी रचनाआको साधारणत सात ही काण्डाम विभाजित किया है। छठ काण्डको छाड कर तुल्सी रामायणके सब काण्डाके ठीक वही शीर्षक हैं, जा वाल्मीकि रामायणक हैं। वाल्मीकि रामायणके छठ काण्डका शीर्षक है 'युद्ध', परन्तु तुल्सीदासन छठ काण्ड का लकाकाण्ड का शीर्षक दिया है। इसी परम्पराका पालन करत हुए तुल्सी रामायणका भी सात ही खण्डाम विभाजित करनक कारण तुल्सी रामायणमें रचना-सम्बन्धी बहुत-सी कमियाँ आ गई हैं। रचनाकी दृष्टिस बालकाड तथा उत्तरकाण्ड सवथा असफल रह ह। इन दाना काण्डो में रामकी मुख्य कथाका बहुत कम स्थान मिला है। इनमें तुल्सीदासन अपन दार्शनिक विचाराका अति विलक्षणतासे निरूपण किया है। इसस रामकी मुख्य कथा सवथा पृष्ठ भूमिमें जा पड़ी है। नि सदेह यदि तुल्सीदास अपन काव्य

पौराणिक कथा

तुल्सी रामायणमें ढगसे प्राचीन साहित्यिक रामायण—का अ जाता है। तुल्सीदासके अव्यक्त धारणाके तथा उसमें सम्प्रविष्ट भलीभाँति ज्ञात हैं। लिया जाय, तो तुल्सी वानोका स्वय ही दासकी रचनाओकी खोज आज तक इस बातको ध्यानमें रखनसे इस वाल्मीकि रामायणम व अपने काव्यमें कैसे और दास इन कथाओका केवल ओर केवल निर्देशन मात्र केवल उस कथाके के तौरपर शिव, दधीचि, ययाति, सगर, रति, नामोका ही उल्लेख है। समनमें आ सकते हैं, य कथाओंका ज्ञान भी रखते स्थानपर एसी प किया गया है जो पूण रूपसे वर्णित है। क नाम तक नही देते और करते हैं। एसी स्थिति बडी कठिनाई होती है, कथाको समझनम सवथा

पौराणिक कथाओंकी उल्लेखका उदाहरण

सार इस प्रकार है : एक बार गौतम ऋषि वनमें लकडियाँ लेने गए हुए थे। उस समय स्वर्गलोकसे लौटते हुए देवराज इन्द्र उस वनमें विचर रहे थे। गौतमकी सुन्दर पत्नी अहल्याको देखते ही देवराज इन्द्र उसपर मोहित हो गए। इन्द्रने अहल्याके पतिका रूप धारण करके उसको भ्रष्ट किया। हालांकि अहल्याको भी इन्द्रके इस माया-जालका पता लग चुका था, परन्तु वह बेचारी इन्द्रकी मोहिनी शक्तिके आगे कुछ न कर सकी। गौतमने अपराधीको आ पकडा और दोनोको शाप दिया। इसी शापके कारण अहल्या कई हजार वर्ष तक शिला बनी पडी रही और इन्द्रने अपने अण्डकोष गँवाए। फिर देवताओंकी बहुत प्रार्थनाके पश्चात् इन्द्रको एक बलिके बकरेके अण्डकोष प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त तुलसी-रामायणमें हम सर्वथा विभिन्न ढगोका प्रयोग पाते है। जहाँ वाल्मीकिने एक कथाका सक्षिप्त रूपमे वर्णन किया है, वहाँ तुलसीदास उसी कथा को एक विस्तृत पौराणिक कथाका रूप देकर वर्णन करते है। उदाहरणके तौरपर वाल्मीकि-रामायणके प्रथम काड के एक छोटे-से अध्यायमें युद्धदेव कार्तिककी कथा कही गई है। वाल्मीकिके समयसे लेकर अनेक कवियोका ध्यान इस कथाकी ओर गया—विशेषकर कालिदासने तो अपने 'कुमारसम्भव' में इस कथाको एक उत्कृष्ट कलात्मक रूप दिया। तुलसीदासने भी बालकाण्डमें इस कथाको एक विस्तृत रूप दिया है। पर तुलसीदासने इस कथाको जो रूप दिया है, वह वाल्मीकि तथा कालिदास द्वारा वर्णित कथासे सर्वथा भिन्न है। यह कथा तुलसीदासके मुख्य दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विचारोसे ओतप्रोत है। ऐसा करके उन्होने अपने समयके दो बडे मतोके अनुयायियो (वैष्णवो और शैवो) को परस्पर मिलानेका प्रयत्न किया।

तुलसी और वाल्मीकि-रामायणमें भिन्नता

तुलसी-रामायण तथा वाल्मीकि-रामायणकी परस्पर तुलना करनेपर सम्प्रविष्ट कथाएँ हमारे लिए एक बडी दिलचस्पीका विषय बन जाती है। रामकी मुख्य कथा दोनो रामायणोंमें साथ-साथ चलती है, परन्तु विभिन्न कथाओंके सम्प्रवेशके कारण तथा उन कथाओका विभिन्न ढगोसे वर्णन करनेके फल-स्वरूप इन दोना रामायणोंमें बहुत अन्तर आ गया है। मुख्य कथाकी मूल घटनाओका पुष्टिकरण तथा पवित्रीकरण चिरकालसे आई एक मौखिक तथा साहित्यिक परम्परा द्वारा हुआ है। सम्प्रविष्ट कथाओका वर्णन भी स्वतत्र ढगमे हुआ है। यही कारण है कि राम-चरित-विषयक इन दोनो महाकाव्योंमें बहुत अन्तर आ गया है। कई स्थानोपर तो हमें स्वय तुलसी-रामायणमें ही इस बातका स्पष्टीकरण मिल जाता है कि अमुक कथाका सम्प्रवेश क्यों नही किया गया। वे स्पष्ट रूपसे कहते हैं

सबुक भेक सेवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना॥

जैसा कि विदित है, विषयके तत्वोंके अभावका गुण ही तुलसीदासकी रचनाका एक विशेष लक्षण है, जो उनको अपने युगके बहुतसे कवियोंसे ऊपर उठाता है। उपर्युक्त साहित्यिक परम्पराके अतिरिक्त तुलसीदासके अपने दार्शनिक तथा धार्मिक विचारोका भी उनकी रामायणकी रचनापर कोई कम प्रभाव नही पडा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वाल्मीकिका राम वीर है, सूर्यवशका राजकुमार है, परन्तु तुलसी-रामायणके प्रारम्भमें ही आता है कि राम विष्णुका अवतार है। वाल्मीकि-रामायणकी खोज करने-वाले सब अन्वेषकोने चिरकालसे ही निर्धारित कर दिया है कि रामका यह रूप केवल बादमें प्रविष्ट क्षेपकोका ही परिणाम है। रामका यह रूप सस्कृत-काव्यमें वर्णित रामके चरित्र से बिल्कुल मेल नही खाता। इसके विपरीत तुलसीके राम ईश्वरीय तत्व हैं। वे मानव-रूप धारण करके इस भौतिक ससारमे आए। तुलसीदास रामको इस भौतिक ससारका प्राणी नही मानते। राम उनके लिए सच्चिदा-नन्द हैं, ब्रह्म है, पारब्रह्म है, विष्णु है, हरि है। इसी धारणाके अनुरूप दूसरे पात्रोका रूप भी बदल जाता है। लक्ष्मण जहाँ सच्चिदानन्दका आशिक रूप हैं, वहाँ वे सहस्त्र फनोवाले उस पौराणिक नागका भी अवतार है, जो भारतीय पौराणिक कथाओंके अनुसार समस्त पृथ्वीको धारण किए हुए है। सीता न केवल धरतीमाताकी पुत्री है, वह माया भी है। वह ईश्वरीय तत्वकी रचनात्मक शक्ति है, जो उससे पृथक् नही की जा सकती और जिसका स्वय अपना कोई अस्तित्व नही। सीता माया है, जिसने समस्त ससारका सृजन किया है। उनके अनुसार यह ससार भी रामकी दैवी शक्तिका एक खेल-मात्र है।

रामके नए रूपका प्रतिपादन

रामको इस नए रूपमें दर्शानेके लिए जिन जिन दार्शनिक पुष्टियो तथा आधारोंकी आवश्यकता थी, उन सबका निरू-पण तुलसीदासने अपनी रामायणके बालकाण्ड तथा उत्तर-काण्डमें किया है। बालकाण्डमें रामकी मुख्य कथाको बहुत कम स्थान दिया गया है। काण्डके तीन-चौथाई भागमें रामके दार्शनिक अस्तित्व तथा नैतिक समस्याओ (पाप और पुण्य इत्यादि) का वर्णन और रामके अवतार

लेनेकी बातका पुष्टीकरण किया गया है। इसी प्रकार उत्तरकाण्डमें भी रामकी मुख्य कथाका बहुत कम वर्णन है। इस काण्डका अधिकांश विभिन्न महत्वपूर्ण दार्शनिक समस्याओंके स्पष्टीकरणसे परिपूरित है।

तुलसीदासकी विचारधाराका रामकी मुख्य कथामें अन्य कथाओंके सम्प्रवेशपर भी गहरा प्रभाव पड़ा। कागभुशुण्डकी कथा सबसे बड़ी सम्प्रविष्ट कथा है। इस कथाके वर्णनने उत्तरकाण्डका अधिकांश स्थान घेरा है। इस सम्प्र-

विष्ट कथाके कारण समस्त
गया है। इसी प्रकार
करनेकी बातको सिद्ध
कथाओंका सम्प्रवेश किया
में नहीं है। उदाहरणार्थ
मनु और उनकी पत्नी
इत्यादि ऐसी कथाएँ हैं, जो
में जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं।

हिन्दी और कलकत्ता

श्री भँवरमल सिंघी, एम० ए०, साहित्यरत्न

कलकत्तेके साथ हिन्दी-सेवाका एक पुराना इतिहास जुड़ा हुआ है, जिसके बारेमें हम अक्सर सुनते और पढ़ते हैं। हिन्दी-गद्यके विकासके इतिहासमें, हिन्दी पत्रकारिताके इतिहासमें और अनुवादोंके क्षेत्रमें कलकत्ताका उल्लेख बराबर मिलता है। हिन्दीके ऐसे विद्वान और साधक, लेखक और पत्रकार कलकत्तामें हो चुके हैं, जिनका आदर और श्रद्धाके साथ स्मरण किया जाता है। उनमें से कुछेक साधक और सेवक आज भी वर्तमान हैं, यद्यपि वे अब दूसरे स्थानोंमें रहने लगे हैं। किन्तु हिन्दीकी दृष्टिसे आज कलकत्तेमें जो अवस्था है, वह बहुत ही दुखद और लज्जास्पद है।

पिछले २०-२५ वर्षोंमें कलकत्तेमें हिन्दी भाषियोंकी संख्या काफी बढ़ी है और साथ-साथ हिन्दी पढ़नेवाले छात्र-छात्राओंकी संख्यामें भी अभिवृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद हिन्दीको समस्त देशकी राज-भाषा और राष्ट्र-भाषा होनेका गौरव भी मिल चुका है। इन परिस्थितियोंमें होना तो यह चाहिए था कि कलकत्तेमें हिन्दीके प्रचार प्रसार और साहित्य प्रगतिकी दृष्टिसे भी अधिक कार्य होता, निरंतर विकासमान बँगला-साहित्यके सम्पर्कके कारण यहाँसे साहित्यकी आधुनिक नव प्रवृत्तियोंकी धाराएँ विकसित होती और पारस्परिक आदान प्रदानके जरिए हिन्दी-बँगला भाषा-भाषियोंके बीचमें भी स्नेह और सम्मानका स्थान प्राप्त करती। किन्तु आज हम जो-कुछ देख रहे हैं, वह इसके बिल्कुल विपरीत है। कभी हिन्दी-सेवाके इतिहाससे कलकत्तेकी वर्तमान

हिन्दी-भाषियोंकी बहुत बड़ी
के कारण अन्य भाषा-
व्यवसायीवर्गका वातावरण
हिन्दीके अध्यापकों, पत्रकारों
सायिक मनोवृत्ति ही सब-कुछ
कैसे हो? आज यह देख
दृष्टियोंसे साधन-सम्पन्न इस
सेवा भी व्यापार-व्यवसायकी
प्रकारकी प्रतिद्वन्द्विता
स्तरकी प्रतिद्वन्द्विता हिन्दी
में एक 'सेवी'का व्यवसाय
रहा है और आपसमें संघर्ष
हमारे बहुतसे विद्वानों,
साहित्यिक चर्चा और
दूसरेकी आलोचना और
हिन्दीके विद्वानों और
अपना समय लगाना चाहिए,
की गतिविधिके बारेमें अन्य
चर्चा करते और उनकी
करनेका अवसर है, अपना
में या आपसके लड़ाई-झगड़ेमें
व्यवसाय करे, तो कोई बात
या अध्यापक या लेखक या

साहित्यिक संस्था द्वारा आयोजित साहित्यिक समारोहोंमें भी सभापति, प्रधान अतिथि, उद्घाटनकर्त्ता, प्रधान वक्ता और न जाने क्या-क्या बनकर सेठ और राजनेता बैठते हैं। जो शुद्ध हिन्दी लिख-बोल भी नहीं सकते, वे हिन्दी-साहित्य के प्रतिनिधि होते हैं और हिन्दीके पुराने या नए साहित्यके सम्बन्धमें जिनका कोई ज्ञान नहीं, वे सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, निराला, प्रसाद किसीपर भी बोलनेकी हिमाकत करते हैं। संस्थाओं और समारोहोंके आयोजक इनको भाषण लिखकर तो दे देते हैं, परन्तु लिखा हुआ भी उनसे शुद्ध पढ़ा नहीं जाता। इस प्रकारके आयोजनोंमें जो स्थिति बनती है, उससे अगर केवल सेठकी खुदकी या आयोजन करनेवाली संस्था और आयोजककी ही हँसी हो, तो कोई बात नहीं। पर हँसी तो हिन्दीकी होती है, हिन्दी साहित्यकी होती है। मुझे एक आयोजनका स्मरण है, जिसमें बंगाली साहित्यिक भी उपस्थित थे। एक मिल-मालिक साहित्य की चर्चा कर रहे थे, पर साहित्य शब्दका उच्चारण भी ठीक-ठीक नहीं कर पा रहे थे। सभीको हँसी आती थी और हम लोग लज्जाका अनुभव कर रहे थे। इसी प्रकार एक दूसरे आयोजनमें लिखित भाषण पढ़नेवाले सज्जनको अष्टछापको 'अस्टछाप' उच्चारण करनेमें और पुष्टिमार्ग को 'पस्टीमार्ग' कहनेमें कोई फर्क नहीं मालूम हुआ। यह दुर्भाग्य इन पिछले कुछ वर्षोंमें ही हुआ है कि साहित्यिक आयोजन भी 'सेठोंके विवाह'-से होने लगे हैं। किसी महान् कवि, लेखक और साहित्यिकके कलकत्ता आनेपर उसका सम्मान आदि सेठोंके बीचमें होने लगता है, क्योंकि उनको बुलाने और यहाँ ठहराने आदिमें रुपया लगता है और उनके नामपर संस्थाओं आदिको भी रुपया लेना होता है। पहले भी रुपया तो सेठोंसे ही मिलता होगा और मिलता था और इसमें अपने-आपमें कोई बुराई नहीं, परन्तु रुपएका सहयोग देकर भी वे साहित्यका कार्य साहित्यिकको ही करने देते थे। लेकिन अब उन्होंने उसमें भी अपना लोभ बढ़ा लिया है। रुपएके बदले उनको ज्यादा-से-ज्यादा जो कुछ मिल सकता है, उसे वे क्यों न लें? हिन्दी-सेवियोंने उनको इस व्यभिचारका प्रलोभन दिया है, अवसर दिया है। कवि-सम्मेलन, अभिनन्दन-समारोह, जयंतियाँ सब इनके विलास के लिए हैं, इनका प्रचार करनेके लिए हैं।

यह दूषित वातावरण हिन्दीके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो रहा है। हिन्दी-सेवा आज बिक रही है। जिस रूपमें और जिस तरहसे वह ज्यादा बिक सके और ज्यादा मूल्यपर बिक सके, उसी रूपमें बिकती है। फिर हिन्दी की उपाधियाँ बेचनेवाली संस्था भी पैदा हो गई, तो क्या आश्चर्य है? स्कूल और कालेजोंमें, परीक्षाओंमें, ट्यूशनोंमें, पाठ्य पुस्तकोंके निर्माण, निर्वाचन और वितरणमें और हिन्दी-प्रचार और हिन्दी-सेवाकी संस्थाओंमें सर्वत्र भ्रष्टाचार घुसा हुआ है। और आश्चर्य है कि इस सबको हम लोग हिन्दी-भारतीके आराधक मिलकर बदल नहीं सकते। कम-से-कम भाषा और साहित्यको व्यवसाय और व्यवसायियों के इस बुरे चंगुलसे बचाना बहुत जरूरी है। यह व्यावसायिकता खत्म हुई कि बहुत सारे झगड़े और आपसकी तू-तू, मैं-मैं खत्म हो जाय। लड़ाई-झगड़ा तो दूकानदारी का है। इसलिए हर प्रकारसे दूकानदारीका भण्डाफोड़ और विरोध होना चाहिए, और अगर जिम्मेदार लोग इन योजनाओंसे असहयोग करने लगें, तो इसमें बहुत फर्क पड़ सकता है। फिर दूकानदारों और व्यवसायियोंको ही सर्वेसर्वा (सभापति, प्रधान अतिथि आदि) बना-बनाकर साहित्यिकोंको बुलाने और उनका अभिनन्दन करने, ग्रंथों का प्रकाशन करने और उन सबकी ओटमें दूकानदारी करनेवालोंके हौसले अपने-आप ठण्डे पड़ जायँगे। उनको असफल और शर्मिंदा होना पड़ेगा। जो मुख्यमंत्री, मंत्री, उपमंत्री और साहित्यिक इन सब षड्यन्त्रोंको बिना जाने या जान-बूझकर भी जिस किसी तरह कलकत्तेमें एक मंच प्राप्त कर लेनेकी ख्वाहिशसे आ जाते हैं, और भाषण झाड़ जाते हैं, किसीके प्रचार और सेवाको प्रमाण-पत्र दे जाते हैं, और सौ-सौ, दो-दो सौ रुपएके 'वाचस्पति', 'दिवाकर', 'रत्न' और 'मार्तण्ड' बना जाते हैं, उनको भी हम वास्तविक स्थितिसे अवगत करा सकेंगे, और इन षड्यन्त्रोंका शिकार होनेसे उन्हें या उनके जरिए जन-साधारणको इन षड्यन्त्रों का शिकार होनेसे बचा सकेंगे। कम-से-कम हिन्दीके नामपर होनेवाला यह व्यवसाय, यह व्यभिचार तो बन्द हो सकेगा।

इस बातके लिए हमें बहुत गंभीरतासे विचार करना होगा और अहिन्दी, प्रदेशोंमें हिन्दीकी स्थितिके बारेमें सोचते हुए, जैसा कि अभी उत्तर-प्रदेशीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने कहा है—"हमें देखना है कि कहीं हमारे कारण—अर्थात् हमारे द्वारा स्थानीय परिस्थितियोंको ठीक-ठीक न समझे जानेके कारण—ही तो यह दूषित वातावरण नहीं फैला है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारी कल्पना-शून्यता होने इस प्रकारका विरोध-भाव उत्पन्न कर दिया हो। हमें मोह-रहित भावसे इस स्थितिपर विचार करना है।"



मृत्युका भय

प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०

मृत्युका भय प्रत्येक व्यक्तिके अचेतन मनमें रहता है। परन्तु वह अपनी सामान्यावस्थामें इसे विस्मृत किए रहता है। जब यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा कि संसारका सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, तो उन्होंने बताया कि मनुष्य दूसरोंको प्रतिदिन मरते देखता है, परन्तु उसे यह विचार नहीं आता कि वह भी कभी मरेगा। मृत्युके भयका स्मरण न रहना मनुष्यके समान जीवनको चलानेके लिए नितान्त आवश्यक है। यदि कोई मनुष्य सदा अपने मरनेके विषयमें ही सोचता रहे, तो वह समाज-कल्याणके अथवा अपनी आजीविका कमानेके लिए कोई उपयोगी कार्य कर ही नहीं सकेगा। कहा जाता है कि मृत्युका विचार दर्शनका प्रारंभ है। जबतक मनुष्य मृत्युके विषयमें चिन्ता नहीं करता, वह अपनी लौकिक वृद्धिके विषयमें ही सोचता रहता है। किन्तु जब उसे यह विचार आता है कि यह संसारी वैभव चार दिनकी चाँदनी है, तो वह धन-दौलत जोड़नेसे विमुख हो जाता है। उसे सारा संसार निस्सार दिखाई देता है। संसारके सभी महान् पुरुषोंको किसी-न-किसी समय मृत्युका विचार आया है। अपनी मृत्युका विचार और संसारकी नश्वरता एक ही तथ्यके दो अंग हैं। एकके आनेपर दूसरा विचार अनिवार्य रूपसे आता है। भगवान रामचन्द्र, बुद्ध और सुकरातके दार्शनिक विचारोंकी जड़में भौतिक जगतकी नश्वरताकी भावना ही पाई जाती है। इसी कारण उन्होंने नित्य रहनेवाले विचार-तत्त्वकी ही खोज की।

मनुष्यका विचार विवेकशीलताका द्योतक है और मृत्युका भय अज्ञानका। जो लोग मृत्युसे जितने अधिक डरते हैं, वे मौतके विषयमें सोचनेसे उतनी ही दूर अपने-आपको बचाते हैं। कितने ही लोग श्मशानमें मुर्देको देखकर अपना मान-

कितने ही लोग अपने-आपको
छोड़ते, क्योंकि ऐसी अवस्थामें
विचार आते हैं। इन
मित्रसे वार्तालापमें लगे रहते
अवस्थामें मनुष्यको बीमारी
विचार आते हैं कि इनके कारण
जाता है। कायर और वीर
कि कायर पुरुष मृत्युके विषयमें
बल्कि उसे मृत्युके विषयमें
मृत्युके विषयमें सोचता है।
और इस डरको भुलानेकी चेष्टा
उसका डर कम न होकर और
मृत्युसे नहीं डरता, इसलिए मृत्यु
भी नहीं करता। बार-बार
से मृत्युका भय ही समाप्त हो

एक मनुष्य दूसरे मनुष्यपर
पर ही करता है। जो प्राणी
वे मृत्युसे न डरनेवाले प्राणियोंके
एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर शासन
के कारण ही करता है। मौत
उन लोगोंके गुलाम होते हैं, जो
प्रकारका डर मनुष्यकी मानसिक
है, अर्थात् उसके सभी पुरुषोचित
है। जिस व्यक्ति अथवा
वही स्वतंत्र रह सकता है।

मृत्युका डर मृत्युके बारेमें न
उससे और भी बढ़ जाता है। प्र

यह रोगका विचार बढ़ता जाता है। जब मनुष्य दृढ़तासे मृत्युके विचारका सामना करता है, और जब वह मरनेके लिए तैयार हो जाता है, तब उसका क्षय रोग और मृत्युका भय भी समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार भूँकते हुए कुत्तेके सामनेसे भागनेसे कुत्ता हमारी टाँग पकड़ लेता है उसी प्रकार मृत्युसे डरनेसे मनुष्य मृत्युको अपने समीप बुला लेता है। नपोलियन बोनापार्ट अपने सिपाहियोंसे कहता था कि 'यदि तुम मृत्युका दृढ़तासे सामना करोगे तो उसको तुम दुश्मनके खेमेमें खदेड़ दोगे।' मृत्युके विषयमें दृढ़तासे चिन्तन करनेवाले व्यक्ति ही आत्माके अमरत्वका अनुभव करते हैं।

मृत्युका भय एक प्रकारका आवेग है। मनुष्य किसी प्रकारके आवेगको केवल विस्तारसे नहीं जीत सकता। एक आवेगको जीतनेके लिए विरोधी आवेगकी आवश्यकता होती है। जिस मनुष्यके स्थायी भाव दृढ़ हैं वह सभी प्रकारके त्यागकी सामर्थ्य रखता है। मानव चरित्रकी भित्ति उसके विचार नहीं, वरन् उसके स्थायी भाव हैं। संसारके अनेक दर्शनशास्त्रके विद्वान मृत्युसे ऐसे ही डरते हैं जैसे चूहा बिल्लीसे। विद्वत्ता मनुष्यको विचारोंसे परिचय कराती है, वह मानसिक दृढ़ता नहीं लाती। मानसिक दृढ़ता अभ्याससे आती है। यह अभ्यास विद्वत्ताके अभावमें भी सम्भव है। गुरु गोविन्दसिंहके बालक हकीकतराय, खुदीराम बसु, गोपीमोहन और चन्द्रशेखर 'आज़ाद' कोई बहुत बड़े विद्वान् नहीं थे, परन्तु भारतवर्षके विरले ही लोगोंने अपने जीवनमें उनके जैसी बहादुरी दिखाई। यह मानसिक दृढ़ता उनकी निष्ठा अथवा देश भक्तिका परिणाम था।

मृत्युका भय संक्रामक होता है। जब फौजका कोई एक सिपाही डरके मारे भागने लगता है तो फौजके दूसरे सिपाही भी डरपोक हो जाते हैं। अतएव ऐसे सिपाहीको फौजके अफसर तुरन्त मार डालते हैं। जिस प्रकार मृत्युका भय संक्रामक है, उसी प्रकार निर्भीकता भी संक्रामक है। जिस समय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बर्मामें आज़ाद हिन्द फौजका संचालन कर रहे थे, उस समय उनके मृत्युके मुखमें पहुँचनेके अनेक अवसर आए। एक बार जब उनकी टोली पर अमरीकन विमान बम वर्षा करने लगे, तब उनके एक शरीर रक्षकने उन्हें रक्षा-गृहमें चले जानेकी सलाह दी। नेताजीने उस समय कहा कि 'वह बम अभी तक अमरीकन फैक्टरीमें बना ही नहीं है, जो मुझे मारेगा।' उनकी इस निर्भीकताका परिणाम यह हुआ कि न केवल नेताजीके पास रहनेवाले लोग ही मृत्युसे निर्भीक बन गए वरन् सारी सेना उन्हींके समान निर्भीक बन गई। अँगरेज़ भारत छोड़कर जिन कारणोंसे चले गए, उनमें एक प्रधान कारण भारतीय फौजके मनमें आत्म-सम्मानकी भावनाका जागरित होना और मृत्युसे निडर बन जाना भी था।

मृत्युका भय क्रोधकी अवस्थामें कम हो जाता है। परन्तु क्रोधके समाप्त होनेपर वह और भी बढ़ जाता है। जब दो कुत्ते एक-दूसरेसे लड़नेके लिए उतारू होते हैं, तब उनके सब प्रकारके डर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार लड़ाईके जोशके समय मनुष्य भी अपने सभी भयोंको भूल जाता है। जहाँ हमारे आत्म-सम्मानको ठेस पहुँचती है, वहाँ हम प्राण गँवानेको तैयार हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार मृत्युके भयका हटना तभी सम्भव होता है जबकि मनुष्यकी आत्म-सम्मानकी भावना प्रबल हो। भयकी अवस्थामें क्रोध नहीं आता और क्रोधकी प्रबलतामें भय नहीं आता।

मृत्युके भयका सफल प्रतिकार प्रेमके द्वारा ही होता है। प्रेम सभी प्रकारके भयोंका विनाशक है। मनकी विकृत अवस्थामें मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके भय अनायास ही उठते रहते हैं। वह जब घरके बाहर चलता है तो डर लगता है कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय। जितनी दुर्घटनाएँ पहलेसे हुई रहती हैं उनके विचार आते रहते हैं। यदि वह किसी रोगीसे मिलने गया तो उसे डर हो जाता है कि उस रोगीका रोग उसे न पकड़ ले। घरमें बैठे-बैठे उसे डर लग जाता है कि कहीं बिस्तरके नीचे छिपा साँप उसे काट न दे। अथवा उसके सिरपर छत ही न गिर पड़े। कितने ही लोगोंको हृदयकी गतिके बन्द होनेसे मृत्युका डर लगा रहता है। इस प्रकारके डरोंका कारण उनका अपने जीवनसे असन्तुष्ट होना होता है। ऐसे लोग अपनी परिस्थितियोंसे इतने परेशान रहते हैं कि वे भीतरी मनसे जीना नहीं चाहते। वे संसारके लोगों और अपने-आपसे बहुत ही घृणा करते हैं। उनका नाना भय उनके अचेतन मनमें उपस्थित है, यह उनकी विरोधी इच्छाका आवरण-मात्र है। मृत्युसे अधिक डरनेवाले लोगोंके भीतरी मनमें जीते रहनेकी इच्छा नहीं रहती है। इसी प्रकार मृत्युका सदा आवाहन करनेवाले लोगोंके भीतरी मनमें जीते रहनेकी इच्छा रहती है। यदि हम किसी व्यक्तिके आन्तरिक जीवनमें इतना परिवर्तन कर दें कि वह भीतरी मनसे मरनेके बदले जीना चाहने लगे तो उसका मृत्यु भय समाप्त हो जाय। अपने आपसे दुखी मनुष्य भीतरी मनसे मरना चाहता है और अपने आपसे सन्तुष्ट व्यक्ति भीतरी मनसे जीना चाहता है इसलिए उसे मृत्युका डर नहीं होता, बल्कि ऐसे मनुष्यसे मृत्यु ही डरती है।

जिस मनुष्यका जीवन प्रेम-रससे सम्पन्न है, उसे ससार छोडनकी आवश्यकता ही क्या ?

मृत्युका भय मनोविश्लेषण द्वारा भी समाप्त होता है। मनोविश्लेषणसे दब भावोका चिन्तन होता है। हमारे यहाँ अनेक मानसिक रोगी कई प्रकारके भयोसे पीडित होते हैं। जब मनोविश्लेषण द्वारा उनके मनका अध्ययन किया जाता है, तो हम उन्हें अपनी परिस्थिति, मित्रो और सम्बन्धियो तथा अपन आपसे असतुष्ट पाते हैं।

उनकी दु खमय गाथा हम
उनके असतोषका बहुत-कुछ
जब उनसे अपनी परिस्थिति,
अपने आपके प्रति मैत्री भावना
है, तो उनके सभी प्रकारके
समाप्त हो जाते हैं। प्रेम वह
इसी लोकमे अमरत्व प्रदान
मृत्युसे निर्भय हो सकता है।

बस, क्षमा करो—

श्री भगवतीचरण वर्मा

(१)

जग असत्, सत्य तुम! नहीं किसीका हर्ज
कर लिया तुम्हारा नाम बडोंमें दर्ज!
जीनको हो है हुई तुम्हारी सृष्टि,
जीवित रहना है सदा तुम्हारा फर्ज,
मैं मित्र, तुम्हें कब स्वार्थी कहता ? कब कहता खुदगर्ज ?
लेकिन मैं तुमसे करता हूँ यह अर्ज
तुम बुरे समयमें माँग रहे हो कर्ज,
कुछ फटे हाल हूँ, क्योंकि लग गया है
इन दिनों मुझे सगीत, कलाका मर्ज!
मुझको बख्शो, मैं बना रहा हूँ इस गानेकी तर्ज!

(२)

क्या फर्क कि सच है अथवा है यह झूठ ?
तुम गले मिलोगे या जाओगे रूठ ?
वह किसी समयमें था हाथीका दाँत,
तुम जिसे बनाए हुए छडीकी मूठ,
मैं कहता हूँ यह काष्ट-मूर्ति तो है शीशमका ठूंठ!
तुम कला-पारखी, माने हुए रईस,
तुम पढ सकते हो नहीं कभी उन्नीस,
तुम सग्रह करते हो कौडीके मोल
पर जगकी आँखोंमें तुम बडे खबीस!
तो नमस्कार! तुम मौलिक हो, तो मैं भी बडा अनूठ!

(३)

तुम धन्य! पढ़े हैं तुमने चारो वेद,
तुम जान गए हो ब्रह्म-जीवका भेद,
गम्भीर तुम्हारी मुख मुद्राको देख,
लोगोंको होने लगता है प्रस्वेद!
तुम लिए बुद्धिकी जो पुस्तक वह कोरी और सफेद!

(४)

कल पढा तुम्हारा
अब देखी मन मूर्ति
तुम नेता हो, तुम
तुममें जगके अधिकार
तुम तपकी ऐसी मूर्ति कि
भर आया मेरी
मैं नहीं कर रहा हूँ
तुम बुरा न मानो, तो
हो रहा मुझे है तुम
इसको मत खींचो, इस

(५)

इन दिनो सुना तुम ह
अच्छा ही है कुछ मे
पर वहाँ अँधेरे
तुम बिठा रहे हो ब
ओहो! मुद्दतके बाद
बकार कर रहे हो
मैं तो योंही था पड
मैं नहीं विघ्नका या
है मित्र तुम्हारी श
तुम क्षमा करो, मेरी आदत

(६)

अनुप्रास व्यर्थ हैं
जो इन्हें मानता वह
कुछ नई धजा हो, हो
बठ-ठाले हो नया
फायदके भाई-बन्द जमे

अपना अपना दृष्टिकोण

मानसिक सन्तुलन

अभिव्यक्तिकी अपेक्षा अनुभूति अधिक सूक्ष्म व प्रबल होती है। कल्पना कीजिए कि एक शब्द सुना आपने छुट्टी। इस शब्दके श्रवणका प्रभाव 'मन' और 'बुद्धि' पर क्रमशः 'तरंग' और 'विचार'के रूपमें प्रस्तुत हुआ। उसकी प्रतिक्रिया हृदयपर यह हुई कि हृदयमें किसी प्रकार का 'आभास' हुआ। यह आभास मूल रूपमें 'अनुभूति' ही है। अनुभूति ही अभिव्यक्तिका रूप धारण करती है। यह अभिव्यक्ति तो हृदयकी दुर्बलता द्वारा प्रसूत होनेसे उसका 'कूट' है। भेद केवल इतना है कि यह बुद्धिके समवयोगपर उद्भासित होती है, जबकि आभास बिना किसी विधिवत् चिन्तनके प्रतिक्रिया-स्वरूप स्वतः उठा करता है—जैसे 'छुट्टी' शब्द सुननेपर 'उल्लास' वा 'विषाद' की 'लहर', अथवा किसीके मुखसे अपने प्रिय व्यक्तिके प्रति अपमान-बोधक शब्द सुनकर क्रोधकी लहर। यह आभास-मात्र है। इस लहरको जब पूर्वानुभव-जन्य आकार सम्प्राप्त होता है, तब उसे अभिव्यक्ति कहा जाता है। कलाकारके हृदयपर उक्त प्रतिफलन कलापूर्ण ढंगपर होता है। तब वही अनुभूति कलाका आकर्षक व कल्याणमय स्वरूप धारण करती है। कलाकारके स्वच्छ मानस पटल के उस ओर जो आत्माभिव्यंजनाकी चाँदी पुती हुई है, उसीके प्रतिफलन प्रक्रियासे यह सब सत्य, शिव और सुन्दर कार्य निष्पन्न हो पाता है। यदि 'हृदय-दौर्बल्य' न हो, तो कविता, संगीत, चित्र, स्थापत्य आदि किसी भी कलाका विकास असम्भव हो जाय, क्योंकि आभास ही जब न होगा, तो उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप अभिव्यक्तिकी अभिलाषा एवं त्वरा ही नष्ट हो जायगी। तब आत्माभिव्यंजनाकी चाँदी किसे प्रतिफलित करेगी? तभी मनुष्य प्रचार-कार्य, भाषण, लेखन, गायन, शासन आदिसे उपरत हो आचार, आत्मानन्द व आत्मानुशासनकी ओर अभिमुख होगा। नैतिकताका सही विकास उन्हीं स्वर्णिम घड़ियोंमें हो सकेगा, जब आदमी अभिव्यक्तिसे परे अनुभूतिके क्रोडमें शान्ति और गौरव अनुभव करेगा।

विश्व भरकी सम्पूर्ण 'बाह्य-चेतनाएँ' मानवकी दुर्बलता की सूचक हैं। कलाकार और वैज्ञानिक अपने-अपने निराले ढंगपर उसी सार्वभौम दुर्बलताका 'क्षति-पूरण' करते हैं। इसी कारण वे अपने प्रशंसकोंका सम्मान पृथक्-पृथक् प्राप्त करते हैं। क्षति-पूरण प्रकृतिका अटल नियम है। इसी की बदौलत किसी-न-किसी वर्गको अपने समय व क्षेत्रमें क्षति-पूर्ति द्वारा सन्तुलनका महान् धर्म निबाहना पड़ता है। अतएव मानसिक असन्तुलनसे प्रसूत सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक अव्यवस्थाका निराकरण किसी-न-किसी वर्ग द्वारा 'पूरक सन्तुलन' बनाकर चरितार्थ करना आवश्यक हो जाता है। सो यदि पूर्व ही हृदय-दौर्बल्यका परिहार करके मानसिक सन्तुलन बनाए रखा जाता, तो अभाव वा विषमताजन्य अनैतिकता, भ्रष्टाचार और अशांति का प्रयोजन ही विनष्ट हो जाता। यही कारण है कि सच्चे योगीजन बाह्य चेतनामें आस्था नहीं रखते। यह उनकी पलायनवादिता न होकर विशाल आत्मानुभव-सिद्ध सुस्थिर-प्रज्ञता ही है। बुद्धि द्वारा ही मनपर अनुशासन प्रवृत्त होता है, अतएव उसके सुस्थिर हुए बिना मनका सतुलन होना सम्भव ही नहीं। स्थिरबुद्धि नियमित आहार-विहार और मानसिक नीरवता द्वारा ही सम्भव है। यह जानकर लगातार किया गया विधिवत् अभ्यास प्रकृति, प्राण व मनोदशाके रूपान्तरण द्वारा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तदनन्तर क्रमशः सम्पूर्ण विश्वको सम्पन्नता, प्रकाश, शक्ति व महान् शान्ति प्रदान कराता है।—*आचार्य सर्वे*, रमेश बुकडिपो, जयपुर (राजस्थान)।

भारतीय संस्कृतिपर विदेशी प्रभाव

सभ्यताके शैशव-काल्म अपनी उदार भावनाके कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व इतिहासमें अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकी थी। वर्तमान दुरवस्थामें भी हम भारतीय अपनी प्राचीन संस्कृतिके स्मरण-मात्रसे विश्व के समक्ष गौरवके साथ अपना मस्तक ऊँचा उठानेका साहस करते हैं। विश्व-सभ्यताके विकासमें भारतीय संस्कृति की अपूर्व देन है। भारतीय संस्कृतिने आध्यात्मिक आधारपर नैतिक उत्थानका वह आदर्श विश्वके सामने रखा है, जिसकी छत्र-छायामें अपने अधिकार और कर्तव्य की निर्धारित सीमाके अन्तर्गत शान्ति एवं सुरक्षापूर्ण भौतिक जीवनकी कामना की जा सकती है। इतिहास साक्षी

है कि हम सकीर्ण बन्धनोमें जकडे हुए नही थे। हम अपने और पराए सभीको समान दृष्टिसे देखते थे। सबके साथ हमारा एक-सा व्यवहार था। हम सर्वैव न्याय-मार्गपर चलना ही अपना मुख कर्त्तव्य समझते थे। मनुष्यताके नाते समस्त मानव-जातिके साथ हमारा व्यापक सम्बन्ध था। अखिल विश्वको हम अपना परिवार समझते थे। सर्वोदय हमारा एकमात्र लक्ष्य था। हम अपने स्वार्थवश कभी स्वप्नमें भी किसीका अहित नही सोचते थे, बल्कि दूसरोंके कष्ट निवारणके हेतु अपने स्वार्थोका हवन करते थे। शरणागतोकी रक्षाका महत्व हम अपनी प्राण-रक्षासे अधिक समझते थे। हम सदैव सबका हित चाहते थे। पर ससारमे किसीका समय सदा एक-सा नही रहता है। उत्थान और पतनका क्रमिक परिवर्तन यहाँका अचल नियम है। हमारे अतुल वैभवने विदेशियो को आकर्षित किया। हममें फूटका बीज बोया जाने लगा और शनै-शनै हमारी एकता भङ्ग होती गई। हमारी सास्कृतिक उदारताको दुर्बलता समझकर वे अनुचित लाभ उठाने लगे। फल-स्वरूप एक दिन हमारा भी सौभाग्य-सूर्य अस्त हुआ और हम विदेशियोके गुलाम हो गए। जब कोई विजेता विजित राष्ट्रपर अपना आधिपत्य जमाता है, तो सर्वप्रथम वह वहाँकी सस्कृतिको लुप्त करनेका प्रयत्न करता है और तदुपरान्त अपनी भाषा-लिपिके माध्यम द्वारा अपने साहित्य-प्रचारके साथ-साथ अपनी सस्कृतिका रग भी उसपर जमाना आरम्भ करता है।

सर्वप्रथम हमारे सामने यवनोका शासन-काल आया। उन्होने हमें ज्ञानसे हटाकर पशुवत् भय और प्रलोभनके महाजालमे फँसाकर हमपर अपना रग जमाया। विवश होकर हमें उनका प्रभाव अगीकार करना पडा। हमारे सास्कृतिक रग मचपर उन्होने अपनी वीभत्स लीला प्रारम्भ कर दी। हम अपनेको बिल्कुल भूलकर उनकी लीलाके विवश पुतले एव दर्शक बन गए। तदुपरान्त आया हमारे सामने गौराग प्रभुओका शासन और हमपर लादी गई अँग-रेजी भाषा। हमारे बीच उनके साहित्यका प्रचार हुआ। बस, हम पाश्चात्य सस्कृतिसे अविभूत हो गए। परतन्त्रता और शोषणका शिकार होकर हमारे हृदयमें श्रद्धा, प्रेम और सहानुभूति आदि मानवोचित गुणोका स्थान ईर्ष्या, द्वेष और पारस्परिक वैमनस्यने ले लिया। सर्वत्र शोषण और

सामाजिक और शैक्षणिक
सास्कृतिक विशिष्टताको भी
प्रकारकी ऐंग्लो-इडियन
एक कुप्रभाव यह हुआ कि
अच्छी बातोकी रक्षा कर पाए
करनेके सिवा पाश्चात्य
ही अपना सके। पर आज
इस स्थितिमें आ गए हैं कि
फिरसे नया रूप दे सकें।
है कि मिथ्या गर्व और
सस्कृतिके नव-निर्माणमें
नवयुवक पुस्तकालय, पपरौर

सशस्त्र क •

आदिम अवस्थासे आज
वह पत्थरके औजारोसे लेकर
की एक मनोरजक कहानी
मनुष्यके लिए जहाँ सुख
दुख, दुर्बलता, दरिद्रता
दी। ये बुराइयाँ कही-कह
में हैं कि अब और इन्हे सहन
इसीके साथ जिन्हे इस स
उनसे साधन और सत्ता
अपनी समृद्धिकी इमारत
इन दोनो वर्गोमे सतत सघर्ष
युद्धोका भक्ष्य लेकर भी आज
बन रहा है। पर अब त
है कि सशस्त्र सघर्ष अथवा
को सशस्त्र क्रान्तिसे इस्त -
सुरक्षापूर्ण उपाय नही है।
और धनका नुकसान इसके स
इसीलिए हमें तो सारे पी
मुक्तिका एकमात्र मार्ग सत्य
इसमें समय अधिक लग स
अपेक्षा इससे प्राप्त हुई मुक्ति
और मानव दीर्घकाल तक
तनिक भी सन्देह नही।



कला, विज्ञान और साहित्यकी नई भावना

गत १७ जनवरीको अवाडी-कांग्रेसमें पेश की गई अपनी ६००० शब्दोंकी रिपोर्टमें नेहरूजीने कहा है— "सबसे बड़ी खुशीकी बात तो यह है कि आज हिन्दुस्तानमें कला और विज्ञानका पुनर्जागरण हो रहा है, राष्ट्रीय भाषाओंके साहित्यमें एक नई भावना आई है और संगीत तथा नृत्यमें अधिकाधिक लोग दिलचस्पी लेने लगे हैं। यह इस बात का सबूत है कि जनता देशको मिली हुई आज़ादी और जीवनके आनन्दमें भागीदार हो रही है। उसके नीरस जीवन बेहतर और पूर्ण होने लगे हैं।" इस कथनमें कुछ सचाई ज़रूर है, पर उतनी नहीं, जितनी कि ज़ाहिर की जा रही है। यद्यपि सरकारी सहायता-प्रेरणासे शहरोंमें आजकल नाच-गानके आयोजन अधिक होने लगे हैं, पर देशके अधिकांश गाँव अभी भी मानो अज्ञान, अकर्मण्यता और आलस्यके महासागरमें ही डूबे हैं। वहाँ कला और विज्ञान या साहित्यका पदार्पण ही कहाँ? यदि सरकार वहाँके लोकगीतों एवं लोकनृत्योंको भी थोड़ा-बहुत प्रश्रय एवं सहायता पहुँचाए, तो अवश्य कुछ हो सकता है। वैसे तो यह प्रश्न भी जन-साधारणकी सामाजिक और अर्थनीतिक खुशहालीसे ही सीधा सबंध रखता है। उन्हींके साथ गाँवोंका कला-पक्ष भी जागृत एवं समृद्ध होगा।

सांस्कृतिक मिशनोंका ढकोसला

'स्टेट्समैन' में पिछले दिनों संपादकके नाम-पत्र लिखकर कई लोगोंने इस बातपर आपत्ति एवं आशंका प्रकट की है कि विदेशोंको जानेवाले भारतीय सांस्कृतिक मिशनोंमें बहुधा ऐसे लोग जाते हैं, जिनका भारतीय संस्कृतिके संबंधमें कोई ज्ञान नहीं। विशेष रूपसे जो मिशन कम्युनिस्ट देशोंको भेजे गए हैं, वे तो लाभके बजाय इस देशकी हानि ही अधिक कर रहे हैं। सरकार अपनी पसन्दके लोग चुनकर उन्हें हवाई जहाज़से विदेश भेजती है, जहाँ उनमेंसे अधिकांश भारतके बारेमें बड़ी विचित्र और ऊटपटाँग बातें करते हैं और लौटकर उन देशोंके बारेमें ऐसा प्रचार करते हैं, मानो इतने दिनोंमें ही उनके बारेमें इन्होंने सब-कुछ जान, सुन और देख लिया है! इसमें धनका जो अपव्यय होता है, वह तो है ही, पर उससे भी ज़्यादा नुकसान यह होता है कि कम्युनिस्टोंके स्वर्गसे आनेवाले ये फरिश्ते उनके करिश्मों, कारनामों, अभूतपूर्व सफलताओं और उन देशोंके शासकों की प्रशंसाके ऐसे पुल बाँधते हैं कि बेचारे सीधे-सादे भारतीय उनकी बातोंमें आ जाते हैं और वे भी मार्ग-प्रदर्शनके लिए कम्युनिस्टोंके स्वर्गकी ओर देखने लगते हैं। इसका हमारे देशकी सरकार और उसके द्वारा हो रहे पुनर्निर्माणके कार्यपर क्या असर पड़ता है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। क्या हम आशा करें कि भारत-सरकार इस महँगी मूर्खतासे बाज़ आयगी?

चीनमें संगीतका पुनरुद्धार

चीनसे आए सांस्कृतिक शिष्टमंडलने कलकत्तेमें न सिर्फ अपने प्रदर्शन ही किए, बल्कि भारतीय नृत्य, संगीत और यंत्र-वादनके समारोह भी देखे। मंडलके नेताने पत्र-प्रतिनिधियोंसे भारत और चीनके सांस्कृतिक साम्य और आदान-प्रदानकी परम्पराका ज़िक्र करते हुए कहा—"हम दोनों देशोंकी कला और संस्कृतियोंका समन्वय करना चाहते हैं, ताकि दोनों देशोंकी शान्ति-प्रिय जनता एक-दूसरेके अधिक निकट आए।' नवीन चीनमें हुई संगीतकी असाधारण प्रगतिका ज़िक्र करते हुए आपने बताया कि "हाल हीमें चीनमें प्राचीन संगीतके क्षेत्रमें एक उल्लेखनीय घटना यह घटी है कि हमने दसवीं शताब्दीका एक संगीत-यंत्र खोज निकाला है, जिसपर १२वीं शताब्दीमें गाए जानेवाले गाने सुगमतासे गाए जा सकते हैं। इस प्रकार लोक-संगीतमें भी हमने काफ़ी खोज की है। चीनमें कला और संस्कृतिका विकास प्राचीन परम्पराका आदर करके ही हो रहा है। इसी विकासके लिए हम चाहते हैं कि भारतीय संस्कृतिका जो भी श्रेष्ठांश हम ग्रहण कर सकें, अवश्य करें।" आपने बतलाया कि "हमारे देशमें पथ-दर्शक सिद्धान्त है समूची मानवताके विकास और शान्ति-स्थापनाके लिए प्रयत्न करना।" इस उद्देश्यसे हमारी पूरी सहानुभूति है। गनीमत है कि अभी भारतमें कला और संस्कृतिको एकदम सरकारी प्रचारका वाहन नहीं बनाया गया है।

भारतका राष्ट्रीय रंगमंच

पिछले दिनों लंदनके सुप्रसिद्ध अभिनेता सर लुई कैसन और श्रीमती सिबिल थार्नडाइकने दिल्लीमें 'मैकबेथ',

हेनरी अष्टम', 'हेनरी पचम' और 'मीडिया'के कुछ अशो का अभिनय किया और कैसनने कीट्स, शेली तथा कुछ अमरीकी कवियोकी कविताओका सस्वर पाठ भी किया। दोनोका भारतीय साहित्य और रगमचके प्रति बडा अनुराग है। सिबिलने पिछले ५० वर्षोमे हजारो ही अभिनय किए है, जिनमे शकुन्तला और सावित्रीके अभिनय अभी भी अनेक भारतीयोको याद है। उनका कहना है कि चूँकि अभिनेता कई तरहके अभिनय करते है, उन्हें मानव-प्रकृति की विशेष परख है, अत वे विभिन्न देशोको निकट लानेकी दिशामे बहुत-कुछ कर सकते है। सर कैसनने नेहरूजीके राष्ट्रीय रगमचकी स्थापनाके विचारका स्वागत करते हुए कहा—"लेकिन उन्हें बहुत अधिक धन व्ययकर राष्ट्रीय रगमचकी विशाल इमारत खडी करनेकी भूल नही करनी चाहिए। बडे-बडे थिएटरो, रगमचो, रोशनियो और शृङ्गार-सज्जावाले नाट्यकेन्द्रोके दिन अब लद चुके। अब तो जनता और अभिनेताके बीच कम-से-कम भेद रहना चाहिए और नाटक जन-साधारणकी पहुँचके अन्दर होने चाहिएँ। भारतका राष्ट्रीय रगमच तो सेक्सपीयर-थिएटरकी तरह जनताका ही होना चाहिए। पेशेवर अभिनेताओंके मुकाबलेमें शौकिया नाटक खेलनेवाले इस दिशामें अधिक सहायक हो सकते हैं।"

बँगला-नाटकोंकी सफलता

बँगला-नाटकोकी सफलताका एक बहुत बडा श्रेय उसके श्रेष्ठ, सुशिक्षित और भावना-प्रवण अभिनेताओको है। जिस स्तरके और जैसे कुशल अभिनेता यहाँ है, अन्य भारतीय भाषाओमें कम ही मिलेंगे। पिछले दिनो भारतीय नाटक-समारोहके अन्तर्गत दिल्लीमें बहुरूपीने 'रक्त करवी' और 'छेंगडा तार' का अभिनय किया, जो खूब पसन्द किए गए। 'रक्त करवी' कवीन्द्र रवीन्द्रकी एक पौराणिक गाथा है, जिसका काफी भाग कल्पनापर ही छोड दिया गया है। इसके जो भी अभिनय पहले हुए, वे विशेष सफल नही हुए। इसी प्रकार 'छेंगडा तार' उत्तर-बगालकी भाषामें लिखी गई एक माँझीकी कहानी है, जो जीवनकी बाधाओका अतिक्रमणकर उसे व्यापक रूप देना चाहता है। पर बहुरूपीके कुशल कलाकारोने दोनो को इतना सजीव और सार्थक बना दिया कि देखते ही बनता था। इसी प्रकार हाल हीमें कलकत्तेमें दक्षिणी द्वारा अभि-

छिन्न-भिन्न हो जाता है।
व्यक्ति तो प्राय सभी
बडा सजीव और स्वाभाविक

कुप्रचारपर प्र

कुछ समय पूर्व एक दल-
और द्विजातिकी महत्ताको नष्ट
में रामायणका एक प्रहसन-
कि इसमें रामायणके नामपर
कि कई स्थानोपर उपद्रव हो
काफी गहरा असर
इस प्रहसनको अभिनय
पर वह काफी सिद्ध नही हुआ।
१८७६के नाटक-कानूनके
ऐसे अभिनयोपर प्रतिबन्ध
जो आपत्तिजनक हो और
को आघात पहुँचे या अपमान
उठाना पडे, यह कोई अच्छी
बुरी बात तो यह है कि हमारे
यो दुरुपयोग हो। इसे
जन-रुचि और अधिक नीची

शब्दचक या

मनोरजनके साधनोके
लाटरी आदिपर सरकारको
कि मनोरजनके नामपर ये
यही बात आजकल विविध
प्रतियोगिताओके बारेमें भी
इनपर प्रतिबन्ध लगाए जाने
यहींसे निकलनेवाले पत्रोने
प्रान्तसे बाहरके एक
बदस्तूर जारी है। कोई
करता है, तो कोई मन
कमाई करनेका। लाखोके
है, जिसके प्रलोभनसे चन्द
का लोभ सवरण नही कर
एक हरीफाई-विरोधी-मडल
प्रचार करेगा। पर इससे
सदिग्ध है। अच्छा हो, यदि

साहित्य

हिन्दी काव्यालंकार सूत्र (आचार्य वामनकृत काव्यालंकार सूत्र-वृत्तिकी हिन्दी-व्याख्या) व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर , सपादक—डा० नगेन्द्र , प्रकाशक—हिन्दी-अनुसधान-परिषद, दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्लीकी ओरसे आत्माराम एड सस, दिल्ली-६ ; पृष्ठ ५६५ , मूल्य १२)

प्रस्तुत पुस्तक दिल्ली-विश्वविद्यालयकी हिंदी-अनुसधान-परिषद्की एक सुनिश्चित योजनाके अन्दर प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकमे दो भाग हैं। एक तो भूमिका, जिसे 'आचार्य वामन और रीति-सिद्धात' नाम दिया गया है। यह भूमिका ग्रथके सपादक डा० नगेन्द्र द्वारा लिखी गई है। १८९ पृष्ठोंकी यह भूमिका ९ शीर्षकोंमें बाँटकर लिखी गई है। पहले शीर्षक 'आचार्य वामन'के अन्तर्गत आचार्य वामनके जीवन-वृत्त, उनके काव्य-सिद्धान्त, काव्यकी परिभाषा और स्वरूप, काव्यकी आत्मा, काव्यका प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्यके अधिकारी, काव्यके भेद और आलोचना-शक्तिका सामान्यत प्रतिपादन हुआ है। दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें शीर्षकोंके अन्तर्गत रीति-सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या, गुण-विवेचन, दोष-दर्शन तथा रीतिके प्रकारोपर विचार किया गया है। छठेमें पाश्चात्य काव्य-शास्त्रमें रीतिके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है। सातवेंमें इस सिद्धान्तका हिन्दी-साहित्य-शास्त्रमे मिलनेवाला स्वरूप स्पष्ट किया गया है। आठवेंमें अन्धकार, वक्रोक्ति, ध्वनि और रस-विषयक साहित्यके सिद्धान्तोसे अतर स्पष्ट करते हुए नवेंमें रीति-सिद्धान्तकी परीक्षा की गई है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० नगेन्द्रने 'रीति'-सिद्धान्तपर बहुत व्यापक दृष्टिसे विचार प्रस्तुत किया है और उसे आधुनिक युगके शास्त्रकारोके लिए उपयोगी बनानेका पूर्णतः प्रयत्न किया है। भूमिका विद्वतापूर्वक लिखी गई है और प्रत्येक तत्वको सुलझाकर रखा गया है। उसका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण दिया गया है और प्रत्येक सिद्धान्त के पक्ष-विपक्षके प्रत्येक महत्वपूर्ण तर्क और प्रमाण दिए गए हैं। इससे यह भूमिका स्वय ही महत्वपूर्ण हो गई है। इस भूमिका द्वारा ही पाठक समस्त भारतीय साहित्यशास्त्रके स्वरूपसे परिचित हो जाता है और एतद्विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोणको भी जान लेता है। काव्य-विषयक भारतीय सिद्धान्त एक अत्यन्त दीर्घकालीन विचार-परपराका परिणाम है। भारतीय मेधाने काव्य-विषयक प्रत्येक पक्षका भली-भाँति मथन किया है। उनकी चेष्टा रही है कि काव्यगत 'सत्य' के यथार्थ और शाश्वत स्वरूपको प्रकट किया जाय। इन सिद्धान्तोको पाश्चात्य काव्य-शास्त्रमें भी पाया जा सकता है, क्योकि 'काव्य' तो सर्वत्र समान है, भाषा-भेद तो बाह्य भेद है। आज इस विषयपर और भी गभीर अनुसधानकी आवश्यकता है कि भारतीय साहित्य-शास्त्रके किस सिद्धान्तका स्वरूप पाश्चात्य क्षेत्रमे क्या है? डा० नगेन्द्रने इस भूमिकामें इस ओर श्लाघनीय प्रयत्न किया है। सस्कृत-साहित्यशास्त्रके कतिपय ग्रथोके हिन्दीमे अच्छे अनुवाद तो मिल जाते हैं, पर उनपर ऊँचे स्तरकी भूमिका नही मिलती थी। डा० नगेन्द्रकी इस भूमिकाने ऐसे ग्रथोकी भूमिकाओका आदर्श किसी भी समृद्ध भाषाकी परिपाटीकी भूमिकाके समकक्ष कर दिया है। जैसे परिश्रम से डा० नगेन्द्रने यह भूमिका लिखी है, इसपर विचार भी उतने ही परिश्रम और विस्तारसे होनेकी आवश्यकता है। तभी हिन्दीमे विद्या-व्यसनका स्वरूप चमक सकता और ऊँचा हो सकता है।

दूसरा अश है 'काव्यालकारसूत्र-वृत्ति' की व्याख्या। व्याख्याकार भी विषयके पण्डित हैं आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन। इस व्याख्यामें 'अनुवाद' भी प्रस्तुत किया गया है, फिर पाडित्यपूर्ण व्याख्या दी गई है। 'अनुवाद' कुछ काले टाइपमें देकर व्याख्यासे भिन्न दिखाया गया है। किन्तु उसे व्याख्याके प्रवाहके अगकी भाँति ही प्रस्तुत किया गया है। विद्वान व्याख्याकारने हिन्दी-मानसको दृष्टिमें रखकर प्रत्येक विषयका स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है, पर न तो उसकी शास्त्रीयता और प्रामाणिकतामें ही शिथिलता आने दी है और न उसका स्तर ही झुकने दिया है। फलत प्रत्येक पदपर उच्च मर्यादाके साथ विषय के अग-प्रत्यगका व्यापक ज्ञान प्रस्तुत होता जाता है और

प्रत्येक सिद्धान्तकी आवश्यक ऐतिहासिक परपरा और उसके यथार्थ स्वरूपका पाठकको एक साथ ही बोध होता जाता है। पाठ-भेदोका उल्लेख करना भी लेखक नही भूला है। इससे ग्रंथ और उपयोगी हो गया है। यह व्याख्या पठनीय तो है ही, विचारका विषय बनानेके योग्य भी है। डा० नगेन्द्र और दिल्ली विश्वविद्यालयकी हिन्दी-अनुसधान-परिषद्को हिन्दी-जगत् इसलिए बधाई देगा कि उसने इस योजनाके द्वारा हिन्दीके पाण्डित्य-व्यसनको भारतीय परम्पराके आधारपर ऊँचा उठानेका साधन प्रस्तुत कर दिया है। और वह दृष्टिकोण भी साथमें प्रस्तुत कर दिया है, जिससे हिन्दीका विद्वान् अपनी पाश्चात्य प्रेरणाको भारतीय परिपाटीसे सयुक्त करके देख सकता है। हम इस समस्त योजनाका हृदयसे स्वागत करते है और पण्डितो तथा विद्वानोको आमत्रित करते हैं कि इस योजनाको सफल बनानेके लिए वे अपने सारस्वत धर्मको निबाहें और इन प्रयोके आधारपर हिन्दी-साहित्यशास्त्रकी चर्चा प्रस्तुत करके नए साहित्यशास्त्रको प्राणवान करें। —(डा०) सत्येन्द्र

स्वाधीनता और उसके बाद लेखक—श्री जवाहरलाल नेहरू, पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत-सरकार, दिल्ली, पृष्ठ ४४५, मूल्य ५)

इस पुस्तकमें स्वतत्रताके बादसे मई, १९४९ तकके जवाहरलालजीके भाषणोका सकलन किया गया है। जवाहरलालजीके समय-समयपर दिए गए भाषणोका सग्रह एक ही साथ हिन्दीमें मिलना बहुत उपयोगी होगा। भिन्न-भिन्न अवसरोपर विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति, वैदेशिक-नीति आदि सभी विषयोपर इसमें वक्तव्य हैं, जिनसे स्वतत्रता के बादकी देशकी समस्याओ और घटनाओका अच्छा परिचय मिलता है। —सुशीला सिंघी

भारत-सरकारके प्रकाशन

विविध विभागोके विकास-कार्योकी रिपोर्टों और विविध अभियानोके सचित्र विवरणोके साथ ही इधर भारत-सरकार के प्रकाशन-विभागने कई लोकोपयोगी पुस्तकोका प्रकाशन भी किया है। 'भारतकी कहानी' में सर्वश्री विश्वभरनाथ पाँड़े, इलाचद्र जोशी और रामचन्द्र टडनकी ६-६ ऐसी प्रसार-वार्ताओका सग्रह है, जिनसे भारतके इतिहास, सस्कृति, धर्म, समाज, प्राचीन साहित्य, कला, राजनीति नार्वेजियन, ग्रिम, इटालियन, कथाओका सुन्दर सकलन है, जो पृष्ठभूमिको समझनेमें बहुत पहले' एक उपयोगी प्रकाशन है। के अभाव और अशिक्षिता कितनी माताओ और सतानोको पडता है। उन्हें इससे काफी का एक दूसरा उपयोगी १२ वर्ष तक'। इसमें इस समस्याओपर प्रकाश डाला रिपोर्ट, 'आगामी कलके लिए का प्रथम वर्ष), 'फेमीली की रिपोर्ट, 'भारत-चीन और आस्ट्रेलियामें भारतके की रिपोर्ट, पचवर्षीय टू वेलफेयर स्टेट', 'परिवहन 'एग्रीकल्चरल लेबर', मलेरिया की रिपोर्ट, 'विज्ञानकी प्रगति' भी बडे जानकारी-भरे उपयोगी गति-विधिका खासा आभास वर्ष' नामक पुस्तिकामें शिक्षा कार्यका विवरण है। शिक्षा रक्षा, रेल्वे, और परिवहन शब्दोके हिन्दी रूपोकी है। प्रयास अच्छा है, पर है। यदि यह कार्य कुछ अ कराया जाता, तो शायद ये सकती थी।

अन्याय

चीनी लोक गणतत्रके नई प्रकाशित 'नए चीनमें खेती वर्क ऑफ् दि गवर्मेंट'से नए च विवरण ज्ञात होता है। सरकारके लिए 'शिशुपालन' छ वर्ष तक) नामक दो प्रकाशित की है। 'वाट डा जर्मन एकता-सघ, बर्लिन

कम्युनिस्ट और राष्ट्रीय चीनमें संघर्ष

वियतनाममें खींचातानी : स्यामकी 'मुक्ति'की तैयारी

पनामाके राष्ट्रपतिकी हत्या : कोस्टारीकापर आक्रमण

गत १८ जनवरीको कम्युनिस्ट चीनने प्रबल हवाई और नाविक आक्रमणके बाद अपने दक्षिण-पूर्वी तटके सामनेके ताचेन-द्वीपसमूहके यीक्यागशान द्वीपपर कब्जा कर लिया बताते हैं। यह चीनके समुद्र-तटसे २० और फार्मूसासे २०० मील दूर ताचेन-द्वीपसमूहका सबसे उत्तरी द्वीप है। गत नवम्बरमे इसीके पास कम्युनिस्टो द्वारा राष्ट्रीय चीनके एक जगी जहाजके डुबो दिए जानेके फलस्वरूप चीनी समुद्र-तटपर राष्ट्रीय विमानोने बमबारी की थी। गत १० जनवरीको कम्युनिस्ट विमानोने इस द्वीपपर दिन-भर बमबारी की। इसकी कोई विशेष प्रतिक्रिया न होनेपर गत १८ जनवरीको उन्होने प्रातःकाल ८ बजेसे फिर इसपर विमानो और जगी जहाजोसे गोलाबारी की और तीसरे पहर उसपर कब्जा कर लिया। रायटरके सवाददाताका कहना है कि इस आक्रमणमे कम्युनिस्ट चीनके ६० विमानो (आई-एल० फाईटर्स) तथा ७० आक्रमणकारी और २० जगी जहाजोने भाग लिया। इस सफलताके कोई २४ घटे बाद ही कम्युनिस्ट चीनके २०० बमवाजोने ताचेन द्वीपपर ५० मिनट तक भयकर बमबारी की। इसके २॥ मील उत्तरमें स्थित टूमेन द्वीपसे कम्युनिस्ट चीनकी तोपोने इसपर पहलेसे ही गोलाबारी शुरु कर रखी थी। यूशान, तलूशान और सियाओशानसे कम्युनिस्ट तोपोने ताचेनके ३२ मील दक्षिण पश्चिममें स्थित पीशान द्वीपपर भी गोलाबारी की, जिसमें जगी जहाजोने भी योग दिया। ताचेन-द्वीपसमूहके एक दूसरे द्वीप विहानको भी कम्युनिस्ट जगी जहाजोने घेर रखा है और उसपर भी गोलाबारी जारी है। एक तो ये द्वीप पथरीले हैं, दूसरे यहाँ राष्ट्रीय चीनकी जो थोडी-बहुत सेना है, वह भी बडी अशक्त एव असगठित है, अत इनपर कम्युनिस्टो का कब्जा हो जाना बहुत कठिन न होगा। अमरीकी राजनेताओका कहना है कि चूँकि ये द्वीप पिछले दिनों च्याग से हुई फार्मूसा-सन्धिके अन्तर्गत नही हैं, अमरीकाका सातवाँ जगी बेडा इसमें हस्तक्षेप नही करेगा। कम्युनिस्ट चीनके मुखपत्र 'पीपुल्स डेली'ने इस आक्रमणको फार्मूसाकी मुक्ति के अभियानका श्रीगणेश कहा है और राष्ट्रीय चीनके विदेश-मत्रीने युद्धकी शुरूआत। पर जो भी हो, कोरिया और हिन्दचीनमें हुई क्षणिक सधियोंके बाद एशियामे जो शान्ति स्थापित हुई थी, वह भग हो गई है और एक बार फिर विनाशकारी युद्धकी लपटें फूट पडी हैं।

वियतनाममें खींचातानी

वियतनामके अन्तर्राष्ट्रीय कमीशनके अध्यक्ष श्री एम० जे० देसाई वहाँके कार्यकी भारत-सरकारको जानकारी कराने और आगेके लिए हिदायतें लेने कुछ दिनोके लिए भारत आए हैं। उन्होने भारत-सरकारको जो रिपोर्ट दी है, वह तो अभी जन-साधारणके सामने नही आई है, पर पत्रोमे छपे उसके साराशसे पता चलता है कि वहाँकी स्थिति बहुत सरल और सतोषजनक नही है। लगातार आठ वर्षोकी लडाईके कारण दोनो पक्ष एक-दूसरेको सन्देह की दृष्टिसे देखने लगे है। सेनाओका स्थानान्तरण और पुनर्गठन तथा राजबदियोकी रिहाई तो जैसे-तैसे हो गई, पर आवागमनकी सुविधा और स्वतत्रता बडी पेचीदा समस्या बन गई है। १७वी समानान्तर रेखाके उत्तरसे आए लगभग ५ लाख विस्थापितोकी समस्या भी कम टेढी नही। समझौतेके अनुसार फासीसी सेनाओको जनवरीके अन्त तक हाइडौंग और १८ मई तक हाइफौंगसे हट जाना चाहिए। पर जितनी आसानी और इच्छासे वे हनोईसे हटे, उसका यहाँ आभास तक नही मिलता। हाइफौंगके पास कोयलेकी बडी खाने हैं और युद्ध-कालके प्रमुख बन्दरगाहके कारण वहाँ बहुत बडे पैमानेपर युद्ध-सामग्री भी पडी है। फिर वहाँका शासन अन्य स्थानोसे बेहतर है। इस स्थितिमे इसे खाली कराना आसान काम नही। जबसे अमरीकाने घोषणा की है कि वह बाओ-दाईके शासनको मजबूत बनायगा, दक्षिण-वियतनामवालोका रुख और भी कडा हो गया है। इससे होचीं-मिन्हके पक्षका रुख भी बदला है। कमीशनके दो अन्य सदस्य—कनाडा और पोलैण्ड—भी प्राय एक-दूसरेसे असहमत ही रहते हैं। इससे अध्यक्षका काम और भी कडा हो गया है। यदि जुलाई १९५६ तक यही स्थिति रही, तो पता नही चुनावोका क्या हश्र होगा।

स्यामकी 'मुक्ति'की तैयारी

स्यामके एक भूतपूर्व प्रधान मत्री नाई प्रीदी फानोमयोगके पीकिंगमें स्यामकी 'मुक्ति' के लिए तैयारी करनेके अनेक समाचार पहले आ चुके हैं। अब उनके एक सहायक नाई तियाग सिरीखडसे लुआग प्रवद और सामनुआ (दक्षिणी

लाओज) के बीचमें भेंट करके आए एक स्यामी भूतपूर्व पुलिस-अफसरने बताया है कि वे भी वियतमिन्हकी सीमापर आधुनिक शस्त्रास्त्रसे सज्जित २०० थाईवासियोंको स्यामकी मुक्तिके लिए तैयार कर रहे हैं। वियाग पिछले महायुद्ध में स्वतन्त्र थाई-सेनाके सचालक थे। १९४९में स्वतन्त्र राष्ट्रकी स्थापना करनेकी चेष्टा करनेपर वे अधिकारियोंके कोप-भाजन हुए और स्यामसे भाग निकले। कुछ समय के लिए वे स्याम लौटे और १९५२में फिर चले गए। इस समय वे दक्षिणी लाओजमें हैं, जहाँ स्वतन्त्र लाओ-सेनाके अध्यक्ष राजकुमार सुफनुवोंगके साथ मिलकर उन्होंने उत्तर के सामनुआ, जियेंगखान और फोंगसाली प्रान्तोंमें स्वतन्त्र शासन कायम कर लिया है। इन्हें कम्युनिस्टोंका पूरा सहयोग-समर्थन प्राप्त है। इन प्रान्तोंसे मिले-जुले स्यामी क्षेत्रोंके अनेक लोगोंने यहाँ आना चाहा, जिसे स्यामी अधिकारियोंने स्वीकार नहीं किया। पर इस क्षेत्रमें वियागका प्रभाव और प्रतिष्ठा बाकी है।

पनामाके राष्ट्रपतिकी हत्या

गत २ जनवरीको केन्द्रीय अमरीकाके प्रजातन्त्र पनामा के राष्ट्रपति कर्नल एन्टोनियो रेमनकी जुआनर्फेको रेसकोर्स में मशीनगनसे हत्या कर दी गई। हत्यारेको पकड़नेके लिए जनताने लगभग दो लाख डालर तक इनाम दिए जानेकी घोषणा की। बादमें पकड़े गए डा० मीरो नामक एक वकीलने अपने इकबाली बयानमें बताया कि यह हत्या प्रथम उप-राष्ट्रपति जोसे रेमन गुइजादोकी साजिशसे हुई है, जिन्होंने उसने मन्त्रिमंडलमें मुझे भी स्थान देनेका वादा किया था। गत १५ जनवरीको पनामाकी राष्ट्रीय असेंबलीने सर्वसम्मतिसे जोसे रेमन गुइजादोको—जो एंटोनियो रेमनकी हत्याके बाद नियमानुसार राष्ट्रपति हो गए थे—हटाकर उनपर हत्याका मामला चलानेका निर्णय किया है और दूसरे उप-राष्ट्रपति रिकार्डो एरियस एसियोनाजाको राष्ट्रपति बनाया है। १९४१से अबतक पनामाके ८ राष्ट्रपति हुए हैं, जिनमेंसे ५को हटाया गया, एकको हटाकर फिर नियुक्त किया गया, एक मर गया और एकने कर्नल रेमनके लिए स्थान खाली कर दिया। रेमनने पुलिस-अध्यक्षके रूपमें अपनी कार्य-कुशलताका जो परिचय दिया और उसीलिए राष्ट्रपति चुन गए। वे पहले राष्ट्रपति हैं, जो कई वर्ष बाद पनामाके जीवनमें व्यवस्था और स्थिरता

उप-राष्ट्रपति डेनियल चेनिसने पनामामें बड़े उपद्रव हुए। क थे। पर उन्होंने ७ ॰ ग नहीं की। डा० चेनिसके अपना पद त्यागना पड़ा और कोर्टका फैसला डा० चेनिसके नहीं माना और पहले डा० बनाया और फिर खुद बन गए में एरियसका भी हाथ बताया हिरासतमें है।

कोस्टारीकापर

पिछले महीने पनामाके शिकायत की है कि उसके उसके उत्तरी और दक्षिणी ॰ पर वायु और थल मार्गोंसे अ के कई नगरोंपर शत्रुका कब्जा विमानोंने सेनवारलोजपर आन नदीसे होकर उनकी सेना कोस्टारीकाके वाशिंगटन-स्थित आक्रमणके लिए अन्तर-अमरी कोई सहायता नहीं माँगी है, राष्ट्रसंघमें विचार किए जाने रेडियोका कहना है कि अम ॰ व कोस्टारीकामें यह स्थिति ॰ पूरा अपने प्रभावमें ला सकें। सरकारने अमरीकी ठेकेदारोंके और युनाइटेड फ्रूट-कम्पनीपर ता अमरीकाने खुले-आम नि १९४८में अब कास्टारीकाके निकारागुआ-स्थित प्रवासी विद्रोहका नारा बुलन्द किया जनरल एनस्टेनियो समाजाने कर अपने-आपको राष्ट्रपति व फिर सात वर्षोंके लिए अपनेको और १९५१में सारी सत्ता गांठ की। वे चाहते हैं कि आदिकी तरह

दृष्टिकोण

अवाडी कांग्रेसका संदेश

गत २१ जनवरीको सत्यमूर्तिनगर (अवाडी) में हुए कांग्रेसके ६०वें अधिवेशनके अध्यक्ष पदसे बोलते हुए श्री ढेबरभाईने अपने ८००० शब्दोंके अभिभाषणके अंतर्गत कहा— अपने अंतिम लक्ष्यकी दिशामें भारत अपनी मंजिलके पहले पड़ावपर पहुंच गया है। अब हम अर्थनैतिक समानता लानेको एक जाति विहीन समाजकी स्थापनाके लिए अंतिम और सुनिश्चित प्रयत्न करना है। आज दुनियाका वातावरण क्रांतिकारी भावनासे ओत प्रोत है। भारत भी एक क्रान्तिकी दिशामें अभिमुख है यद्यपि वह एक दूसरे ढंगकी है। क्रांतिका यह चक्र पूरा घूमना चाहिए ताकि भारतकी न सिर्फ समृद्धि ही हो बल्कि उसकी सुस्थिरता संसारके अन्य भागोंमें संघर्षशील मानवताके लिए प्रकाश रूप भी हो। कांग्रेसने न केवल भारतकी आज़ादी ही हासिल की है, बल्कि सामाजिक जनतंत्रको कार्यान्वित भी किया है और उस नैतिक ढांचेको भी सामने रखा है जिससे कि देशके अर्थनैतिक भविष्यके निर्माणके लिए उसे कार्य करना है। इसके लिए हमें सेवा और आत्म त्याग द्वारा अपनी आन्तरिक शक्ति बढ़ानी है और रचनात्मक कार्यों द्वारा जन हितमें योग-दान कर जनताको नवीन समाज-व्यवस्थाके निर्माणमें अपने साथ लेना है। इस कथनमें जो संदेश और दृढ़ निश्चय है उसकी प्रेरणा और प्रभावका हम स्वागत करते हैं।

समाजवादी समाज-व्यवस्था

पर नैतिक ढंगसे नियोजित हमारी नवीन समाज व्यवस्था क्या होगी इसके स्पष्टीकरणका भार शायद आपने नेहरूजीपर ही छोड़ दिया जिन्होंने गत २१ जनवरीको खुले अधिवेशनमें विषय समिति द्वारा स्वीकृत समाजवादी समाज-व्यवस्थाको कांग्रेसका भावी लक्ष्य घोषित करनेका प्रस्ताव पेश करते हुए कहा— १९२७में मद्रासमें कांग्रेसने पूर्ण स्वराज्यकी नींव डाली और दो वर्ष बाद रावीके तटपर हमने मुकम्मिल आज़ादीकी प्रतिज्ञा की। पर अपनी आज़ादीकी लड़ाईके दौरानमें हमने कभी भी सिर्फ राजनीतिक आज़ादीकी ही बात नहीं सोची। हमेशा हमने आज़ादीके अर्थनैतिक फायदोंकी बात भी सोची है। हमने हमेशा मुल्कके किसानों मजदूरों शोषितों और सर्वहारा लोगोंका ही खयाल रखा है। हमारी आज़ादीकी लड़ाईके दौरानमें मुल्कका अर्थनैतिक और सामाजिक पहलू हमेशा उभरता और रौशन होता चला गया है और अब वक्त आ गया है कि हम साफ-साफ कहें कि हम जो समाज-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं वह समाजवादी ढंगकी होगी। मैं इस बहसमें नहीं पड़ना चाहता कि इस समाजवादी व्यवस्थाका ठीक-ठीक रूप क्या होगा क्योंकि इसके मुताल्लिक मुख्तलिफ लोगोंकी मुख्तलिफ राय हो सकती है। लेकिन मैं यह ज़रूर कहना चाहूँगा कि इसका रूप और चाहे जो कुछ भी क्यों न हो होगा वह भारतकी तहजीबके अनुसार ही। अगर यह बाहरसे थोपा गया तो ज्यादा दूरतक नहीं चलेगा।

समाजवाद शब्द पश्चिमसे आया है। यूरोपमें इसका सम्बन्ध वर्ग-संघर्ष और अन्य कई घटनाओंसे है। लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि अपने ढंगकी व्यवस्था कायम करनेके लिए हम भी यूरोपकी-सी अशान्तियोंमें से गुज़रें। हमारे लिए यह निहायत बेवकूफीकी बात होगी कि हम दूसरोंके तौर तरीकोंकी नकल करें और उनकी सी अशांति उपद्रवोंमें से गुज़रें। इसके अलावा भारतका अपना एक सुन्दर व्यक्तित्व है और उसका रहन-सहनका अपना ढंग है और साथ ही उसे दूसरे ढंगसे अपने लक्ष्यकी पूर्ति करनेका तजुर्बा भी है। मैं वर्ग संघर्षको अस्वीकार नहीं करता। वैसा करना हकीकतसे आंख मूंद लेना होगा। लेकिन जिस तरह हमने राजा महाराजाओं ज़मींदारों तथा तालुकेदारों और जागीरदारोंकी समस्याओंको शान्तिपूर्ण ढंगसे हल किया है—जिन्हें दूसरे मुल्कोंने रक्तपात गृह-युद्ध और ज़बरदस्त तकलीफोंके बाद हल किया है—उसी तरह हम उद्योग धंधों वगैरा समाजकी दूसरी समस्याओंको हल करेंगे और हिंदुस्तानमें समाजवादी व्यवस्था कायम करनेमें भी शान्तिपूर्ण उपायोंसे काम ले सकते हैं। जब मैं समाजवाद शब्दका इस्तेमाल करता हूं तो यूरोपमें इसका जो ऐतिहासिक रूप रहा है उस रूपमें नहीं। भारतको इसका रूप कुछ अपने ढंगपर ही निर्धारित करना पड़ेगा। इसीके सारूप्यमें आपने कहा— अब हमारी नियोजन कार्य इस बातको दृष्टिमें रखकर होगा कि एक ऐसी समाजवादी समाज-व्यवस्था कायम हो जिसमें उत्पादनके मुख्य

साधन समाजके स्वामित्व अथवा नियंत्रणमें रहें, उत्पादन तर्जीसे बढे और राष्ट्रीय सम्पदाका समान विभाजन हो।

नेहरूजीकी भ्रान्ति

नेहरूजीके प्रस्तावके उद्देश्यकी साधुता उनकी हार्दिक सदाशयता और साधन एव साध्यकी समान पवित्रतापर ज़ोर देनेकी उनकी नैतिक दृढताके बारेमे कोई दो मत नही हो सकते । पर अवाडी जानेसे पहले दिल्लीमें कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्डके सामने इसी विषयपर हुए उनके भाषण से लेकर अवाडीमे विषय-समिति और कांग्रेसके खुले अधिवेशनोंमें हुए उनके लंबे भाषणोंको पढकर भी हमें इस बातके लिए निराश ही होना पडा कि आखिर उनका अपने ढगके या भारतीय समाजवाद से क्या अभिप्राय है ? जो बातें उन्होंने कही हैं वे इतनी अस्पष्ट और गोल मटोल हैं कि समाजवादके साधु और जन हितकारी पक्षकी सही जानकारी के अभावमें उसके खिलाफ जो व्यापक भ्रम फैल रहा है उसे शायद तनिक भी दूर न कर सकें । समाजवाद एक नारा या कोरा अर्थनीतिक सिद्धान्त ही नही एक जन कल्याणकारी समाज-दर्शन है जिसका मनमाना भाष्य करना खतरेसे खाली नही । नेहरूजी-जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोणका दावा करनेवाले राजनेताके मुहसे हम यह सुनकर सखेद आश्चर्य हुआ कि 'समाजवाद' पाश्चात्य शब्द है ! क्या ज्ञान भी 'मेड इन इंग्लैण्ड' या 'मेड इन जर्मनी' के ढगकी कोई चीज है या हो सकती है ? क्या गरीबी और पिछडापन भी किसी जाति या देश विशेषका ट्रेडमार्क है ? क्या शोषण और परापहरणकी भी कोई जाति या भौगोलिक सीमाएँ हैं ? यह कहना एक बहुत बडी गलतबयानी है कि क्रान्ति और समाजवाद रक्तपात हिंसा या गृह-युद्धके बिना सभव ही नही । यह क्रान्ति और समाजवादके स्वरूप और उनके ऐतिहासिक विकासको गलत और भ्रान्त दृष्टिसे देखना, समझना और दूसरोंको समझाना है । क्रान्ति और समाजवाद लानेवालोंने कभी भी सहज भाव और अनिवार्य रूपसे हिंसाको अपनाया हो, ऐसी बात नही है । समाजमें जब जब परापहरण शोषण और उत्पीडनकी शक्तियोंने मानवकी सहनशीलता और धैर्यकी अन्तिम सीमाको लाँघा है मानवताके सामने एक विषम चुनौती आ खडी हुई है—वैसी ही जैसी कि बलात्कारपर आरूढ किसी गुडेके सामने आ पडनेवाली एक अकेली

और यह व्यवहार-नग्न किसी
व्यक्तियों द्वारा नही,
किया जाता है । इसलिए
को हिंसात्मक कहकर नाक
सहज बुद्धिका अपमान करना
भी पंडित—जिनकी नेहरूजी
की है—या राजनीतिके ि
है कि बिना रक्तपात, हिंसा
वाद नहीं आ सकते या न अ
क्रान्तिके बाद शासन और
का मानस क्षितिज इतना
केवल हिंसा, रक्तपात और
समाजवाद लाना न सिर्फ
बल्कि लगभग असभव भी ।
समझते और आज भी बचकान
हुई पुस्तकोंके ढगपर क्रान्ति
कर रहे हैं वे आलोचना या
सजाए जानेके पात्र है ।

भारतीय समाजवादका

हाँ, नेहरूजीके कथनको
जरूर दी जा सकती थी, जब
सबधी अपनी धारणा (
म भारतीय ढगके समाजवाद
करते । शान्तिपूर्ण
का परिणाम, सामन्तवादका
हल उतने जन-कल्याणकारी
उसकी तारीफ वे खुद
सामान्य विद्यार्थीसे भी यह
व्यवस्थाका सरल और सुबोध
और वितरणके साधनोंपर स
स्पष्ट मानी है इन स
अत । इसलिए यह कहना कि
खानगी पक्ष बडा महत्वपूर्ण
विकासमें पूँजीवाद बडा योग
ही नहीं, परले सिरेकी प्र
है । हाँ सोचने-समझने अ

सीढियोंका स्पष्ट निर्णय या तो नेहरूजी और ढेबरभाई मिलकर करें, विनोबाजी करें, कांग्रेस करे या फिर हमें उन देशोंसे सबक और सहायता लेनी चाहिए, जिन्होंने इस दिशामें अमली कदम उठाए हैं। उदाहरणके लिए चीनको ही लीजिए। उससे भारतीय स्थितिका जितना साम्य है, और किसी देशसे नहीं है। चीनके कम्युनिस्ट शासकों का ध्येय है उसे समाजवादी व्यवस्थाकी दिशामें अग्रसर करना। चूंकि रूस और यूगोस्लावियाके अनुभव चीन के सामने थे, उसने उनकी गलतियोंसे महत्वपूर्ण लाभ उठाया और एक ही छलांगमें समाजवादके शिखरपर पहुँचनेकी महँगी मूर्खतासे बाज आकर बड़े धैर्य, सोच-विचार और दूरदर्शितासे अपने मंजिलकी सीढियाँ निर्धारित कीं। कृषि और उद्योगोंमें इस समय वहाँ चार तरहकी मल्कियत है . राजकीय, सहकारी-समितियोंकी, श्रमजीवी-वर्गकी और पूँजीपतियों या धनिकोंकी। पर वहाँका शासन जहाँ पहले तीन प्रकारके स्वामित्वको उन्नत होनेकी पूरी सुविधा दे रहा है, चौथे प्रकारके स्वामित्वको केवल अस्थायी रूपसे सहन-भर कर रहा है और कठोर नियंत्रण एवं करों द्वारा उसके पंख ऐसे काट दिए हैं कि वह तनिक भी अपना प्रभाव-विस्तार न कर पाये। यह हमने केवल उदाहरण-भर दिया है। इससे हमारा यह आशय कदापि नहीं कि हम भी चीनका अंधानुकरण ही करें। पर कृषि-अर्थनीतिवाला एवं पिछड़ा राष्ट्र किस प्रकार शनैः-शनैः समाजवादकी ओर अग्रसर हो सकता है, इस उदाहरणसे हमें अपने चरम लक्ष्यपर पहुँचनेके तौर-तरीके तय करनेमें कुछ मदद तो जरूर मिल ही सकती है।

सरकारी और खानगी पक्ष

अगर चीन और भारतके समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्य पर पहुँचनेके मार्गमें कोई अन्तर है, तो वह यही कि चीनमें अब भविष्यके लिए पूँजीवादके विकासकी न तो गुंजाइश है और न वहाँके अधिकारी ऐसा कहते ही हैं। इसके विपरीत हमारे यहाँ समाजवादी व्यवस्थाके विकासमें खानगी अथवा गैर-सरकारी पक्षको असीम विकासकी गुंजाइश एवं सुविधा का आश्वासन दिया जा रहा है। यदि हमारे देशके उद्योग-पति जरा भी अधिक पढ़े-लिखे, दूरदर्शी और सचमुच उद्योगोंके विस्तार और उत्पादन-वृद्धिके महत्वको समझते होते, तो निश्चय ही वे इस स्थितिसे असीम लाभ उठा सकते थे। पर उनमेंसे अधिकांश न तो उद्योग-विशेषज्ञ हैं, न मानिक ज्ञानसे परिपूर्ण और न देश तथा जन-हितकी भावना से प्रेरित-प्रभावित। वे तो केवल मुनाफेकी भाषामें सोचने-समझने और धनसे धन बढ़ानेवाले बनिए भर हैं। उनके मनमें अभी यह आशंका है कि रुपया हम लगायें और उद्योगों के उन्नत होनेपर सरकार ले ले, यह तो कोई अधिक लाभका सौदा नहीं! पर अपने रुपएको छातीसे चिपकाकर और हाथ-पर-हाथ धरे बैठकर वे कबतक खैर मनायेंगे? समाजवादी व्यवस्थाका मतलब ही है उत्पादन और वितरण के साधनोंपर शासनका अधिकार। वह केवल कर लगाकर या कंपनी-कानूनमें सुधार-संशोधनकर ही बैठा नहीं रह सकता। मैनेजिंग-एजेंसियोंकी प्रथाको हटाकर वह केवल हिस्सेदारोंके हितोंकी रक्षा ही नहीं करेगा, उत्पादन और वितरणके साधनोंपर अपना नियंत्रण भी अधिक व्यापक और प्रभावपूर्ण करेगा। यदि इसके लिए उसे कुछ उद्योगों को अपने सीधे नियंत्रणमें भी लेना पड़े, तो वह लेगा। इसीलिए मुआवजा देकर ऐसा करनेकी कठिनाईको दूर करनेके लिए उसने संविधानकी धारा ३१में संशोधन करने का निश्चय किया है। गैर-सरकारी पक्ष देशके नव-निर्माण में पूरा योग नहीं दे रहा। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि कई उद्योगोंका उत्पादन सिर्फ इसलिए बढ़ाया नहीं जा रहा कि उसके लिए बाजार कहाँ है? और कई चीजोंको जरूरतमन्द देशवासियोंको न देकर मुनाफेके लिए बाहर भेजा जाता है, क्योंकि इनमें क्रय-शक्ति पैदा करने और बेकारोंको काम देनेकी जिम्मेदारी खानगी उद्योगपतियों पर तो है नहीं! इस स्थितिमें देशके नव-निर्माणमें खानगी पक्षका कितना ठोस और हार्दिक सहयोग मिलेगा, यह विचारणीय है। हम कोई नकारात्मक या निराशावादी रुख नहीं अपनाना चाहते, पर इनके सहारे-सहयोगसे यथार्थमें समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्यकी ओर बढ़ा जा सकेगा, इसमें हम नेहरूजी-जितने आशावादी शायद नहीं हैं। यदि सचमुच इस पक्षका विकास हुआ, तो कब कांग्रेस और उसका तथाकथित समाजवादी व्यवस्थाका लक्ष्य इसकी तिजोरियोंमें कैद हो जायेंगे, यह कहना मुश्किल है। पूँजी-वादके स्वभावपर समाजवादी व्यवस्थाका महल खड़ा करनेका इरादा कितना ही नेक और पाक क्यों न हो हम तो उसके बन सकनेकी संभावना कम ही दिखाई पड़ती है।

भूमि-समस्याका हल

यथार्थमें क्रान्तिका चक्र पूरा घूमे, तभी हमारे स्वाधीनता संग्रामकी चरम परिणति होगी, अन्यथा विदेशी साहबोंकी जगह स्वदेशी साहबोंके शासन और विदेशी पूँजीपतियों की जगह स्वदेशी बनियोंके शोषणसे अधिक हमारी आजादी से हुए परिवर्तनका कोई अर्थ न होगा। पर कहीं ऐसा न हो कि क्रान्तिके चक्रके घूमनेके बजाय, उसे रोककर हम स्वयं ही उसके चारों ओर घूमलें और जहाँसे आरंभ किया था,

वहाँ पहुँचकर कहें कि लो, क्रांतिका चक्र पूरा घूम चुका । यदि सचमुच हमें इस चक्रको पूरा घुमाना है, वास्तवमें समाजवादी समाज-व्यवस्था स्थापित करनी है, तो हमें यहाँकी वस्तुस्थितिपर समाजवादी ढंगसे सोचना और अमल करना होगा। जैसा कि नेहरूजीने कहा है, हमारे देशका सबसे बड़ा और प्राथमिक उद्योग कृषि है । भारतकी जन-संख्याको देखते हुए उसका राष्ट्रीयकरण बेतुकी-सी बात लगती है । पर उसके पूर्ण विकासके लिए केवल देशी राज्यों तथा जमींदारी, ताल्लुकेदारी और जागीरदारी खत्म कर देना या भूदान-यज्ञ द्वारा आदर्शमूलक भावुकतासे भूमिके छोटे-छोटे टुकड़े कर देना ही काफी नहीं हो सकता । अन्यान्य देशोंने यह साबित कर दिया है कि कृषिका उत्पादन बढ़ानेके लिए आधुनिक वैज्ञानिक उपाय-उपकरणोंको काममें लाना अनिवार्य है । भूदान-यज्ञके पुण्य-स्वरूप जमीनके छोटे-से टुकड़ेका मालिक बना किसान या छोटे गाँवके कई किसान मिलकर भी यह कार्य नहीं कर सकते । यह कार्य तो खेतोंकी सहकारी व्यवस्था द्वारा शासन ही करा सकता है । इसी प्रकार इसके परिणाम-स्वरूप बढ़नेवाले उत्पादनके वितरणकी व्यवस्था करनेकी जिम्मेदारी भी शासनको ही वहन करनी पड़ेगी । जमींदारोंके चंगुलसे तो सरकारने किसानोंको मुक्त किया है, पर अभी उन्हें उन पुराने और नए महाजनोंके चंगुलसे भी छुड़ाना है, जिन्होंने उनका जमींदारोंसे कम रक्त-शोषण नहीं किया है । खुशीकी बात है कि रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त कमेटीने इस पहलूपर गंभीरतासे विचार किया है और ग्रामीण बैंकोंकी व्यवस्था करनेका सुझाव सामने रखा है । पर आवश्यकता है इस दिशामें पूरी योजना बनाकर तेजीसे आगे बढ़नेकी ।

खानगी उद्योगोंका भविष्य

पर भारतकी आजकी अर्थनीतिक और राजनीतिक स्थितिमें यह जरूरी लगता है कि उद्योग धन्धोंके सरकारी और खानगी पक्षोंको समाजवाद या साम्यवाद नहीं, जन-साधारण और सबकी भलाईके लिए अधिकाधिक व्यापक और विकसित किया जाय। इसके लिए जहाँ सरकारको अपनी रीति-नीतिमें फिलहाल कुछ परिवर्तन करने होंगे, खानगी उद्योग धन्धोंके मालिकों और सभी श्रेणियोंके श्रमजीवियोंको भी अपने रुख-रवैयेमें आमूलचूल

है, जनताका जीवन-स्तर गिरता
मुट्ठी भर धनी अधिक धनी
चारको रोकनेका क्रान्ति, अ
यही तरीका एवं तकाजा है
मिलकर छोटे-बड़े उद्योग-
धिक लोगोंको काम दें, ताकि
तथा भुखमरीसे बेसब्र होकर
रास्ता न अख्तियार करें।
संकीर्ण व्यक्तिगत स्वार्थ और
ऊपर उठकर देशके व्यापक
उनका ही, बल्कि समूचे
सकता है ।

कांग्रेसकी क्षमता और

इसे संसारके शोषित-पीड़ि
चाहिए कि अब तक जहाँ कहीं
समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाका
वहाँ उनको अर्थनीतिक लाभ
पर जो कुछ हुआ, वह हुआ
के महँगे मूल्यपर हीं । भारत
विश्वके पहले राजनेता है,
स्वतंत्रताओंको बरकरार
स्थापित करनेकी दिशामें
सफल हुआ—और हृदयसे
तो भारत या एशिया ही न
महत्वपूर्ण क्रान्ति होगी और स
शोषित-पीड़ितोंको एक नई
मिलेगी । इसी लिए ऊपर
छिद्रान्वेषण या केवल
भावनासे नहीं, बल्कि हार्
हीं । हमारे इस प्रश्नको
मकसद यही है कि इस
खराबी या खटक न रहे, ज
न बढ़ने दें और यह केवल
जाय । इसकी सफलताकी
व्यवस्थाके सम्बन्धमें हमारे
उसका एक सुस्पष्ट नक्शा हो

जब हमारी आँखें नेहरूजी और कांग्रेसकी ओर जाती हैं, तो हम अपने-आपको बहुत आश्वस्त और आशान्वित नही पाते। समाजवादी व्यवस्था-सबधी उनके विचारो और धारणाओकी अस्पष्टतासे भी ज्यादा हमे कांग्रेसकी स्थिति सशक कर देती है। हम यह नही कहते कि दुनियाके अन्य बडे राजनीतिक दल एकदम दूधके ही धुले हैं। पर कथनी और करनीमें इतने बडे विपर्यय और अन्तरवाले लोग इतनी बडी सख्यामें दुनियाके और किसी राजनीतिक दलमें होगे, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। गत २० जनवरीको विषय-समितिने कांग्रेससे भ्रष्टता दूर करने और उसे मजबूत बनानेका जो प्रस्ताव पास किया है, वैसे प्रस्ताव और चर्चाएँ पहले भी सामने आ चुके हैं। पर उनका परिणाम ? इस प्रस्तावपर हुई बहससे यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेसके धनी-धोरी इस बातसे अनभिज्ञ नही कि त्याग और सेवाकी पवित्र भावनासे प्रेरित यह सस्था आज किस अध पतनको जा पहुँची है, पर वे कडाईसे इसका उपचार नही करना चाहते—शायद कर भी नही सकते। आज चिराग लेकर ढूँढनेपर भी शायद ऐसा नगर या ग्राम नही मिलेगा, जहाँका कांग्रेस-दफ्तर और कांग्रेसी उम्मीदवार का चुनाव-खर्च उन थैलीशाहोंसे न आता हो, जो लाइसस परमिट, ठेको और अन्यान्य सुविधाओके बदलेमें यह दान या घूस देते हैं। यही कारण है कि आज वे सच्चे निष्ठा-वान, आत्मत्यागी और सेवा-परायण व्यक्ति, जिनका पूरा जीवन कांग्रेस और उसके द्वारा जनता-जनार्दनकी सेवा में ही व्यतीत हुआ है, उससे उदासीन और विमुख हैं। तब क्या यह कांग्रेस समाजवादी व्यवस्थाकी स्थापना करनेमें सफल हो सकेगी ? नेहरूजी क्या इन तथ्योको नही जानते या जानकर भी आज इनकी छान-बीन करने और न्याऊँका ठौर पकडनेकी फुर्सत और दृढता उनमे नही है ?

परिवार-नियोजनकाका दिखावा

निश्चित समयकी योजनाएँ बनाकर काम करनेवाले देशोमे शायद रूस और चीनके बाद भारतका ही स्थान है। पर जिस दृढता, लगन और निष्ठाके साथ इनपर अमल होना चाहिए, वह न होकर प्रचार-प्रोपेगेंडा और छूँछा दिखावा ही अधिक होता है। उदाहरणके लिए स्वास्थ्य-मत्रालय के तत्वावधानमें चलनेवाले परिवार-नियोजनके कार्यको ही लें। प्रथम तो इतने बडे और घनी आबादीवाले देशके लिए ५ वर्षमें परिवार-नियोजनपर बिना किसी सर्वे या कार्यकी रूप-रेखाके केवल ६५ लाख रुपए खर्च मजूर करना बडी बेतुकी-सी बात है; फिर चन्द गुमराह और दुराग्रही व्यक्तियोकी अदूरदर्शिताके कारण इसका भी समयपर समुचित रूपसे व्यय नही किया जाना कहाँकी अक्लमदी है ? गत १से ४ जनवरी तक लखनऊमे हुए भारतीय परिवार-नियोजन-सम्मेलनकी अध्यक्षा श्रीमती धनवन्ती रामरावने बतलाया कि योजनाके ३॥ वर्ष बीत जानेपर भी ६५ लाख का दशाश भी खर्च नही किया गया है ! क्यों ? इसका उत्तर अमरीकी 'टाइम'ने यह दिया है कि भारतकी ईसाई स्वास्थ्य-मत्रिणी केवल ऋतुचक्र प्रणालीपर ही ज़ोर देती हैं (जो शत-प्रतिशत प्रभावहीन है) और वे गर्भ-निरोधके वैज्ञानिक उपकरणोके प्रयोग-प्रचारको प्रोत्साहन नही देना चाहती। इसका दुष्परिणाम क्या होगा, इसकी चेता-वनी देते हुए डा० राधाकुमुद मुखोपाध्यायने कहा कि भारतमें करीब ५० लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष बढ रहे हैं। यदि आबादीकी यह अबाध वृद्धि जारी रही, तो पचवर्षीय योजनाके पूरे लाभ प्राप्त होनेपर भी देशकी स्थिति बुरी ही रहेगी। गत सितम्बरमे रोममे हुई अन्तर्राष्ट्रीय आबादी-विशेषज्ञोकी कान्फ्रेसमे भी कहा गया था कि जिस गतिमे भारत की आबादी अभी बढ रही है, यदि उसे शीघ्र और प्रभावपूर्ण ढगसे नही रोका गया, तो १९८१मे वह ३६से बढकर ५२ करोड हो जायगी। क्या हम अपनी पचवर्षीय योज-नाओसे इतनी बडी जन-सख्याके लिए खाने, पहनने, मकान, काम आदिकी व्यवस्था कर सकगे ? यदि नही, तो हमें समय रहते चेतना चाहिए और परिवार-नियोजनका केवल दिखावा ही न कर ठीक ढगसे योजना बनाकर आबादी-विशे-षज्ञोकी सलाहसे पूरी तत्परताके साथ काम करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

जो अन्धेर, अकर्मण्यता और अदूरदर्शिता स्वास्थ्य-मत्रालयमें है, उन्हीका बोलबाला शिक्षा मंत्रालयमें भी है। पचवर्षीय योजनामें शिक्षाके मदमें जितना रुपया खर्च होना चाहिए था, शिक्षा-मत्रीकी अयोग्यता, अदूरदर्शिता और दुराग्रहके कारण उसका भी थोडा अंश ही खर्च हुआ है—और इसे भी फजूलखर्ची या दुरुपयोग ही कहना चाहिए। देशके स्वाधीन होनेके बाद पिछले सात वर्षोसे शिक्षामत्रा-लयमे तो मानो ताला ही पडा है। इस स्थितिपर खेद प्रकट करते हुए अखिल-भारतीय शिक्षा-कान्फ्रेंसके २९वें अधिवेशन में बडे दबे स्वरमें कहा गया है कि "केन्द्रीय सरकारको केवल राज्य-सरकारो, स्थानीय सस्थाओ और खानगी एजेंसियो द्वारा शैक्षणिक कार्यक्रम कैसे चलाए जायें, यह बताने और इनके कार्योको सुसबद्ध करनेकी अपेक्षा समूचे देशकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियोको कार्यान्वित करने और जहाँ तक सभव हो, इसी दिशामें काम करनेवाली सस्थाओकी सहायता करनेकी

पूरी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिए।" पर हमारी सरकारकी तो कोई राष्ट्रीय शिक्षा-नीति ही नहीं, जिसे कार्यान्वित करनेका प्रश्न उठे। लगभग हर महीने पत्रोंमें किसी-न-किसी शिक्षणशास्त्रीका अथवा उपाधि-वितरणोत्सवके अध्यक्षका वक्तव्य निकलता है कि विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाका स्तर गिरता जा रहा है। मौखिक और लिखित परीक्षाओंमें दिए जानेवाले उत्तरोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। हमारे राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, अनेक राज्योंके मुख्य मंत्री और अन्य मंत्रिगण अनेक विश्वविद्यालयोंके उप-कुलपति आदि आए दिन गला फाड़-फाड़कर कहते हैं कि शिक्षाका स्तर गिर रहा है, शिक्षामें हमारे देशकी आवश्यकताके अनुसार सुधार होना चाहिए आदि, पर जैसे किसीके कानोंपर जूँ तक नहीं रेंगती—मानो यह काम किसी दूसरे देशके शिक्षा-विशेषज्ञ अथवा किसी दूसरे लोकके फरिश्ते आकर करेंगे। पिछले दिनों दिल्लीमें हुई विश्वविद्यालयोंके उप-कुलपतियोंकी कान्फ्रेंसमें यह शिकायत की गई कि भारतीय विश्वविद्यालयों में भीड़ अधिक हो जाती है, क्योंकि अयोग्य और लक्ष्यहीन विद्यार्थी भी उनमें घुस जाते हैं। इसे दूर करनेके लिए शिक्षा-मंत्रीके दिमागमें अब एक माध्यमिक शिक्षा-बोर्डकी योजना आई है, जिसपर १९६१ तक अमल होगा! इस तरहके अपर्याप्त प्रयोगों और खिलवाड़ोंसे काम नहीं चल सकता। देशके नव निर्माणकी कोई भी योजना राष्ट्रीय शिक्षा-नीतिके पुनर्निर्माणके बिना अधूरी ही रहेगी। अतः हमें अविलम्ब पार्टी और व्यक्तियोंकी कृपा, लिहाज-मुलाहिजा आदिका मोह छोड़कर ३७ करोड़ लोगोंके भविष्यकी दृष्टिसे राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धतिका पुनर्संस्कार करना चाहिए। यह कार्य वर्तमान शिक्षा-मंत्री और उनका मंत्रालय कदापि नहीं कर सकता।

विस्थापितोंकी समस्या

पश्चिमी भारतके विस्थापितोंकी समस्या तो प्रायः हल हो चुकी, किन्तु पूर्वी बंगालसे आए व्यक्तियोंकी समस्या अभी काफी जटिल रूपमें ही है। पिछले दिनों कलकत्ता आए पुनर्वास-मंत्री श्री मेहरचंद खन्नाने बताया कि अभी कोई डेढ़ लाख विस्थापित विभिन्न कैम्पों, घरों, आश्रमों आदिमें रह रहे हैं। ९ करोड़ रुपया सरकार इनके लिए

पर ही बने रहना चाहते हैं।
स्वार्थवाले 'नेता' इन्हें बरगलाकर
देते हैं। रहे तथाकथित सामा
कभी उनकी बैठकें देखी हैं, उससे
सेवाके इन फैशनपरस्तोंसे किसी
सकती। यदि ये चाहते या चाहें
वरण पैदा कर सकते हैं कि वि
घरोंके द्वार खुल जायँ। अभी भी
जाय, तो यह बहुत मुश्किल नहीं
शिक्षण-केन्द्रोंके साथ हार्दिक
सरकारी तौरपर इतनी बड़ी स
जनक ढंगसे हल कर लेना आव

समाज-सेवाका कार्य

एक समय था, जब हमारे दे
और निष्ठाकी भावनासे प्रेरित
कुछ समय निकालता था। गृहस
से पूर्व वानप्रस्थाश्रम तो एकम
यह या तो कुछ धनीमानीके मनबह
का साधन बन गया है या फिर
फिर भी यह मानना पड़ेगा कि
समाज-सेवाके छोटे-मोटे काम
जरूरतमंद लोगोंको सहायता
इनकी सहायताके बिना राहके
लोगोंके कामोंमें यदि
तो बहुत बड़ा काम हो सकता
उत्तर-प्रदेश-सरकारने इसके
स्थापित किया है और आशा की
न्य राज्य तथा केन्द्रीय
खोलेंगे। पर केवल मंत्राल
जायगा, ऐसा समझना भूल है।
जहनियतके लोग हैं, अगर उ
की गई, तो कामसे ज्यादा क
आवश्यकता इस बातकी है कि
हुए सार्वजनिक सेवा
पूर्ण सहयोगसे चलें। उत्तर-
कार्यका मंत्रालय खोलकर इस

नही करना चाहिए, जो अपने जीवनकी साँझमें हैं—भले ही कुछ दिन और वे कुछ उपयोगी काम कर ले। अब आज़ादीकी मशाल नौजवानोके हाथोमें होनी चाहिए।' सुननेमें यह बात बडी अच्छी लगती है और है भी सही। पर अगर दरअसल नेहरूजीकी यही हार्दिक अभिलाषा होती, तो वे उस सचाईसे आँख नही मूँदते, जिसकी वजहसे पिछले सात वर्षोमें छात्रो और युवकोके सघोकी सरगर्मी के बावजूद अधिकाधिक नौजवान काग्रससे विमुख हुए है। नेहरूजी हम क्षमा करें, अधिक कार्य-व्यस्तता और खुशाम-दियोंसे सदा घिरे रहनेके कारण वे न सिर्फ नौजवानोंके सम्पर्कसे ही दूर हट गए हैं, बल्कि शायद यह भी नही जानते कि आज मुल्कके नौजवान किस भाषामें सोचते और बोलते है। क्या उन्होने कभी सोचा है कि उनकी काग्रसमे जो कायमी स्वार्थोके ठेकेदार ऊँचे-ऊँचे आसनोपर बैठे हैं, जो बूढे और अयोग्य व्यक्ति सिर्फ उनके कृपापात्र होने के कारण मत्रि पदोपर थोपे गए है उनके बारेमे नवयुवको की प्रतिक्रिया क्या है? एक दिन नेहरूजी नवयुवकोके हृदय-सम्राटके नामसे पुकारे जाते थे। युवक-सघकी स्थापना कर उन्होने नौजवानोमे एक नई जान फूकी थी। पर आज नेतृत्व और पथ प्रदर्शनके लिए नौजवान उनकी ओर नही देखते, क्योंकि आज उनके विचार और कार्य क्रान्तिसे हटकर सुधार और समाजवादके नामपर कायमी स्वार्थों की रक्षाका ही आभास देते है। उनकी उपस्थितिमें काग्रेस-सस्थामे आई भ्रष्टता, अनुशासनहीनता और डलीगटो तकके चुनावमे होनेवाली बईमानी और षड्यन्त्रोका जो बखान हुआ, अगर नेहरूजी २० वर्ष पहलेके नेहरू होते, तो शायद भीतरसे काग्रसको खोखला करते जानेवाले इस रोग के उपचारके लिए केवल एक अनुशासन-समिति बनाकर ही सन्तोष नही कर लेते। और इस तरहकी भ्रष्ट और दुर्बल सस्थाको लेकर वे समाजवादी व्यवस्था कायम करनेका स्वप्न देखते है। काग्रसके नामपर जो राजनीतिक कुम्भ मेला अवाडीमें भरा, उसकी हृषध्वनिपर खुश होने के बावजूद गत २२ जनवरीको अवाडीमे हुई प्रदेश-काग्रसो के अध्यक्षो एव मत्रियोकी बैठकमे नेहरूजीने कहा—मैं यह देखकर दग रह गया कि काग्रसके नेताओमें सामयिक समस्याओकी जानकारी और उनका अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति एकदम नही है। यही कारण है कि वे छात्रो और नौजवानोको अपनी ओर आकृष्ट नही कर पाते। काग्रस सिर्फ अपनी अतीतकी प्रतिष्ठापर जिन्दा रह रही है और जनतासे उसका सम्पर्क छूटता जा रहा है। इसमें एसे लोग सदस्य बनाए जाते हैं, जिनके पास पैसा है, सचाई नही। तब नेहरूजी स्वय सोचें कि ऐसे नेताओ और सदस्योकी सस्थाकी ओर भला आजका नौजवान क्यो और कैसे आकृष्ट हो सकता है? और इन लोगो से काग्रेसको भरकर नौजवानोके लिए उसका दरवाजा बन्द करनेकी एकमात्र प्रत्यक्ष ज़िम्मेदारी नेहरूजीकी ही है।

अवाडी-काग्रेसकी सफलता'

गत २३ जनवरीको अवाडी काग्रसका आँखो-देखा विवरण भेजते हुए स्टेट्समैन के विशेष सवाददाताने लिखा है—काग्रेसके हीरक जयती-अधिवेशनसे उन लोगोको निराशा हुई है, जिन्होने यह आशा की थी कि उसमे रोजमर्रा की समस्याओकी गहरी आलोचना होगी और उसीके आधारपर बडे और नए निर्णय होगे। किन्तु जैसे उसका यह उद्देश्य ही न था। अधिवेशन आरम्भ होनेसे पहले ही उसमें स्वीकृत होनेवाले समाजवादी व्यवस्था और उसकी दिशामे उठाए जानेवाले पगोका धुँआधार प्रचार आरभ हो गया था। इस अधिवेशनमें खर्च हुए लगभग ३० लाख रुपयोके भारी भरकम खर्चका औचित्य इसमे हुई कुछ बौद्धिक वक्तृताओके आधारपर सिद्ध करना असभव है। दोनो प्रस्तावोमें होनेवाली पुनरावृत्तियोका कारण था सामाजिक और अर्थनैतिक ज्ञानका बडा निम्नस्तर जिसे नेहरूजीने भी स्पष्टतया स्वीकार किया है। डलीगेटोकी भाषाओकी विविधता और शिक्षाके निम्नस्तरको देखते हुए समाजवादी लक्ष्यके सिद्धान्तकी शास्त्रीय चर्चा एकदम अनुपयुक्त थी। इस मसलेने जैसे अन्य सभी समस्याओ को छा-सा लिया। इस अधिवेशनकी सफलताको इसके प्रचार प्रोपेगेंडाके प्रभावके रूपमे ही देखा जाना चाहिए, जो नेहरूजीकी आशाके अनुसार डलीगटोके अपने अपने प्रान्तोंमें लौटनेपर और भी बढेगा।

सोमेशचन्द्र बसु

गत ११ जनवरीको कलकत्तेमे सुप्रसिद्ध गणितज्ञ श्री सोमेशचन्द्र बसुका ६८ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। आप जब केवल आठ वर्षके थे, तभी १४ अकोकी राशिका जोड-बाकी ही नही, गुणा तक पलक मारते ही कर लेते थे। बडे होनेपर आप १०० अको तककी राशिको इतनी ही बडी राशिसे बिना कागज़-पेन्सिलकी सहायताके गुणा कर लेते थे। भारतके प्रमुख गणितज्ञोके अलावा आपने दो बार यूरोप-अमरीकाके गणितज्ञोंके सामने जाकर भी अपनी अद्भुत प्रतिभाका परिचय दिया था। कवीन्द्र रवीन्द्रने आपका आइन्स्टाइनसे भी परिचय कराया था। १९०५में आपने स्वदेशी-आन्दोलनमें भी भाग लिया था।

बाबूराव विष्णु पराडकर

गत १२ जनवरीको प्रात. ३॥ बजे काशीमें हिन्दी-पत्रकारिताके सिरमौर सम्पादकाचार्य पंडित बाबूराव विष्णु पराडकरजी सदाके लिए हमें छोड गए। यद्यपि इस समय वे ७२वें वर्षमें थे और पहले-जितना काम भी नहीं कर पाते थे, पर उन्हें अपने बीच पाकर ही न-जाने कितनोंको कितना आश्वासन, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता था। उनका निधन केवल एक श्रेष्ठ और कुशल पत्रकार का वियोग ही नहीं है, वरन् वह क्रान्ति और निष्ठाके उस युगका पटाक्षेप है, जिसका आरम्भ लोकमान्य तिलक के समय हुआ था। पराडकरजीने पत्रकारितामें जो प्रतिष्ठा पाई, जो योग्यता दिखाई, वह उनकी अविचल निष्ठा, असंदिग्ध सचाई, अनुकरणीय सेवा-परायणता और अनन्य निर्भीकताका ही परिणाम था। अपने जीवनको होमकर उन्होंने न केवल राष्ट्रके मुक्ति-संग्राममें ही योग दिया, न सिर्फ हिन्दी-पत्रकारिताको ही उन्नत एवं सम्मानित किया, बल्कि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे अनेक व्यक्तियोंको प्रेरित-प्रभावित भी किया। इस दृष्टिसे उनका काम भारतके किसी भी नेता, किसी भी क्रान्तिकारीसे कम नहीं, अधिक व्यापक और ठोस ही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम पराडकरजीके जीते-जी ऐसी सुविधा नहीं कर सके कि वे अपने संस्मरणों को लिपिबद्ध कर पाते। पर इस पापका थोडा-बहुत प्रायश्चित्त हम उनका उपयुक्त स्मारक बनाकर अवश्य कर सकते हैं। यदि कोई मान्य संस्था इस कार्यको अपने हाथमें ले, तो अवश्य ही उसे समूचे देशका सहयोग प्राप्त होगा।

हरविलास सारडा

गत २० जनवरीको अजमेरमें श्री हरविलासजी सारडा का ८८ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। अपने सारडा-कानूनके लिए आप सदा याद किए जायँगे। काफी अर्से तक आप अजमेर, ब्यावर, जोधपुर आदिमें विचारपति रहे, दो बार केन्द्रीय धारा-सभाके सदस्य चुने गए और देश-विदेश की अनेक संस्थाओंके सदस्य तथा पदाधिकारी रहे। १९-२७में आपने बाल विधवाओंकी वृद्धि रोकने और लड़के-लडकियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेके लिए बाल विवाह-निषेधक बिल पेश किया, जिसमें १२ वर्षसे कम उम्रकी लडकी जा सकता। केवल इसके लिए ही और चिर-ऋणी रहेंगे।

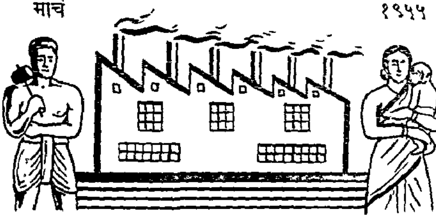
शान्तिस्वरूप भटनागर

गत १ जनवरीको दिल्लीमें भ औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शोध-वि सर शान्तिस्वरूप भटनागरका ६ देहान्त हो गया। १९१९मे पंज एस्-सी० करके आप लंदन चले एस्-सी० किया। लौटकर अ भौतिक और रसायनके अ आप पंजाब विश्वविद्यालयमें चले पनके साथ-साथ शोध-कार्य किया अणु और परमाणुसे उसका रसायन, बुनाई और स्टार्च, भूमि वस्तुओंके निर्माण और शोध की। देश और विदेशकी कई संस्थाओंसे आपका सम्पर्क था। 'इलम-उल्-वर्क' आपके प्रमुख व्यावहारिक कुशलताके सभी होनेके बाद आप उसकी पंचवर्षीय ले रहे थे। आपका मत था सामग्रीका वैज्ञानिक ढंगसे बहुत शीघ्र समृद्ध हो सकता है

रघुवीरसिंह

गत ७ जनवरीको पेप्सूके का ६२ वर्षकी आयुमें देहान्त हो आप अस्वस्थ थे। पहले आप थे। अवकाश ग्रहण करनेके कु हुआ और विभाजन हुआ। त के विचारसे कांग्रेसमें शामिल और व्यवस्था-कुशलताका ही ५२ और ५४में पेप्सूमें बने म हुए। आपकी सादगी दृष्टिकोण और सेवा-परायणता करते थे। पेप्सूमें राष्ट्रपति

मार्च १९५५



नया समाज



संचालक
नया समाज ट्रस्ट

नया समाज

(स्वतन्त्र विचारों का सचित्र हिन्दी-मासिक

विषय-सूची : मार्च, १९५५

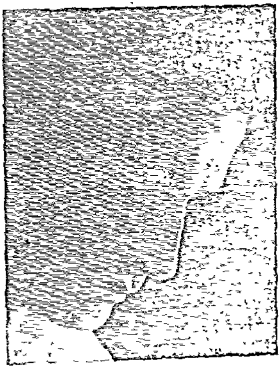
नया समाज

वर्ष ७ : खंड २] कलकत्ता : मार्च, १९५५ [अंक ३ · पूर्णांक ८१

ध्यान-भूमि

श्री सुमित्रानंदन पंत

आओ हे, हम ध्यान-मौन, एकाग्र प्राण-मन
जीवन का अंतरतम सत्य करें उद्घाटन !
पलक मूंद, अंतःस्थित खोलें मनके लोचन,
घटवासीको करें पूर्ण सब आत्म-समर्पण !
लो, सुन पड़ता सूक्ष्म स्वर्ण-भृंगोंका गुञ्जन,
मन, धीरे, श्रद्धापथसे करता आरोहण !
देखो, छँटता घने कुहासेका छाया-घन,
जिसमें पलता हास-अश्रु-स्मित जगका जीवन !
जिसकी चपल भृकुटिपर इंद्रधनुष-सा प्रतिक्षण
हँसता मानव आशाऽकांक्षाका सम्मोहन !
ओझल होता लो, वह बादल रश्मि-विद्रवित,
गर्जन संघर्षणमय, तृष्णा तड़ित् प्रकम्पित !
नए रुपहले क्षितिज निखरते मनके भीतर,
आभाके रस-स्रोत फूटते, पुलकित अंतर !
जगके तमके साथ हुआ 'मैं' का भ्रम भी लय,
अब अवाक् आरोहोंमें उड़ता मन निर्भय !
जहाँ शुभ्र सच्चिदानन्दके शिखर अतंद्रित,
निज असीम शाश्वत शोभामें निःस्वर मज्जित !
मानव-मनकी अंतिम गति, आत्माकी परिणति,
ज्योति-स्पर्श पा निर्मल हो उठती पंकिल मति !
आः, ऊपर वह छाया स्वर्णिम ज्वालाका घन
दिव्य प्रेरणा-तड़ितोंमें लिपटा अति चेतन !
बरस रहे शत सृजन-प्रलय, शत देश-काल-क्षण,
श्री शोभा आनन्द मधुरिमाका भर प्लावन !
अमृत बिन्दुओं-से झरते स्मित ज्योति-प्रीति-कण,
अमरोंके सुख-वैभवमें उर करता मज्जन !
भारहीन अक्षय प्रकाशसे पीड़ित अंतर
मुक्त भावनाके स्वर्गोंमें उठता ऊपर।



श्री सुमित्रानंदन पंत

अंतर्मनका शांत व्योम रे यह निस्संशय,
ऊर्ध्व प्रसारोंमें खो जाए चित्त न तन्मय !
आओ, इस स्वर्गिक वाड़वमें अवगाहन कर
लौट चलें पावक-पराग-मधुका नव तन धर !
नव प्रकाशके बीज करें जन-भू पर रोपण,
शोभा-महिमासे कृतार्थ हो मानव-जीवन !

मानवके अस्तित्व और विवेकको

बरट्रेण्ड रसेल

ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध दार्शनिक और इस युगके महान मानवतावादी विचारक बरट्रेण्ड रसेलने
रही अणु और उद्जन-बमकी होडसे होनेवाले सभावित दुष्परिणामके खिलाफ जबरदस्त
सम्बन्धमें बी० बी० सी० से प्रसारित उनकी एक वक्तृताका भाषान्तर नीचे दिया जा रहा
'मंचेस्टर गार्जियन'में सपादकके नाम लिखे गए एक पत्रमें भी आपने लिखा है—"इस
प्रेसिडेंट आइज़ेनहावर और मि० चाउ-एन-लाई, मानव-जातिके अस्तित्वको जारी रहने
पैदा किए हैं। यह स्पष्ट है कि इनमें से कोई भी इस खतरेसे पर्याप्त रूपसे आगाह नहीं है। उनके
के सम्बन्धमें मुझे कुछ भी नहीं कहना है। जब किसी मकानमें आग लगी हो, तो ९
इस बातका निर्णय करनेके बजाय कि अग्निकाडके लिए दोषी कौन है, भीतर रहनेवालोंकी
इस वक्त, सर विस्टन चर्चिल और मि० नेहरू, कामनवैल्थ-कान्फ्रेंसमें मिल रहे हैं। दोनोंने
दुष्परिणाम-सम्बन्धी अपनी आशकाओंको प्रकट किया है। क्या ये मिलकर प्रत्यक्ष
उपाय नहीं सुझा सकते? सर विस्टनका (अमरीका) के प्रेसीडेंटसे पुराना मैत्री-सम्बन्ध है
कम्युनिस्ट चीनकी सरकारसे मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित किया है। इस समय जिस बातकी
कर सकते हैं, वह यह कि लडाई तो बन्द कर दी जाय और समझौतेके किसी उपायकी खोज
हुआ, तो यह गैर-मुमकिन नहीं कि इस वर्षके अन्तसे पहले ही मानव-जातिका लोप हो जाय
होता है कि गत ९ फरवरीको भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजीने आपके साथ दोपहरी की और
राजी करनेकी चेष्टा की कि ६ भारतीयोंकी एक समिति बनाई जाय, जो उद्जन-बमोंसे
को होनेवाली हानिसे सब राष्ट्रोंको अवगत कराए। अभी नेहरूजीने कोई वादा तो नहीं
प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति अवश्य प्रकट की है। यदि इस सम्बन्धमें सभी देशोंमें
जा सके, तो शायद कुछ लाभ हो। —प०

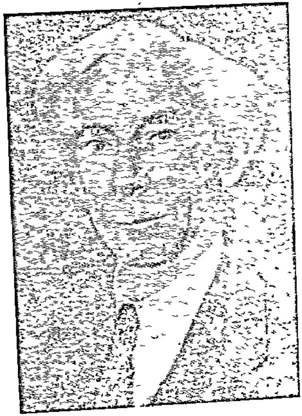
आज मैं एक अंगरेज अथवा एक यूरोपियन अथवा पश्चिमी जनतत्रके एक सदस्यकी हैसियतसे नहीं, बल्कि उस मानव-समाज—जिसका अस्तित्व आज गहरे खतरेमें है—के एक सदस्यकी हैसियतसे ही कुछ कहना चाहता हूँ। हमारी आजकी दुनिया तरह-तरहके सघर्षोंमें मुब्तिला है—यहूदियों और अरबोंका, भारतीयों और पाकिस्तानियोंका तथा अफ्रीकामें गोरों और कालोंका। और इन सबसे कहीं बडा सघर्ष है कम्युनिस्टों और कम्युनिस्ट विरोधियों के बीच। लगभग हर आदमी, जो कि राजनीतिक दृष्टि से सजग है, इन समस्याओंके सबन्धमें बडी दृढ भावनाएँ रखता है। पर मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि यदि किन्हीं एक क्षणके लिए हम इन सारी भावनाओंको भूल सकें कि हम और कुछ होनेसे पहले उस मानव-समाज

सकटको कैसे
मैं ऐसी कोई बात नहीं
पसन्द हो और दूसरेको
तो यह है कि आज हम
और अगर हम इसे ठीक
करना असगत न होगा कि
की प्रबल प्रचेष्टा कर सकते
सोचना सीखना होगा।
दलके साथ क्यों न हो, पर ह
कैसे कदम उठानेसे उस दल
आजकी स्थितिमें ऐसे कोई
अपने-आपसे यह प्रश्न पूछना

यह महसूस ही नही किया है कि उद्‌जन-बमोंकी लड़ाईका परिणाम कितना भयकर होगा। जन-साधारण अभी यही समझते है कि इससे केवल बड़े नगरोका ही ध्वस होगा। पर सच यह है कि ये बम पुराने बमोंसे कही अधिक विनाशकारी है। जहाँ एक अणु-बमसे हिरोशिमा नेस्त-नाबूद हो सकता है, वहाँ एक उद्‌जन-बमसे न्यूयार्क, लन्दन और मास्को-जैसे विशाल नगर तक बिल्कुल नि.शेष किए जा सकते है। लेकिन यह भी उद्‌जन-बमसे होनेवाले विनाश का एक छोटा ही रूप है। यदि थोडी देरके लिए हम मान भी ले कि उद्‌जन-बमसे लन्दन, न्यूयार्क और मास्कोमें रहनेवाले हर व्यक्तिका अन्त किया जा सकता है, तो यह एक ऐसी हानि होगी, जिसकी क्षति-पूर्ति शायद कुछ शताब्दियो में हो सके। किन्तु बिकिनीमे हुए उद्‌जन-बमके परीक्षणसे यह स्पष्ट हो गया है कि उद्‌जन-बममें अनुमानसे कही बडे क्षेत्र तक अपना विनाशकारी प्रभाव विस्तार कर सकता है। अधिकारी विशेषज्ञोंका कहना है कि हिरोशिमाका नाश करनेवाले अणु-बमसे पचीस हजार गुना अधिक शक्तिवाला उद्‌जन-बम अब तैयार किया जा सकता है। ऐसा बम चाहे जमीनके ऊपर फटे या पानीके नीचे, उसके रेडियो-एक्टिवके कण ऊपर हवामें अवश्य फैलते है और फिर धीरे-धीरे पृथ्वीपर मृत्युके कण बनकर लौटते हैं। इन्ही कणोके सम्पर्कसे वे जापानी मछुए और मछलियाँ अकाल काल-कवलित हुए, जो कि अमरीकी विशेषज्ञो द्वारा निर्धारित खतरेके क्षेत्रसे कही दूर थे।

सारी मानवताका अंत !

यह निश्चयपूर्वक कहना तो बडा कठिन है कि उद्‌जन बमके विस्फोटसे फैलनेवाले रेडियो-ऐक्टिवके ये घातक कण कहाँ तक जा सकते है, किन्तु इसके बडे-बडे विशेषज्ञ तक इस बातमें सर्वसम्मत है कि उद्‌जन-बम मानव-जातिका अन्त करनेकी पूरी क्षमता रखते है। उन्होने यह आशका प्रकट की है कि यदि कई उद्‌जन-बमोका प्रयोग किया जाय, तो सारी दुनियाके मनुष्योका खातमा किया जा सकता है। वे कुछ लोग भाग्यशाली होगे, जो उनके प्रभावसे तुरन्त मर जायेंगे; पर अधिकाश लोगोको तो भयकर रोगो और अग-हानिकी दुस्सह यन्त्रणा द्वारा तिल-तिल करके ही मरना होगा। यहाँ मैं कुछ उद्धरण देना चाहता हूँ ब्रिटिश हवाई सेनाके युद्धकालीन मुखिया सर जान स्लेसर का कहना है कि "इस युगमें होनेवाला विश्व-युद्ध सामूहिक आत्म-हत्याएँ ही होगा। युद्धसे किसी खास अस्त्रके निषेध की बात करना न तो पहले कभी कोई मानी रखता था, न आज ही रखता है। आज तो जरूरत इस बातकी है कि हम युद्धका ही निषेध करें।" स्नायु-विज्ञानके विशेषज्ञ प्रो० एड्रियनका कहना है—"लगातार होनेवाले आणविक विस्फोटोसे वायुमण्डलमे रेडियो-एक्टिवके कण इतने व्यापक रूपसे फैल जायेंगे कि उनसे कोई भी नही बच सकेगा। जबतक हम अपनी कुछ पुरानी मान्यताएँ छोडनेके लिए तैयार न हो जायँ, हमे मजबूरन उस संघर्षमे पडना पडेगा, जिसका परिणाम समूची मानवताका अन्त ही होगा।" हवाई सेनाके मुखिया सर फिलिप जूबर्टका कहना है— "उद्‌जन-बमके आविष्कारके साथ ही मानव-समाज उस मजिलपर पहुँच गया है, जहाँ कि या तो वह अपनी नीतिके रूपमें युद्धका त्याग करे अथवा अपने पूर्ण विनाशकी सभावना को स्वीकार करे।"


बरट्रेण्ड रसेल

युद्ध-निषेधकी आवश्यकता

ऊपर हमने कुछ विशेषज्ञोंके जो उद्धरण दिए है, वैसे और भी बहुत-से दिए जा सकते है। अनेक विज्ञान-वेत्ताओ और सैनिक-विज्ञानके अधिकारियोने उद्‌जन-बमके व्यापक विनाशकी सभावनाकी अनेक चेतावनियाँ दी हैं। इनमें से कोई भी यह नही कहता कि उद्‌जन-बमका निकृष्ट-

तम परिणाम ही होगा, बल्कि उनके कहनेका आशय तो यह है कि इन परिणामोंकी सभावना है। पर किसीको इस गफलतमें नही रहना चाहिए कि ऐसे परिणाम हो नही सकते। जहां तक मेरा खयाल है, विशेषज्ञोका यह मत किसी राजनीति या भ्रान्तिपर आधारित न होकर केवल उनकी शोधका ही परिणाम है। मैंने देखा है कि इस परिणामकी जिसको जितनी अधिक जानकारी है, वह उतना ही अधिक सशक है। इसलिए आज अपने बिल्कुल नग्न और अपरिहार्य रूपमें समस्या यह है कि हम लोग मानवताका अन्त करना चाहते हैं अथवा युद्धको त्यागनेको तैयार हैं ? शायद अधिकांश लोग इस समस्या

अमरीका और रूसमें प्रतिद्वन्द्विता

गत ८ फरवरीको सुप्रीम सोवियत (रूसी पार्लमेंट) के सम्मिलित अधिवेशनमें बोलते हुए रूसके विदेश मंत्री मोलोटोवने कहा—"दूसरे महायुद्धके बाद पाश्चात्य शक्तियोंने सोचा कि आणविक शस्त्रास्त्रमें सोवियत-संघको उनके बराबर होनेमें १०-१५ वर्ष लग जायेंगे। पर इस विषय में आज सोवियत-सघ उनके समान स्तरपर है। और उद्‌जन-बमके मामलेमें तो रूस नहीं, अमरीका ही रूसके पीछे है!" इसके उत्तरमें १० फरवरीको वाशिंगटनके अमरीकी अधिकारियोंने कहा कि "पहले कभी सोवियत-संघ भले ही उद्‌जन-बमके मामलेमें अमरीकासे आगे रहा हो, पर अब यह फर्क नहीं रह गया है।" अमरीकी अणु-विशेषज्ञोंका कहना है कि "आणविक विस्फोटकोंके प्रयोगमें नई विधिके आविष्कारसे शायद अभी कुछ समयके लिए रूसका ज्ञान अधिक हो गया हो। अमरीकी विशेषज्ञोंसे कोई एक वर्ष पहले रूसियोंने समय और चालक पदार्थकी काफी बचतकर अणु-विस्फोटकोंको चलानेकी विधि निकाली है। पर अब अमरीका इस फर्कको पूराकर रूससे आगे बढ़ गया है!"

का सामना करनेको तैयार न होंगे, क्योंकि युद्धका त्यागना आज काफी कठिन बात है। युद्धके त्यागनेका परिणाम राष्ट्रीय सार्वभौमतापर कई तरहके नियंत्रण लगाना होगा।

अस्पष्ट धारणा

आज दो देशोंमें समझौता होनेके मार्गमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मनुष्य 'जन' अथवा 'मानव' के बारेमें

इस अस्पष्ट और भ्रान्तिपूर्ण
लोग यह समझते हैं कि यु
कुछ आधुनिक अस्त्रोंका
मुझे भय है कि यह विचार
कालमें चाहे जैसे और
युद्ध-कालमें उनका पालन
यह तो तय है कि युद्ध
बम तैयार करने लगेंगे, क्य
तैयार किया और दूसरेने
तैयार करनेवाले पक्षकी ह
मैं देखता हूँ कि लौह
महायुद्धके नाशकारी प्रभाव
काफी राजनीतिक
है कि यदि एक पक्ष इस बालक
दृष्टिसे वह दूसरेकी दयाका
आत्म-रक्षाके लिए हर प
है कि उसे प्रतिपक्षी द्वारा
दी जा रही हैं, जिन्हें कि वह
ही पक्ष भले ही समझौतेके
ढगसे इस भावनाको व्यक्त
ठीक वैसी ही है, जैसी कि
को द्वन्द्व-युद्धके लिए चुनौत
करती थी। अक्सर ऐसा
देनेवाले दोनो व्यक्ति मृत्युके
रखते थे, किन्तु कोई भी
था कि कहीं उसे कायर न
में एकमात्र आशा दोनो अ
ही थी, जो कि सहज हीं
आज लौह-आवरणके दोनों
स्थिति है।

युद्ध-निषे

यदि आज युद्धको
तो वह निष्पक्ष राष्ट्रोंके
ये राष्ट्र युद्धकी विनाशकारि
इन्हें कोई कायर अ
टेकनेकी नीतिका पालन

अधिष्ठाता होता, तो मेरा सर्वप्रमुख कर्त्तव्य यही होता कि मेरे देशके निवासी सुरक्षित रहें; और यह तभी संभव था, जब कि मैं लौह-आवरणके दोनों ओरके पक्षोंमें किसी प्रकार का समझौता संभव करा सकता। व्यक्तिगत रूपसे अपनी भावनाओंमें मैं तटस्थ कदापि नहीं हूँ, इसलिए मैं कभी भी युद्धके खतरेको टालनेके लिए पश्चिमके आत्म-समर्पण अथवा आततायीके आगे घुटने टेकनेकी नीतिका समर्थन नहीं कर सकता। पर एक मनुष्यकी हैसियतसे मुझे यह हमेशा याद रखना चाहिए कि यदि पूर्व और पश्चिम, कम्युनिस्टों और गैर-कम्युनिस्टों, एशियावासियों या यूरोपियनों या अमरीकनों तथा कालों या गोरोंकी समस्याओं का किसी भी प्रकार हल संभव है, तो वह कभी भी युद्धके द्वारा नहीं होना चाहिए।

मेरी हार्दिक कामना है कि यह तथ्य लौह-आवरणके दोनों ओरवाले पक्षोंके द्वारा भलीभाँति समझा जाना चाहिए। केवल एक ओर ही इसका समझा जाना काफी नहीं है। चूँकि निष्पक्ष राष्ट्र आजके इस संकटमें पूर्व और पश्चिमकी तरह ही मुब्तिला नहीं हैं, वे इस तथ्यको दोनों पक्षोंको भलीभाँति हृदयंगम करा सकते हैं। एक या अधिक निष्पक्ष राष्ट्र कुछ विशेषज्ञोंका एक ऐसा कमीशन भी बना सकते हैं, जो न केवल लड़नेवाले पक्षों, बल्कि निष्पक्ष राष्ट्रोंपर भी उद्‌जन-बमोंके युद्धके संभावित विनाशकारी प्रभावोंके संबंधमें एक रिपोर्ट तैयार करे। यह रिपोर्ट सम्मति-असम्मति व्यक्त करनेके अनुरोधके साथ सभी बड़े राष्ट्रों के पास भेजी जानी चाहिए। मेरे खयालसे इस रूपमें महान् राष्ट्रोंको इस बातसे सहमत किया जा सकता है कि उनमेंसे किसीका भी मकसद विश्व-युद्धसे पूरा न होगा, क्योंकि उससे मित्र, शत्रु और निष्पक्ष राष्ट्रों—तीनोंका ही समान रूपसे विनाश होगा।

अतीतसे भी बड़ी संभावनाएँ

नेतृत्व-विज्ञानवेत्ताओंका कहना है कि अभी मनुष्य पृथ्वीपर बहुत थोड़े समय ही रह पाया है—केवल १० लाख वर्ष। इस कालमें—और विशेषतया पिछले छ हजार वर्षोंमें—उसने जो-कुछ प्राप्त किया है, सृष्टि-विकासके इतिहासमें वह बिल्कुल नई चीज है। असंख्य युगों तक सूर्य और चाँद उगते और अस्त होते रहे, तारे रात भर टिमटिमाते रहे, पर केवल मनुष्यकी उत्पत्तिके बाद ही इनके अस्तित्वके अर्थ और महत्वको ठीक-ठीक समझा गया। नक्षत्रों और अणुकी दुनियामें मनुष्यने उन रहस्योंका आविष्कार किया है, जो आम तौरपर अबूझ ही समझे जाते थे। कला, साहित्य और धर्मके क्षेत्रोंमें कुछ मनुष्योंने अपनी प्रतिभाका ऐसा अद्‌भुत चमत्कार दिखाया है कि उसे देखकर मनुष्य-जातिकी रक्षा उचित ही लगती है।

क्या मानवका यह सारा अवदान केवल इसलिए समाप्त हो जायगा कि चन्द व्यक्ति मानव और मानवताके व्यापक हितकी दृष्टिसे न सोचकर इस या उस दलके हितकी दृष्टिसे सोचते हैं? क्या आज मानव-जातिमें बुद्धि-विवेक और निर्मल प्रेमकी इतनी कमी हो गई है, क्या आज वह आत्म-रक्षाकी सरलतम बातोंसे इतनी अन्धी हो गई है कि उसकी मूर्खतापूर्ण चतुराईके फल-स्वरूप भूमिपर सब प्रकार के जीवनका अन्त ही हो जायगा? यदि जीवनका अन्त हुआ, तो वह केवल मनुष्य-जातिका ही नहीं, उन पशु-पक्षियों और पेड़-पौधोंका भी अन्त होगा, जिनपर कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट-विरोधी होनेका आरोप नहीं किया जा सकता। मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि हमारी दुनियाका इस प्रकार अन्त हो जायगा।

खतरेकी घंटी

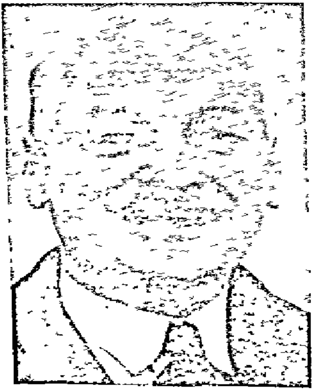
गत १४ फरवरीको लन्दनमें 'संडे पिक्टोरियल'के राजनीतिक संपादकके भेंट करनेपर नेहरूजीने कहा—"पहले की अपेक्षा मैं अब ज्यादा आशावादी हूँ कि युद्ध टाला जा सकता है। इस सम्बन्धमें हाल हीमें एक बड़ा महत्व-पूर्ण परिवर्तन हुआ है। अब सभी देशोंके जनरल युद्धको टालनेके पक्षमें हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि युद्धका परिणाम क्या होगा। वे जानते हैं कि उसमें जीत किसीकी भी नहीं होगी। मैं जानता हूँ कि ब्रिटेनमें यही मत जाहिर किया जा रहा है। रूसियोंने भी यही बात कही है। और हाल हीमें अमरीकामें जनरल मैकार्थर तकने यही कहा है। ये अच्छे आसार हैं। हाँ, कुछ राजनेता भले ही जनरलोंसे भी पीछे हों। पर हमें आशा करनी चाहिए कि वे भी इसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे। परन्तु खतरा यह नहीं है कि कोई भी पक्ष जान-बूझकर युद्ध छेड़ेगा। खतरा तो यह है कि दुनिया लड़खड़ाती हुई किसी आकस्मिक घटना अथवा अनायोजित कांडके परिणाम-स्वरूप ही लड़ाईमें न फँस जाय।"

मेरा तो यही अनुरोध है कि मनुष्य एक क्षणके लिए अपने आपसी झगड़े भूलकर जरा सोचे कि यदि वह मानव जातिकी रक्षा करता है, तो इस बातकी अधिक संभावना है कि अतीतमें उसने जो सफलताएँ प्राप्त की हैं, उनके मुकाबले में कहीं बड़ी सफलताएँ उसे भविष्यमें प्राप्त होंगी। यदि हम चाहें, तो हमारे सामने सुख, ज्ञान और बुद्धि-विवेककी दिशाओंमें असीम प्रगतिकी संभावनाएँ हैं। क्या इनके मुकाबलेमें हम सिर्फ इसलिए मौत चुनेंगे कि हम अपने झगड़ों को भूल नहीं सकते? मैं एक मनुष्यके नाते अपने मनुष्य-भाइयोंसे अपील करता हूँ कि वे केवल अपनी मनुष्यताको याद रखें और बाकी सब-कुछ भूल जायँ। यदि हम ऐसा कर सकें, तो हमारे सामने एक नया स्वर्ग दिखाई दे रहा है। यदि हम ऐसा न कर सकें, तो विश्वव्यापी मृत्युके सिवा हमारे सामने और कोई चारा नहीं है।

शान्ति या विनाश ?

क्लेमेण्ट एटली

आज हम अपने सामने एक नई दुनियाको देख रहे हैं—ऐसी दुनियाको, जिसमे हवाईजहाजोंने रक्षा-सीमाओं को वेकार कर दिया है और उद्जन-बमने अब तककी युद्ध-नीतिमें आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। आज दुनिया के सामने दो ही विकल्प हैं ' शान्ति या सभ्यताका विनाश। इस समय हम एक ऐसी दुनियामे रह रहे हैं, जो मतवादों को लेकर टूक-टूक हो रही है। पर साथ ही आजकी दुनियामें मनुष्यके पुराने शत्रुओं—भूख, अभाव और



क्लेमेण्ट एटली

गरीबी—पर विजय पानेकी सभावनाएँ भी पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक हो गई हैं।

नैतिक अनैतिकता

सबसे पहले हमें इस वातपर विचार करना चाहिए कि आज परस्पर-विरोधी विचारो और मतवादोंको लेकर दुनियाकी

नैतिकताकी किसी
उसके लिए वही सत्य और
की सरकार तय कर दे। जो
प्रचलित मान्यताओंको मानते
अपील भी की जा सकती है।
या स्तालिन उन्हे कैसे स्व
इससे और स्पष्ट हो जाती है
अथवा कानूनका कोई सच्चा अ

अभी पिछले दिनो जब
मैं चीन गया था, तो बातच
मित्रोने बताया कि यदि
करे, जो कम्युनिस्ट-पार्टीके
फैसला मान्य नही होता है।
आम तौरपर ऐसा होता नही
सरकारसे सहमत ही होते हैं
पश्चिममे अगर किसी न्यायाध
बहुत खतरनाक समझा
आश्चर्य हुआ। नैतिक
निस्ट देशोंकी सरकार और
नही डालती, बल्कि उनके अ
भी गहरा असर डालती है।

राष्ट्रके नामपर भ

दूसरा मौलिक भेद है
बलि और उसकी सब
मैं इस बातका दावा नही करत
जनतत्र एकदम निर्दोष है, क्य
रूपमें पूँजीवाद भी नैतिक
और व्यक्तिको अर्थनैतिक
सामने अपनी इच्छाकी बलि
मजदूर-दलका विद्रोह और
इसीके खिलाफ है। पर मैं
के जनतन्त्रने शताब्दियोंके

नैतिकताकी नींवपर ही आधारित है। जब मैं नौजवान था, तो जन-साधारणमें उदारवादको नैतिक मान्यताओं के रूपमें ही स्वीकार किया जाता था। इसका विरोध केवल वे लोग ही करते थे, जो पुराणपंथी थे। यद्यपि पश्चिमके विभिन्न देशोंमें जनतंत्रके अलग-अलग रूप प्रचलित हैं, किन्तु उन सबमें है वह सभ्यताके प्रकृत विकास के रूपमें ही। यह हम पिछली कुछ दशाब्दियोंमें ही देख पाए हैं कि सभ्यताका यह आवरण कहीं-कहीं जगह कितना झीना है। पर यह तो सभी मानेंगे कि पश्चिममें जनतंत्र अभी विकासके रूपमें ही है। अधिकाधिक व्यापक मताधिकार, निःशुल्क शिक्षा, समाजके आवश्यक अंगके रूपमें ट्रेड-यूनियनिज्मकी स्वीकृति आदि संपूर्ण जनतंत्रकी प्राप्तिकी दिशामें उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण कदम ही हैं।

पूँजीवादका नियंत्रण

इसके साथ ही पूँजीवादको भी कुछ तो उसकी प्रेरणासे और कुछ समाजवादी आलोचनाके कारण राजकीय कार्यों से अधिक सम्य और नियंत्रित किया जा रहा है। कई देशोंमें तो उसका रूप समाजके नियंत्रणके बहुत निकट आ पहुँचा है। लोग यह मानने लगे हैं कि न्यायकी माँग या अथवा गलतीका फैसला पंचायत और समझौते द्वारा हो सकता है। इस प्रवृत्तिका स्केंडेनेविया, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया आदिमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ है, जबकि अमरीकामें बड़ा धीमा, क्योंकि वहाँ अभी सीमान्तके भेदों का असर काफी गहरा है। जर्मनीमें भी इस प्रवृत्तिका विकास धीमा है, क्योंकि वहाँ जनतंत्र किसी प्रणालीके विकासका परिणाम न होकर प्रतिगामी शक्तियोंके विनाश के परिणामके रूपमें ही आया है। पर ध्यान देनेकी बात केवल यही है कि पाश्चात्य देशोंमें रहन-सहनके एक स्तरका विकास उदारवाद और समाजवादकी प्रेरणासे ही हो रहा है।

कट्टरताका पुलिस-राज्य

इसके विपरीत जब हम कम्युनिज्मको देखते हैं, तो पता चलता है कि वह जीवनके अनुभवोंका कोई स्वाभाविक विकास न होकर एक ऐसा कट्टर सिद्धान्त है, जिसे उसके माननेवाले जिस देशमें सत्ता प्राप्त करते हैं, उसमें बड़ी निर्ममताके साथ लागू करते हैं। यह सिद्धान्त किसी भी देशमें क्रान्ति करने अथवा स्थापित शासनको उलट फेंकनेका बड़ा कारगर हथियार है। जिन लोगोंके दैन-दिन जीवनमें कोई आशा और भविष्य नहीं, उनके लिए इसकी बहुत बड़ी अपील है। पर एक पुलिस-राज्यके सिवा इसमें और किसी तरहके जीवन-मानकी कोई गुंजाइश ही नहीं। इसकी राज्य अथवा शासनके धीरे-धीरे विलय होकर पूर्ण स्वाधीनताके विकासकी सारी मान्यताएँ मृग-मरीचिका ही साबित हुई हैं। जिन साधनोंसे कम्युनिस्ट शासन-सत्ता प्राप्त करते हैं, वे ही उनके शासनका रूप भी स्थिर करते हैं। यदि किसी भी देशमें कम्युनिज्म जनतांत्रिक परम्पराओंके स्वाभाविक विकासके रूपमें आया होता, तो शायद उसका विकास भिन्न ढंगसे हुआ होता। पर चूँकि पहले-पहल उसका रूसमें उदय हुआ, उसकी नई परम्परा यूरोपके सबसे पिछड़े हुए देशकी परम्पराके ऊपर ही बनी। कम्युनिस्टोंने जारके रूसपर अधिकार किया था, अतः उनका शासन भी वहाँ जारसे कम आततायी और आतंकपूर्ण नहीं हुआ। अपनी विदेशी नीतिमें रूसके इन नए शासकोंने भी पुराने शासकोंकी साम्राज्य-वादी नीतिका ही पालन किया। और अपने देशमें तो कम्युनिस्टोंने रूसकी पुलिस राज्यकी परम्पराको और भी कठोर और कट्टर रूप दे दिया।

सह-स्थितिका समझौता

पर आज हम सबके सामने जो स्थिति है वह यह है कि या तो हम कोई ऐसा समझौता करें कि युद्धकी नौबत ही न आये, नहीं तो सभ्यताका पूर्ण विनाश अवश्यम्भावी है। मेरी रायमें ऊपरके विश्लेषणसे यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि आततायीपन और जनतांत्रिक स्वतंत्रता में किसी प्रकारका समझौता या सामंजस्य संभव नहीं। पर इतना ही सत्य यह भी है कि इन दोनोंमें से कोई भी एक पक्ष युद्धमें विजय प्राप्त करके भी दोनोंके बीचमें भेदों की खाईको पाट नहीं सकता। तब जो एकमात्र विकल्प बच रहता है, वह मतभेदोंके बावजूद सह-स्थितिके लिए एक समझौता ही है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि इस प्रकारकी स्थिति असंभव नहीं। यूरोपके इतिहास में काफी लम्बे समय तक जनतंत्र और स्वेच्छाचारी राजतंत्र साथ-साथ रहे हैं। और जर्मनीमें तो ३०वर्षीय युद्धकी विनाश-लीलाके बाद प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक मतावलम्बियोंने साथ-साथ रहनेका ही समझौता किया था। जनतंत्र-वादी देशोंके लिए तो इस प्रकारकी स्थितिमें समझौता करना और भी अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि उनमें तो विभिन्न मतोंके लोगोंकी सह-स्थितिको सहज भावसे स्वीकार किया गया है। हाँ, अधिनायकतंत्री दलोंके लिए इस प्रकारके समझौतेके सिद्धान्तको स्वीकार करना उतना आसान नहीं। किन्तु उन्हें जर्मनीके उन कैथोलिकोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिनको प्रोटेस्टेंटोंसे कट्टर शत्रुता रखनेके बावजूद युद्धकी भीषण विनाश-लीला देखकर सह-स्थितिका समझौता

करना पड़ा था। मेरा तो यह दृढ मत है कि एक-न एक दिन कम्युनिस्टोको भी पूजीवादी मिश्रित अर्थनीतिवाले और स्वतत्र जनतन्त्रवादी देशोके साथ शान्तिपूर्वक रहनका समझौता करना पडगा। यदि इस समय युद्धको टाला जा सके तो यह तय है कि विभिन्न मतवादो और शासन प्रणालियोवाले देशोमें बढनेवाला आवागमन उनके आपसी विरोधो और भेदोको अवश्य नरम करेगा और अतत रूसको भी अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकाक्षाओ तथा गरम या ठड युद्ध द्वारा विश्व-कम्युनिज्मकी स्थापनाका विचार छोडना पडगा। हमें आशा करनी चाहिए कि शाति कालमें वह समय शीघ्र ही आयगा जब कि मनुष्य और उसकी भावनाओंको कैद करनेवाले सीखचे टूट गिरेंगे। यदि परस्पर विरोधी मतवादोमें कोई प्रति द्वद्विता रही तो वह दूसरे ही स्तरपर होगी।

सामाजिक ढाँचे और विचारोकी भिन्नता

इस सबधमें हम जो कठिनाइयाँ पेश आती ह उनपर भी भलीभाति विचार कर लेना चाहिए। स्वतत्रता और जनतन्त्रका सार ही है कि सामाजिक ढाचे और मनुष्योके विचारोकी विभिन्नता कायम रहे। यह चेष्टा करना कि सब जनतन्त्रवादी देश किसी एक देशके नियत्रण म एक सघके रूपमें सगठित हो जायें जनतत्रकी उस मूल भित्तिको ही नष्ट कर देना है जिसकी कि हम रक्षा करना चाहते ह। एक हद तक यह बात ठीक है कि कठोर अधिनायकतत्र कई मामलोमें बडा प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है। इस बातमे कोई सन्देह ही नही कि भौतिक रूपसे रूसी कम्युनिस्टोने बहुत बडी सफलताएँ प्राप्त का ह और एसा जान पडता है कि यही चीनमें भी होने जा रहा है। अगली कुछ दशाब्दियोमें ही अपन पिछड

पनके बावजूद य महान देश अमरीकाके बराबर ही हो आगे भी बढ जायँ। उस होगा? इसका एकमात्र उ अपन अस्तित्वकी रक्षा करना पुरानी सार्वभौम सत्ताकी राष्ट्रोसे अधिकाधिक नजदीक दिशामें आगे बढना होगा। नही कि सघबद्ध यूरोप भी ही एक बडी प्रतिद्वन्द्वी शक्ति आशय तो यह है कि विदेशी ज नजदीकका सहयोग-सबध हो अ एक विश्व-सहयोगकी स्थापना

लेकिन इसके लिए यह राष्ट्र सहयोगके आधारपर और दूरदर्शी राजनेताओका है को अधिकाधिक स्वतत्र शक्तिको जन्म दें। दूसरे राष्ट्रीय क्षेत्रमें है, उसीको हम मान और समूहकी आवश्य व्यक्तिकी स्वतन्त्रताओको इस दिशामें पहल भी हुई व्यापक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए पर उत्तरी अतलातिक सघ सयुक्त सघटनके रूपमें हम की सकीर्ण और पुरानी भावनाओको जन्म लेते भी देख शुभ लक्षण ही ह।

बुझ न सकेगी जीवन-बाती!

: श्री महेश

मृत्यु-जय को युद्ध मानव करता प्रशस्त अब,
और जिन्दगी स्वय मौतकी सेज सजाती।
स्वय सृजन ही महानाशका दीप जलाता,
निर्माणोका राग ध्वसके गीत सुनाता।
शस्त्रोंकी छायामें मानवता निर्भय है!
शाति युद्धसे युद्ध शातिसे मन भरमाता।
वसुधाके ही रक्त-बिंदुसे निर्मित बम्बसे,
वसुधाकी फलों भी छाती रौंदी जाती!
अतरानमें लहर-लहरमें ज्वार उठाता,
सुधा सिन्धुसे विषका सागर उमडा आता।

अणु दानव चलता
धरती तो कपती ही, न
यत्रोकी चक्कीमें पि
शस्त्रोंकी झकारोमें म
बबरता ही म न ०
युद्ध सभ्यताका रक्षक,
पूजीका पुतला
मानव बढता, मनु
लेकिन प्राचीमें नव
देख ।

फारमोसाकी लड़ाई

'भग्नदूत'

इतिहासमें कई बार बड़े-बड़े संघर्ष हुए हैं, जिनकी समाप्तिके बाद यह आशा की गई है कि अब और रक्तपात और विनाशकी वैसी पुनरावृत्ति नहीं होगी। पर मनुष्य की संकीर्ण स्वार्थपरता, लोभ और बर्बरताने इन बड़े-बड़े संघर्षोंमें छूटी हुई छोटी-छोटी बातोंको लेकर फिर नए विनाश और रक्तपातकी सृष्टि की है। ऐसा करनेवाले दोनों पक्ष सत्य, न्याय, औचित्य और ईश्वर तकको अपनी तरफ बताते रहे हैं। इस बातका ठीक-ठीक निर्णय करना तो बड़ा कठिन है—क्योंकि दोनों पक्ष उस निर्णयको सही मान ही नहीं सकते—पर इतना तो तय है कि बार-बार होनेवाले इन युद्धोंसे मानवके चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास को बड़ी ठेस लगी है। इस लड़ाकू प्रवृत्तिने उसको असाधारण ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ति, सत्ता आदिका स्वामी बनाकर अपने और दूसरोंके लिए बड़ा खतरनाक भी बना दिया है। इसीलिए आज एक स्वरसे यही पुकार सुनाई पड़ रही है कि युद्ध न हो, शान्ति रहे। पर ऐसा हो कैसे?

कम्युनिस्ट बर्बरताका उदय

इस शताब्दीका सबसे बड़ा वरदान और अभिशाप कम्युनिज्म है। वरदान इस रूपमें कि इसने मानव द्वारा होनेवाले मानवके शोषणके विरुद्ध पहली बार सफल जेहाद की और सदियोंके शोषित-पीड़ितोंको मुक्तिका एक नया रास्ता दिखाया। पर जिन्होंने यह मुक्ति प्राप्त की, वे इसके वरदानोंका लाभ न उठा सके। इसका एक कारण तो यह है कि यह मुक्ति ऐसे साधनों एवं नेताओंके तत्वावधानमें प्राप्त की गई, जिनमें मानवीय महत्ता एवं सद्विवेककी कमी थी। उन्होंने शोषकों-पीड़कोंके खिलाफ जहर उगला तथा हिंसा और बल प्रयोगको नए धर्मके रूपमें प्रतिष्ठित किया। इसको सफलता मिली, पर वह इतनी विपाक्त थी कि लाखों व्यक्तियोंकी बलि पाकर भी अभी तक उसकी मरणान्तक पिपासा शान्त नहीं हुई है। जो लोग इस प्रकार सत्तारूढ़ हुए, उन्होंने देशमें अपना जालिमाना निरंकुश शासन जमाए रखनेके लिए हमेशा बाहरी खतरेसे जनताकी रक्षा करनेके लिए पहले अपने राजनीतिक विरोधियों एवं प्रतिद्वन्द्वियोंको खत्म किया और फिर जनताकी सब प्रकारकी स्वाधीनताओंको। इस प्रकार असहिष्णुता और निरंकुश स्वेच्छाचारिताके रूपमें जैसे पुरानी बर्बरताका पुनरोदय हुआ।

यह यदि किसी देश-विशेषकी सीमाओंमें ही रहता, तब भी गनीमत था। पर इसके प्रवर्तकोंने महसूस किया कि घृणा, कटुता और हिंसापर आधारित यह अमानुषिकता एक देशमें पनप नहीं सकती, अधिक दिन कायम रह नहीं सकती। अब इसका अन्तर्राष्ट्रीय विधान बना और तथाकथित विश्व-शान्तिके महत् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हर देशमें इसका पाँचवाँ दस्ता कायम किया गया। इसका पेटेण्ट तरीका हुआ मास्कोकी देख-रेखमें हर देशमें वर्ग-संघर्षको तीव्रकर, गृह-युद्धकी आग भड़काकर, क्रान्ति का पथ प्रशस्त करना। सत्य, न्याय, अहिंसा, नैतिकता आदिको बुर्जुआ भावुकता बताकर इस बर्बरताको एक नए आदर्शवाद अथवा मानवादके नामपर प्रवर्तित किया गया। पुराने युक्ति-प्रमाणोंको खोजकर उन्हें तोड़-मरोड़कर



शान्तिके लिए संघर्ष !

और अपने पक्षमें कराकर इसकी एक ऐतिहासिक परम्परा भी खड़ी करनेकी कोशिश की गई। इसने तथाकथित नए मूल्यों एवं मान्यताओंको जन्म दिया, जिनके भाष्य भी उतने ही नए और विचित्र हुए।

दूसरे महायुद्धके बाद

पहले तो 'शान्ति और 'जन-मुक्ति' की एक नई शक्ति समझ दुनियाके बहुसंख्यक लोगोंने इस नई बर्बरताका स्वागत किया। पर ज्यों-ज्यों इसका नग्न, अमानुषिक और साम्राज्यवादी रूप प्रकट होता गया, काफी लोग इससे

सजग हो गए। इस शताब्दीकी तीसरी और चौथी दशाब्दियोंमें इसे पहले म्रियमाण साम्राज्यवादसे और फिर नवोदित फैसिज्मसे टक्कर लेनी पड़ी। फैसिज्मके विनाश के बाद इसने अपने हाथ-पाँव फिर फैलाने शुरू किए। पूर्वी बर्लिन और आस्ट्रियासे लेकर रूसी सीमान्त तकका यूरोपका सारा हिस्सा इसकी माँदमें आ गया। चीनमें च्यांगके भ्रष्ट शासनका अन्तकर यह सत्तारूढ हुआ। इसके बाद तो इसे मानो एशियामें खुला मैदान ही मिल गया। आस्ट्रिया और जर्मनीका विभाजन तो हुआ ही, पर कोरिया की 'एकता' के लिए इसने आक्रमणात्मक कदम उठाया, जो स्वतन्त्र राष्ट्रोंके सघके प्रतिरोधके कारण सफल न हो सका। कोरियके युद्ध-विरामके बाद इसने हिन्दचीनमें सिर उठाया और उसके युद्ध-विरामके बाद अब चीनके पार्श्व द्वीपोंके आक्रमणके रूपमें एक बार फिर इसने विश्व-शान्तिको चुनौती दी है। इस बीच तिब्बतको यह उदरस्थ कर चुका है और थाईलैण्ड, बर्मा, नेपाल, हिन्देशिया आदि में भीतर-ही-भीतर फैल रहा है। जिस तरह पश्चिमी यूरोपकी राजनीतिक फूट और विघटनने इसको सहायता पहुँचाई, एशियामें यूरोपीय राष्ट्रोंके उपनिवेशो और अमरीकाकी अदूरदर्शी नीतिने इसके प्रभाव विस्तारमें बड़ा योग दिया है।

फारमोसाका सवाल

जिस तरह कम्युनिस्ट चीनने तिब्बतपर अपने पुराने कब्जेका हवाला देकर उसे हड़प लिया, उसी प्रकार वह फारमोसा तथा अन्य तटीय द्वीपोंपर भी कब्जा करनेकी फिक्रमें है। ताचेन-द्वीपसमूहके यीक्यागशान द्वीपपर उसने कब्जा कर भी लिया है। जहाँ तक इसका कानूनी पक्ष है, वह चीनके हकमें है। १८९५में जापानने इसे चीनसे ले लिया था, जो १९४५में काहिरो-कान्फ्रेंसके निर्णयकेके अनुसार फिर चीनको लौटा दिया गया। पर वह चीन च्यांगका राष्ट्रवादी चीन था, जिसका अब चीन-महादेशपर कब्जा नहीं है—केवल फारमोसापर है, जो उन्हें मित्र-राष्ट्रोंकी मध्यस्थतासे मिला था। चूँकि चीनपर अब कम्युनिस्टों का कब्जा है, जो कानूनन च्यांग शासनके उत्तराधिकारी है, अतः कम्युनिस्ट चीन इनपर अपना अधिकार करना चाहता है और इसे वह अपना 'घरेलू' मामला तथा गृह-युद्ध का ही रूप मानता है। अपनी रक्षाके लिए चीन इन द्वीपो

इसे स्वतन्त्र जनतान्त्रिक राज्य
दृष्टिसे ब्रिटेनका खयाल है
दिया जाय। पर चीनको
उसका कहना है कि
होगा अमरीकी तथा
लिए खतरनाक है। और
जा सकता कि प्रशान्त-क्षेत्रमें
लिए अमरीकाके लिए भी
इसलिए आज फारमोसाको
उसका मूल आधार यही है
रक्षाके लिए आवश्यक
लेना चाहता है और अमरीका

समझौते

इस प्रतिद्वन्द्वितामें आज
कि यदि धैर्य, सयम, समझौते
लिया गया, तो यह स्थिति
विश्व-युद्धका रूप धारण
दुनियाके राजनेताओंको
यह आशका है कि यदि युद्ध
उद्जन बमोंसे मानवताकी
लैण्डके प्रधान मन्त्रीने सुरक्षा
सबसे पहले चीनके तटीय
फिर समझौतेकी बातचीत
का पक्ष भी परिषदके
अपना प्रतिनिधि
पर चीनने इस निमन्त्रणको
पर अपने जन्म-सिद्ध
लेनेके प्रयत्नको चीनके गृह
है। उसने अमरीका
जमाए रखने और उसकी
चीनके खिलाफ
घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप न
चेतावनी दी है। रूसने
कर 'अमरीकी आक्रमण'
अपील की है। इस
यह दोनोंके वक्तव्यों एव
इससे तनातनी और बढी

या हिन्दचीनका गृह-युद्ध केवल 'घरेलू' मामले न होकर अन्तर्राष्ट्रीय मामले थे, उसी प्रकार फारमोसाका प्रश्न भी एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। अत वह अकेला इसे मनमाने ढगसे सुल्झा ले, यह सभव नही। उसके और रूसके राजनेता आज जिस भाषामे बात करते हं, वह जिद, झगडे और स्वेच्छाचारिताकी बदजबान है। जितना फारमोसापर अमरीकी कब्जा होनेसे रूस-चीन अपनी सुरक्षाको खतरा समझते हैं, उनके उद्गारोंसे वही खतरा अमरीका भी समझे, तो आश्चर्यकी क्या बात है? आस्ट्रिया और जर्मनीकी एकताके सम्बन्धमें रूसका और कोरिया तथा फारमोसाके सम्बन्धमें चीनका जो रुख रहा है, उससे शान्तिपूर्ण सह-स्थितिकी भावनाका कोई आभास नहीं मिलता है। यदि यथार्थमें उसका शान्ति और सह-स्थितिमें कोई ठोस विश्वास होता, तो मनकी बात तो वही जाने, पर कम-से-कम वचन और कर्मसे वह इतना उद्धत और स्वेच्छाचारी नही हो सकता था। हिंसा, घृणा और कट्टरताने कम्युनिस्टोंके मानसको इतना कलुषित बना दिया है कि वे 'जियो और जीने दो'-जैसी किसी बातमें विश्वास ही नही करते। जिन लोगोको यह शिकायत है कि कम्युनिस्ट चीनको अबतक सयुक्त राष्ट्रसघका सदस्य क्यो नहीं बनाया गया, वे भी शायद उसके इस रुखका समर्थन नही करेंगे। दुनियाके दूसरे देशोकी बात जाने दीजिए, पर क्या स्वय चीनको भी इस नीतिसे लाभ पहुँचेगा? क्या इससे वह अधिक सुरक्षित होगा? क्या इससे उसके मित्रों और उसके साथ सहानुभूति रखनेवाले देशोकी सख्या बढेगी? उसे यह भूल नही जाना चाहिए कि जिन गैर-कम्युनिस्ट देशोंके खिलाफ वह जहर उगल रहा है, बल-प्रयोग द्वारा जिन देशोकी आशकाओको ठोस आधार दे रहा है, कमसे कम अभी कई वर्षों तक—और शायद कई पीढियो तक—उसे उनके साथ ही रहना है। इस स्थितिमें उसे बल-प्रयोग नहीं, समझौतेका रास्ता अख्तियार करना चाहिए। और यह समझौता एक-दूसरेके दृष्टि-कोणोको सहानुभूति-सहिष्णुतासे देखने और तदनुकूल पटरी बैठानेसे ही सभव है—ऐंठ, अकड, मनमानी या गाली-गलौजसे नही।

अमरीकाकी जीत या हार?

दूसरे पक्ष—जिसका सरदार अमरीका है—का रुख और रवैया भी कम खेदजनक नही है। वह भी मुँहसे तो शान्ति, सुरक्षा और जनतत्रकी स्वतत्रता-रक्षाकी बातें करता है, पर उसका आचरण इस तरहका रहा है कि इनके लिए खतरा अधिकाधिक बढ रहा है। अमरीकाने चीनके गृह-युद्धमें च्यागकी भरपूर मदद की और उसकी पराजय के बाद कम्युनिस्ट चीनको मान्यता न देकर 'राष्ट्रवादी' चीनको ही स्वीकार किया। कम्युनिस्ट-विरोध एक बात है, पर यदि किसी देशपर कम्युनिस्टोका शासन है, तो इस तथ्यकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? अमरीकामें ऐसे कम्युनिस्ट-विरोधियोकी कमी नहीं, जो यह समझते हं कि ट्रूमैन-शासनकी कमजोरी, ढिलाई और अदूरदर्शिताके कारण ही चीनमे च्याग-पक्षकी हार हुई और च्यागको भविष्यमें मदद देकर कभी फिर चीनमें शासनारूढ किया जा सकता है। इससे बढकर मूर्खता और अदूरदर्शिता की कल्पना नही की जा सकती। पहले तो ट्रूमैनकी जगह अगर आइजेनहावरका शासन भी होता और च्यागको वहीं अधिक मदद दी गई होती, तब भी वह जीत नही सकता था। च्यागकी फौजी और राजनीतिक मृत्युका कारण ट्रूमैन-शासन या अमरीकी मददकी कमी नहीं, उसकी अपनी भ्रष्टता, कुशासन और जनताके समर्थन-सहयोग तथा विश्वासको खो देना है। फारमोसा में उसे रखकर फिर किसी दिन चीनपर उसका शासन थोपनेका स्वप्न देखना न केवल अक्लका दिवालियापन ही है, बल्कि परले सिरेका पागलपन भी। राजनीतिक प्रचारवादियोंने अमरीकी जनताको यह विश्वास दिला दिया जान पडता है कि उसे सयुक्त राष्ट्रसघकी सदस्यता से बाहर रखकर और हिन्दचीनके सम्बन्धमें जेनेवामें हुई कान्फ्रेंसमें शामिल न होकर अमरीकाने कम्युनिस्ट-रूसको

फारमोसा-समस्याका शान्तिपूर्ण हल

गत ९ फरवरीको लन्दनमें फारमोसाके सम्बन्धमें पत्र-प्रतिनिधियोंके प्रश्नोका उत्तर देते हुए नेहरूजीने कहा—"मेरा अपना खयाल तो यह है कि इस तरहके मामलोमें बल-प्रयोगको हमेशा टालना चाहिए और शान्तिपूर्ण ढगसे ही समझौता करनेका यत्न करना चाहिए, भले ही इसमें कुछ समय अधिक क्यो न लगे। विभिन्न देशो—जिनमें रूस भी शामिल है—को इस समस्याको सुलझानेमें दिलचस्पी है और आशा करनी चाहिए कि शान्तिपूर्ण समझौतेका कोई रास्ता निकल ही आयगा। इस सम्बन्धमें एक सम्मेलन बुलाने तथा कूटनीतिक ढगसे बातचीत करनेके बारेमें कई सुझाव रखे गए हैं। समयानुसार इनकी अपनी उपयोगिता अवश्य है। स्वभाव या भारत और अन्यान्य देशोंके लोगोंने इस सम्बन्धमें बातचीत की और एक-दूसरेके विचार जाने। पर अभी तक कुछ भी निश्चित या औपचारिक रूपसे नहीं हुआ है।"

बड़ा धक्का पहुँचाया है। पर ठोस रूपसे न तो इसमें अमरीकाकी कोई जीत या लाभ ही है और न कम्युनिस्ट-पक्षको इससे कोई हानि ही हुई है। हाँ, उसकी इसी नीतिका परिणाम है कि कम्युनिस्ट चीनने न सिर्फ कोरिया के युद्ध-विरामकी वार्तामें ही शुरुग्रतसे ज्यादा कड़ा रुख अख्तियार किया, संयुक्त राष्ट्रसंघकी मध्यस्थताको अमान्य किया, ११ अमरीकी उड़ाकोंको खुफियागीरीके अभियोग में कैद कर लिया और ताचेन-द्वीपसमूह लेनेको आक्रमण किया, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी कम करनेकी दिशामें कोई ठोस कदम भी नहीं उठाया।

अमरीका यदि वास्तवमें युद्ध नहीं चाहता, शान्ति और समझौता चाहता है, तो उसे अपने अंधे कम्युनिस्ट-विरोधसे

कड़ी भाषा क्यों?

ब्रिटिश राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियोंकी कान्फ्रेंसकी समाप्तिके कुछ ही घंटों बाद हुए एक सार्वजनिक स्वागत-समारोहमें नेहरूजीने कहा—"सुदूर-पूर्वके मामलेको लेकर दुनियाके सामने आज एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित है।... और कुछ तो मैं नहीं कह सकता, पर इतना तय है कि यदि आप शान्ति चाहते हैं, तो युद्ध-जैसे उपायोंकी खोजमें बहुत आगे नहीं बढ़ा जा सकता। अगर आप शान्ति चाहते हैं, तो आपके उपाय भी शान्तिपूर्ण होने चाहिएं। एक बात, जो मुझे अक्सर परेशान करती है, यह है कि आजकल राजनेता बड़ी कड़ी भाषा इस्तेमाल करते हैं। शायद कभी जोरदार भाषाका इस्तेमाल उचित हो, पर उससे कोई लाभ नहीं होता। हमें सबसे प्राथमिक शिक्षा तो यह ग्रहण करनी चाहिए कि कठिन स्थितिमें हमें अपना मत शान्तिपूर्वक और बिना कड़ी भाषाका उपयोग किए ही व्यक्त करना चाहिए।"

ऊपर उठकर जरा व्यावहारिक बुद्धि और दूरदर्शितासे काम लेना चाहिए। २० वर्ष बाद सत्तारूढ हुआ उसका प्रतिगामी रिपब्लिकन-दल थैलीकी राजनीति चलाकर अपने कायमी स्वार्थोंकी रक्षाके लिए इस अंधेपनको जनतंत्र और स्वतंत्र राष्ट्रोंकी रक्षाके अभियानके रूपमें विज्ञापित कर रहा है, जिसपर अधिकांश गैर-कम्युनिस्ट जनतंत्रवादियोंका कोई विश्वास नहीं। रूस और चीनकी तथा उनके भावी कार्य-क्रमको अमरीका चाहे जितने संदेह और खतरेकी निगाहसे क्यों न देखे, पर उनके अस्तित्व और शक्ति-संचयके ठोस

वह खुद सुरक्षित एवं शान्तिसे
मात्र रास्ता शान्ति और
हो और चाहे एशिया, अगर
नहीं होनेकी बातपर उसका
मानकर चलना होगा कि उसे
रहना है, जिसमें वे कम्यु
रीति-नीति और मूलभूत
तथा मान्यताओंके सर्वथा
की दुहाई देकर उसे टालते
शकारी छायाके नीचे
नहीं है। शान्तिके लिए
जिक, राजनीतिक और
की भी जरूरत है। इस
विरोधसे मुक्त हो तथा
और दूरदर्शितासे काम
कर सकता है।

ब्रिटेन और

ऊपर हमने कम्युनिस्ट
रुख एवं रवैयेकी जो चर्चा
कह सकते हैं कि दोनों ओरके
नहीं चाहती। दोनोंके
बात भी नहीं है—यद्यपि
पूर्ण रुख है, उसका
दोनों ही समझते भी हैं
ज्यादा आज दोनोंके सामने
उस प्रतिष्ठाका, जो
झुकने तथा उन्हें शस्त्र-बल
और चीन (तथा रूसमें
लड़ाईखोर घोषित करने त
सिद्ध करनेसे बढ़ती है।
पक्षोंके विश्वासपात्र और
वे दोनोंको किसी ऐसे
सकते हैं, जिसमें प्रत्यक्ष
छेड़नेके सिवा और किसी
दोनों ही पक्ष इस मिथ्या
'समझौते' का अर्थ प्रतिप
या उसे

तक मानेगा), पर अमरीकामें उसे सही मानीमें तटस्थ या स्वतंत्र न मानकर कम्युनिस्ट-पक्षीय ही कहा जा रहा है। इसके विपरीत कम्युनिस्ट चीनको मान्यता दे तथा फारमोसा पर उसके हकके कानूनी औचित्यको स्वीकार कर ब्रिटेन किसी भी अन्य पश्चिमी देशकी अपेक्षा चीनके अधिक निकट है और साथ ही भारतकी अपेक्षा अमरीकाको भी अधिक समझता है। यों दोनों राष्ट्र दोनों पक्षोंको लड़ाईसे रोक सकते हैं, ऐसा तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर यदि ये दोनों पक्षोंको कहदें कि दोनोंने समझौता न कर युद्ध छेड़ा, तो हम उसमें शामिल नहीं होंगे, तो अमरीकाके रुखपर अवश्य कुछ असर पड़ सकता है (कम्युनिस्ट-पक्ष तो मनसे यह चाहता ही है कि स्वतंत्र जनतंत्रवादी राष्ट्रों में विघटन हो और जितने भी राष्ट्र तटस्थ रह सकें, उत्तम है!)। पर ब्रिटेन हांगकांग और मलाया आदिके अपने औपनिवेशिक स्वार्थके लिए जहाँ कम्युनिस्ट चीनको अप्रसन्न नहीं करना चाहेगा, वहाँ उसका यह भी प्रयत्न रहेगा कि प्रबल अमरीकी लोकमतके खिलाफ अमरीकासे ज़ोर देकर वह कुछ भी नहीं कहे।

किन्तु कितनी भी क्षीण और कम आशा क्यों न हो, अगर आज दोनों पक्षोंको युद्धसे विरत रखनेकी कोई संभावना ठोस रूप ग्रहण कर सकती है, तो वह इन दोनों राष्ट्रोंके समझौतेके प्रयत्नके रूपमें ही है। यदि हम युद्धकी भयानक विनाश-लीला—मानवता और सभ्यता-संस्कृतिके सर्वनाश—से बचना चाहते हैं, तो आपसी मतभेदों और विरोधोंको स्वीकार कर, उन्हें नजर-अंदाज़कर, हमें शान्तिपूर्वक साथ रहनेका ही निश्चय करना होगा—मजबूरन नहीं, स्वेच्छासे और यह समझकर कि युद्धकी महँगी मूर्खता मोल लेनेके बावजूद कोई समस्या हल तो होगी नहीं, शायद उससे किसी और भावी विग्रहके बीज ही बोए जायँ।

धमकी और सौदेकी भावना

जिस आकस्मिकताके साथ कम्युनिस्ट चीनने गत १८ जनवरीको हवाई और नाविक आक्रमणकर यीक्यांगशानपर कब्जा किया और ताचेन-द्वीपसमूहपर गोलाबारी की और जिस त्वरा एवं दृढ़ताके साथ प्रेसिडेंट आइज़नहावरने फारमोसा की रक्षाके लिए अमरीकी सैन्य-शक्तिके उपयोगके विशेषाधिकार प्राप्त किए, उससे तो एकबार यह आशंका हुई कि शायद यह लड़ाई किसी बड़े युद्धका रूप ही धारण न करले। पर विश्व और दोनों देशोंमें हुई इसकी प्रबल प्रतिक्रियाने शायद वैसा नहीं होने दिया। चीन शायद यह देखना चाहता था कि देश फारमोसाकी रक्षा-संधिके बाद अमरीका उसपर होनेवाले आक्रमणके प्रतिरोधके लिए कहाँ तक आगे आता है और कहाँ तक उसे अपने देशकी जनता तथा गैर-कम्युनिस्ट देशोंका सहयोग-समर्थन प्राप्त होता है। पर जब उसने देखा कि अमरीकी सेनेट और कांग्रेसमें डेमोक्रेटों का बहुमत होनेपर भी चीनके इस बल-प्रयोग और आक्रमणात्मक कदमके प्रतिरोधके लिए प्रेसिडेंटको अविलम्ब और सर्वसम्मतिसे विशेषाधिकार मिल गए तथा फारमोसा पर चीनका कानूनी हक मानकर भी ब्रिटेन चीन द्वारा की गई जल्दबाज़ी, बल-प्रयोग और आक्रमणात्मक कदम का समर्थन नहीं किया, तो चीन भी रुक गया। जब उसने देखा कि च्यांगकाई-शेकके इसरार करनेपर भी अमरीका पेस्काडोरस और फारमोसाको छोड़कर ताचेन तथा अन्य द्वीपोंकी रक्षाके लिए राज़ी नहीं हो रहा है और शान्तिपूर्वक ताचेन-द्वीपसमूह खालीकर बिना लड़ाईके ही उनके लिए छोड़ रहा है, तब तो उसका बल-प्रयोग भी रुक गया। पर यह कितने दिन रुका रहेगा, यह कहना आसान नहीं।

राष्ट्रीय चीन ताचेन-द्वीपसमूह खाली करनेको तो प्रस्तुत है, पर फारमोसाकी रक्षाके लिए वह उत्तरमें मीशान और क्यूमोय तथा मत्सू द्वीपोंकी रक्षाके लिए अमरीकापर बराबर ज़ोर डाल रहा है। किन्तु अमरीकाने इस सम्बन्धमें कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया है। लगता है कि इनके लिए वह अपने अस्तित्वको खतरेमें नहीं डालेगा। वह शायद ताचेन-समूहके द्वीप चीनको देकर क्यूमोय और मत्सूको भावी सौदेके आधारके रूपमें रखना चाहता है, ताकि ताचेन-द्वीपोंके बाद इन्हें भी चीनको देकर फिलहाल उसे फारमोसासे अलग रखे। अमरीका और उसके साथी राष्ट्र शायद युद्ध टालनेके इस ढंगको नापसन्द न करें, पर चीन कहाँतक और कबतक इस स्थितिको स्वीकार करेगा? परन्तु यह तय है कि इस समय विश्व-लोकमत इस बातका समर्थन नहीं करेगा कि चीन फारमोसा आदि लेनेके लिए लड़ाई छेड़े। खुद चीन को भी इस सम्बन्धमें काफी सोचना-समझना पड़ेगा।

हुकूमतका अत्याचार

श्रीमती उषादेवी मित्रा

अँधेरी रात, वृहत् जेलके अन्दर पुरातन वृक्षोपर पेचकोंकी विचित्र भीतिप्रद बोली, छटपटाहट, पत्तोंकी सरसराहट। इन सबको मिलाकर कैदियोंके मनमें कौन-सी भावना उदय हो रही थी, सो तो वे ही जाने। कोई गुनगुनाकर कुछ कहता, दूसरा उसे सुनता। दो-चार कैदी साथ बैठे अपने भाग्यकी मीमासा कर रहे थे। कुछ प्लान बना रहे थे। परन्तु प्रत्येककी दृष्टि चलती-फिरती हुई उस नवीन कारावासीपर पहुँच जाती। वह बलिष्ट युवक इन सबसे दूर सीकचेदार द्वारके निकट बैठा था। बाहरके दालानमें जलती हुई कदीलकी रोशनी उसके मुखकी कठिन रेखाओपर पडकर मुखकी कठिनता एव नेत्रोकी तीव्रताको इस प्रकार ज्योतित कर रही थी, जिससे देखने-वालोके मनमें भय और कौतुहलका उपजना स्वाभाविक-सा हो रहा था। उस आभामें क्या था, कौन जाने। पर उसने कारावासियोको आकर्षित कर ही लिया। सब-के-सब युवक कैदीके निकट पहुँचे और उसे घेरकर बैठ गए।

"भैया, आज सबेरेसे तुम यहाँ हो, भोजन तक नही किया। आखिर बात क्या है?"

उसने कोई उत्तर न दिया।

"तुम तो शिक्षित मालूम पडते हो। फिर यहाँ कैसे आए?"

युवकने उदास होकर कहा—"मैं कुछ नही जानता, माफ करो भाई। फिर भी सुनना चाहोगे? शायद हुकूमतका अत्याचार हो!"

"हुकूमतका अत्याचार?"—उन्होने गुनगुनाया—"वह कैसा?"

युवक फिर चुप हो रहा। उसे मौन देखकर कैदियोने फिर पूछा—"याने तुमने कुछ भी अपराध नही किया?"

"अपराध?"—एक नारीपर अत्याचार होते देख उसे बचाना कदाचित् अपराध हो!"

"हम अपढ तुम्हारी गोल-मटोल बातोको नही समझे।"

"यदि न समझ पाए हो, तो उसे न समझना ही अच्छा है।"

"नही, नही, हम सुनना-समझना चाहते हैं। क्या आप ` ?"

ओर मातृमन्दिर है, वह मेरे
उसमें भारतमाताकी छोटी-सी
दीवालपर तीन बडे-बडे चित्र
नही तीसरा तो अधूरा है,
पाया! उस छोटे घरमे
मेरी माँ, नवविवाहिता पत्नी
वही छोटा घर, जिसे पिताजीने
लिए दिया। अदृष्टका
मैं रहता हूँ। आजका सत्य
ढूँढनेके लिए दूसरे शहरमें जा
स्टेशनपर उतरा और तब मैंने
अत्याचार होते देखा। सुना
चीत्कारको—दर्दनाक
उससे मेरा खून खौलने लगा।
होनेके नाते। उस अत्याचारी
युवतीको उसके हाथसे बचाया
बन्दूकके कुन्दे और लाठी मुझपर
जब होश आया, तो अपनेको
हाँ, मैं अपराधी हूँ खून करनेकी
युवक चुप हो रहा। न-जाने
उसे क्या दिख रहा था।

"आप कहाँके रहनेवाले है

उसके मुखसे जैसे जबरन
एम० ए०की डिग्री बेकार ह
किसी बन्द सन्दूकमे पडी होगी।
मौन हो रहा कि प्रश्नकारीगण

(२)

भोरकी खेद-मन्थरपूर्ण वेलामें
नव-सन्देश लेकर समस्त स
था, तब एक मनुष्य गगाके
बैठा हुआ था। स्नान-यात्री
ओर बढे चले जाते। कोई

पूछा—"क्यों परदेशी, तुम यहाँ क्यों बैठे हो? कहाँके रहनेवाले हो?"

"मैं?"—देवेन्द्र विस्मित हुआ! ऐसा प्रश्न तो कभी उसके मनमें ही नहीं उठा था। सच तो है, वह है भी कहाँ का रहनेवाला? बहुत सोचनेपर भी उसे कुछ स्मरण न आया और कल द्विप्रहर जब दीर्घ दिवसके कारावाससे छुट्टी मिली तथा वह पथपर आकर खड़ा हो गया, तब भी उसके मनने उससे ऐसा प्रश्न नहीं किया। जब चलता-चलता थक गया, तो पेडकी छायामें बैठ गया। बस, सही और सत्य तो यही हैं।

नारीने उस छोटे-से उत्तरको सुनकर अचम्भेसे उसे देखा। पूछा—"तुम शायद यहाँके रहनेवाले नहीं हो। तुम्हारा घर कहाँ है, बेटा?"

"मेरा घर?" और तब देवेन्द्र अपनी स्मरण-शक्ति पर ज़ोर देता हुआ सोचने लगा मेरा घर कहाँ है, कहाँ हो सकता है? और उसने धीरेसे उत्तर दिया—'मैं तो नहीं जानता, माँ!"

मुखसे 'माँ' शब्द निकलनेके बाद देवेन्द्रकी पूर्वस्मृति अस्पष्ट होकर कुछ जागी—'माँ माँ।' इसके बाद उसकी स्मरण शक्ति विभ्रान्त-सी हो रही।

दयार्द्र स्वरमें नारीने पूछा—"क्या तुम्हें कुछ भी याद नहीं? क्या तुम्हारा कोई भी नहीं है?"

"मेरा?" और वह स्तब्ध होकर सोचने लगा, सोचता ही रह गया। क्रमश भीड इकट्ठी हो गई। नाना प्रकारके प्रश्न होने लगे। और तब कुछ उक्तियाँ उसके कानों तक पहुँची—'अरे, कोई पागल है। उसकी आँखोंको देखो, पहनाव और लम्बे-लम्बे बाल दाढी-मूँछो को देखो।'

'पागल तो है ही। चलो, चलो।'

पागल है? वह पागल है, पागल, पागल! उसके मनके प्राणमें, शिरा-उपशिराओंमें ये उक्तियाँ झंकृत होने लगी, प्रतिक्रिया होने लगी। हाँ, वह पागल है और अवश्य पागल है।

'ले पगले, यह प्रसाद खा ले!'—देवेन्द्रके सामने नारियलका एक टुकडा और पेडा रखते हुए एकने कहा।

पागल? पगला? उसने कान लगाकर इन शब्दों को सुना और उसके कानोंके पर्देमें वह स्वर भर उठा—'पागल है, पागल, पागल!' वह पागल है? 'है हीं तो!' उसके मनके प्रश्नने तुरन्त उसे उत्तर दे दिया। सबने देखा पागल सहसा उठकर भाग चला वहाँसे।

(३)

देवेन्द्र? परन्तु वह कदाचित् जगलमें जगलियोंके साथ रहते रहते अपना नाम तक भूल गया हो, तो विस्मय नहीं। नित्य प्रात उठना, साथियोंके साथ जगल जाकर लकडी बटोरना, बेचना और कभी नमक रोटी तो कभी कुछ खाकर सतोषसे अपनी पत्तोकी छावनीदार कुटियामें सो जाना। न उससे कोई कभी घरका पता पूछता, न परिचय। यों इन सब बातोंसे उसकी लुप्तप्राय स्मृति ने तो उसे बहुत पहले हीसे छुटकारा दे दिया था। अब ससारने भी उसे छुट्टी दे दी और जगलियोंके बीच कभी भी उसके पागल होनेका प्रश्न नहीं उठा।

दिवा द्विप्रहरकी कडी धूपमें उस दिन देवेन्द्र लकडी बटोरता हुआ अनमना-सा गहन वनमें चलता चला गया। जगलके बीच टूटे फूटे मन्दिरने सहसा उसकी गति रुद्ध की, और चुम्बककी नाईं आकर्षित होता हुआ वह मन्दिरके द्वार तक पहुँचा। काटोंसे उसके पैर क्षत-विक्षत हो रहे थे, धोती छिन्न भिन्न हो गई थी। मन्दिरमें वह पहुँचा, तो एक ओरकी गिरी दीवालके भीतरसे सर्पकी फुत्कार आने लगी। परन्तु वह खडा-का-खडा ही रह गया—उस अर्द्धभग्न अन्नपूर्णा मूर्त्तिके सामने। और धीरे-धीरे नहीं, सहसा ही उसकी लुप्तप्राय स्मृति जागृत हो उठी—विस्मृतप्राय उस अतीत जीवनकी। वह बड-बडाया—'यह मन्दिर, ऐसा मन्दिर मेरा है, मातृमन्दिर। और मेरी चिरस्नेही माँ, जो अपने आँचलसे सदा ही मुझे ढाँके रहा करती थी और और गायत्री—किशोरी, लावण्य-मयी, नववधू गायत्री। तीव्रगतिसे वह मन्दिरके बाहर निकला और बढा उस अधूरे चित्रकी ओर, जिसे अभी उसे पूरा करना था।

उसके साथियोंने विस्मयसे सुना कि परदेशी घर जा रहा है। सब उसे घेरकर खडे हो गए, वृद्ध कठहारा भी अपनी लडकीका हाथ पकडे उपस्थित हुआ। साथियोंने पूछा—"क्या तुम्हारा घर-बार भी है?"

'है, है, मुझे मत रोको। मुझे उस अधूरे चित्रको पूरा करना है।'

'वाह रे जानेवाला, और मेरी लडकीका क्या होगा? अगले मास तो तुम्हारे साथ इसका ब्याह होना तय हुआ है।

'मेरे साथ? और किसने कहा? मेरा ब्याह और मैं ही न जानूँ?"

"तुमसे कहनेकी जरूरत? हम लोगोंने सब ठीक कर लिया है।"

परन्तु अपनी धुनमें मस्त देवेन्द्र कह उठा—"कोई भी ताकत अब मुझे रोक नहीं सकती। अधूरे चित्रको पूरा करना है।" और तब जाते हुए देवेन्द्रपर प्रहारकी वर्षा-सी होने लगी।

एक अँधेरी रात, वर्षाका घनघोर निनाद, देवेन्द्र उस छोटी झापड़ीके दालानमें पड़ा-पड़ा उठ बैठा। वृद्ध और उसकी लड़कीकी आहट उसने ली। फिर प्रहारकी चोटको भूलकर उठा और उस घोर वर्षामें भाग निकला। मस्तककी पट्टियोंसे खून बह चला और वह भागता चला गया आगे-आगे। वह नहीं जानता कि इस निरुद्देश्य यात्राका अन्त कहाँ है! जानता केवल इतना था कि उसे अपने अधूरे चित्रको पूरा करना है और बस!

(४)

एक श्यामल सन्ध्याम मातृमन्दिरके नवनिर्मित श्वेत पत्थरका वृहत दालान, संगमरमरका आँगन और प्रकाण्ड लौहद्वार स्वप्नपुरीकी याद दिलाते और मन्दिरके बाईं ओर प्रासादतुल्य अट्टालिका ऐश्वर्यका आडम्बर दर्शाती। एक भग्नस्वास्थ्य प्रौढ़ व्यक्ति मन्दिरके लौहद्वारपर आकर खड़ा हो गया और विस्मयसे देखता हुआ किसी पथयात्री से पूछा—"भाई, यहाँ जो छोटा-सा घर और मातृमन्दिर था, वे कहाँ गए?"

"यही तो है मातृमन्दिर! लाटरीके असंख्य रुपयोंसे बहुरानीने इस प्रकाण्ड अट्टालिका और मातृमन्दिरका सुधार किया है।"

"लाटरी?"

"हाँ, हाँ, देवेन्द्रनाथ यहाँसे जाते वक्त कई टिकट खरीद गए थे।" इसके बाद दो पैसे देवेन्द्रकी तरफ फेंककर बोला—"ले भिखारी" और वह चल पड़ा।

भिखारी? हाँ, आज वह भिखारीके अतिरिक्त है भी क्या? यह सोचता हुआ वह वहीं बैठा रह गया।

कुछ देर बाद मन्दिरमें शंख, घण्टा, घड़ियाल सब साथ ही बज उठे। द्रुतगतिसे देवेन्द्र उठा और मन्दिरमें जाकर खड़ा हो गया। पुरोहितसे लेकर पके बालोंवाली माता नर्मदा तक चिल्ला उठी—"भिखारी, यहाँ नहीं, बाहर जाओ।"

देखा उसने माताकी ओर, धूप-दीप देती हुई उस गत-यौवनाकी ओर, सामनेकी दीवालपर टँगे हुए उस अधूरे

हास्यप्रद, कुत्सित हो रहा था। की मातृमूर्तिको।

"निकलो भिखारी, पसारकर देखा उसे धक्का देने

"माँ, क्या आज तुम अ रही हो?"

देवेन्द्र? माँका हृदय निरीक्षणकर देखा, फिर चोर है, मेरा देवेन्द्र नहीं है

"और तुम भी नहीं

नारीने आँखें फाड़कर बाहर जाओ!"

पास-पड़ोसके नर-नारी स्वरसे सबने कहा—"यह

धीरतासे उसने सब-कुछ पहुँचा—"माता, क्या तू भी देगी?"

परम आश्चर्यसे सबने हुए स्यूपिकृत पुष्पसे आ गिरा। और देखा के चरण-तलमें लुढ़कते हुए।

"नहीं-नहीं, इसे बाहर पड़ा रहने दो।"—नर्मदाने कैसा कर उठा।

(५)

भोर-वेलामें किसी तीव्र मन्दिरमें पहुँची। द्वार के सामने यह किस पहेली उठी हुई है! वह द कैसे पूरा हुआ? हाँ, उस भाँति जानती-पहचानती है। जो बड़े-बड़े सुडौल अक्षर परिचित है। उसने पढ़ा अत्याचार।"

देवीके पदतले मृत्यु-देखती ही रही।

केनियामें हिटलरशाही

प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

आगामी अप्रैलमें इडोनेशिया (भारतीय द्वीपसमूह) की राजधानी जकर्तामें एशियाई-अफ्रीकी देशोका जो सम्मेलन होगा, उनमें केनिया-जैसे पद्दलित देशकी गुहार कौन मचाएगा, यह हम नहो जानते। परन्तु इसकी सूचना-मात्रसे उपनिवेशवादी राज्यो और उनके पिट्ठुओ के पेटमें घोड़े दौड़ने लगे है, क्योंकि एक बार एशिया और अफ्रीकाके देश अपने हिताहितका विचार करने लग जायें और अपने मामलोमें यूरोपीय और अमरीकी घुसड-पची न होने दें, तो केनिया, मालय, मोरक्को, ट्यूनिसिया, अल्जीरिया आदि परतन्त्र देशोका उद्धार अनिवार्य है। अंगरेजोने केनियाके अफरीकियो—विशेषकर कीक्यूयू-जातिके लोगोपर जैसा अत्याचार कर रखा है, उससे यहूदियोपर हिटलरके अत्याचारोकी ही तुलना हो सकती है। हिटलरकी तरह अंगरेज औपनिवेशिक कीक्यूयू जातिका अस्तित्व मिटानेपर तुले हुए हैं। पर 'राखन-हार भयो भुज चार तो का उजरे भुज दुइके उखारे ?' वाली बात है।

केनिया कैसे गुलाम बना ?

केनिया पूर्वी अफ्रीकामें ब्रिटिश उपनिवेश है, जहाँ १८३६ में पहले-पहल अंगरेज पहुँचे थे। इसके पहले वहां अफ्रीकी लोग स्वच्छन्दतासे रहते थे। वे पशु पालते और खेती करके बहुत अन्न उपजाते थे। लार्ड लुगार्डने १८९० में लिखा था कि "कीक्यूयू देशमें सर्वत्र खेती होती है। हमने २० हजार पौंड अन्न और फलियाँ ऐसे समय सस्ते दामोपर खरीदी थी, जब कुछ ही समय पहले टिड्डी-दलका आक्रमण हो चुका था। यहांके लोगोकी सिंचाई की व्यवस्था भी सुन्दर है।" केनियामें १८८६से अंगरेजो के दल लगातार पहुँचने लगे थे। इसमें पहले ईस्ट-अफ्रीका कम्पनीने और बादको ब्रिटिश सरकारने सहायता पहुँचाई। अफ्रीकियोने इसे रोकनेके यत्न किए, पर ब्रिटिश फौजी ताकतके सामने वे कुछ कर न सके। अंगरेजोने पहले नाकेबन्दी कर दी और बादको मार-धाड शुरू कर दी। इसके बाद तो गुलामोका व्यापार रोकने के बहाने वे केनियाके मालिक बन गए।

केनियाका क्षेत्रफल २२४९६० वर्गमील है और यहाँ की भूमि ४२०९,३०० मनुष्योका भरण-पोषण करती है। यह देश ब्रिटिश सरकारका उपनिवेश और सरक्षित राज्य दोनो है। अंगरेजोका प्रतिरोध करनेके अपराधमें केनिया की ब्रिटिश सरकारने अफ्रीकी मूल निवासियोकी जमीनें जब्त करली और उनका वितरण ब्रिटिश औपनिवेशिको और कम्पनियोंमे कर दिया। अब अफ्रीकी अपनी जमीन के मालिक न रहकर रैयत रह गए। इसपर भी उनका रैयत-रूपसे भी सदाके लिए अधिकार नही रहा और ये जमीनें सस्ती दरोपर यूरोपियनोको दी जाने लगी। मई, १९०३ और दिसम्बर, १९०४ के बीचमें ईस्ट अफ्रीकन सिंडिकेट, अपलैंड्स ईस्ट अफ्रीकन सिंडिकेट और ईस्ट फारेस्ट कन्सैशनको बहुत-सी जमीनें दे दी गईं। उप-निवेश-मंत्री श्री लिटिल्टनने १६ जुलाई, १९५२ को कामन्स सभामें बताया था कि दी हुई जमीनके सातवें भागमें ही खेती होती थी। पर इस वक्तव्यमे सचाई कम ही जान पड़ती है, क्योंकि श्री आर० म्यूरने 'मार्डन कामनवेल्थ' में बताया है कि ब्रिटिश सरकारका हार्दिक समर्थन औपनिवेशिकोको प्राप्त है और उन्हे जो जमीनें दी गई है, उसकी पुष्टि साम्राज्यवादी राज्योंके साथ सन्धियोंमें की गई है।

शर्मनाक और मूर्खतापूर्ण!

गत १५ फरवरीको तथाकथित माऊ-माऊ आतंक-वादियोंकी रिहाईके लिए सरकार द्वारा घोषित शर्तोंका विरोध करनेके लिए केनियाके गोरोंने 'पार्लमेंटपर मूक चढाई' की। इसमें लगभग ७० गोरोंने भाग लिया। धारा-सभाके गोरे सदस्योंने उनका हर्षध्वनिसे स्वागत किया। चढाई करनेवालोंने केनियाके २२ हजार गोरेवासियोंके हस्ताक्षरोंकी एक फरियाद धारा-सभाके सदस्य कप्तान लिवलिन ब्रिग्जको दी, जो उन्होंने उसी समय धारा-सभामें पेश कर दी। इसमें केनिया-सरकार द्वारा माऊ-माऊ आतंकवादियोंके सामने आत्म-समर्पणके लिए रखी गई शर्तों को शर्मनाक और मूर्खतापूर्ण बतलाया गया है!

इस प्रकार जब गोरोंके पास जमीनें हो गई, तब इन्हें जोतने-बोनेके लिए मजदूरोंकी जरूरत पड़ी। इसका उपाय यह सोचा गया कि अफ्रीकियोंपर टैक्स लगाओ। ये जानते ही नहीं थे कि टैक्स कैसा होता है। इनमें टैक्स देनेकी समाई भी नहीं थी। इससे इनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। ये गोरोंके खेतोंपर काम करनेको बाध्य

हुए। इस प्रकार उन्हें सस्ते मजदूर मिलने लगे। १९२२ में जबरदस्ती काम लेनेका आर्डिनेंस बना दिया गया। एक बार लोकमान्य तिलकने कहा था कि अँगरेज अत्याचार करनेके लिए भी कानून बना रहे हैं, सो इस आर्डिनेन्ससे प्रकट हो रहा है। ईस्ट-अफ्रीकन प्रोटेक्टोरेट कमीशनके सर चार्ल्स इलियटने १९०५ मे अपनी पुस्तक 'ईस्ट-अफ्रीकन प्रोटेक्टोरेट' में लिखा है—"पूर्वी अफ्रीका शायद कुछ ही समय बाद गोरोंका देश हो जायगा, जहाँ देशी जातिके प्रश्नोंमें किसीका कोई अनुराग न रहेगा।'

श्वेत भूमिकी रक्षाके लिए लड़ेंगे!

गत २९ जनवरीको नान्यूकीमें ३०० गोरोंने सभाकर केनिया और ब्रिटेनकी सरकारोंको चेतावनी दी है कि "यदि आवश्यकता हुई, तो वे श्वेत-भूमिकी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिए लड़ेंगे। जिन शर्तोंपर १२,२३३ वर्गमील भूमि गोरोंको दी गई है, उनमें अगर किसी भी तरहका परिवर्तन किया गया, तो हम उसका शक्ति-भर विरोध करेंगे।" धारा-सभामें गोरोंके प्रतिनिधि कप्तान लिवलिन ब्रिग्जने कामन-सभामें कन्जर्वेटिव-सदस्य सी० जे० एम० एल्पोर्ट द्वारा कही गई इस बातकी निन्दाकी कि "श्वेत-भूमि एक राजनीतिक और अर्थनीतिक असंगति है। ऐसा कहकर उन्होंने इस उपनिवेशमें बसे गोरोंको उनके भविष्यके सम्बन्धमें सशंक बना दिया है। पहले भी इस प्रकारकी नीतिसे सामूहिक रूपसे गोरोंने अपने स्थान छोड़ दिए, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें कम कष्ट-कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ा। ऐसा केनियामें फिर हो सकता है।" जंगलात विभागके मंत्री लारेंस मेकोनोनी वेलवुडने कहा कि "यद्यपि सरकारने माऊ-माऊ आतंकवादियोंके आत्म-समर्पणकी जो शर्तें रखी हैं, उन्हें मैं भी स्वीकार कर चुका हूँ, तथापि मेरे खयालसे अधिक अच्छा यही रहता कि अभी वैसा न कर और भी कड़ाईसे उनका दमन किया जाता।"

विद्रोह और संगठन

मसल मशहूर है कि 'अति संघर्ष करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दनसे होई।' जो जाति जितनी ही दबाई जाती है, वह उतनी ही प्रबलतासे उठती है। जार के जमानेमें रूसी प्रजा यदि बहुत अधिक न दबाई जाती, तो कम्युनिज्मका जन्म न होता। अफ्रीकी लोगोंके खेत

कोई संगठन न था। इसके
मजदूरीमें कटौती की
इन्होंने खुल्लमखुल्ला वि॰
दमन कर दिया गया।
कटौती कैसे रुक सकती थी?
बैठे। उन्होंने ट्रेड-यूनियन
१९३४ में पूर्वी अफ्रीकाके
१९४७ मे मोमबासा
इस संघके तत्वावधानमें
सफल हुई, क्योंकि इसकी
इसके नेता चेगे च
भी हुआ। इस दमन-
पर भी पड़ा, जिनका अपना
फल यह हुआ कि ये भी अम
में अफ्रीकियों और
ट्रेड यूनियन कांग्रेस नामसे
इन श्रमिक संघोंको
समझना चाहिए, क्योंकि
नीतिक और अर्थराजन
कीकूयू जाति ही केनियामें
१९२२ में कीकूयू सेंट्रल
म एक बड़ी संस्था बनी,
प्रतिनिधि थे। इसका
में इस केनिया अफ्रीकी
के लिए अधिक सुभीते
करना, जातीय भेद भाव
देने, टाउन लैंडस
को जमीनोंका अधिकार
ने अन्तम अपनी माँगें
संघसे अपील की। इस
संसारके सामने अपनी
गोरोंकी
केनियाके
यह सीधा वार था।
इसलिए अपने इलेक्टर्स
स्मरणपत्रक सरकारको
को खातमा करनेकी माँग

सघटनोको समाप्त करनेकी माँग की। इसके प्रतिवाद-स्वरूप कैनिया लेजिस्लेटिव कौंसिलके अफ्रीकी सदस्योंने अपने वक्तव्यमें कहा कि लेजिस्लेटिव कौंसिलके यूरोपियन मेम्बरोंकी यह माँग स्वार्थसे प्रेरित है। जिसे वे केनियामें अपराध और अशान्ति कहते हैं, उसका अभिप्राय उन अफ्रीकियोंके उन सामाजिक और आर्थिक प्रश्नोंसे लोगोंका ध्यान हटाकर अपराधों और उलट-पुलट करनेवाली बातोंका अतिशयोक्त वर्णन करना है, केनिया अफ्रीकन यूनियन केनियाके अफ्रीकियोंकी एकमात्र सस्था है, उसे नष्ट करनेका प्रयत्न करना है।

स्वराज्य नहीं, प्रतिनिधित्व

केनियाके अफ्रीकी सघकी माँग अभी स्वराज्यके लिए नहीं है, अधिक प्रतिनिधित्वके लिए ही है। पर सघकी बढती हुई लोकप्रियतासे डरकर गोरोंके दबावमें आकर २ अक्टूबर, १९५२ को केनिया लेजिस्लेटिव कौंसिलने यूरोपियनोका तात्कालिक आवश्यकतावाला प्रस्ताव मान लिया। जोमो केनयाटाके मुकद्दमे और सजाके बाद भी गोरोंकी छाती ठडी नहीं हुई और उन्होंने तथोक्त 'माउ-माउ'-आतकको दबानेकी तात्कालिक आवश्यकताकी घोषणा कर दी। गोरोंका कहना है कि माउ-माउ-आन्दोलन सरकारको उलटनेके लिए है। सरकार विद्रोहका स्वप्न देख रही है और माउ-माउके दमनके नाम पर नादिरशाही या हिटलरशाही चला रही है।

कालोंके प्रति राक्षसी कर्म

ब्रिटिश उपनिवेश मत्री श्री लिटिलटनने बताया है कि १९५३ तक केनियामें १५३३३९ आदमी गिरफ्तार हो चुके हैं। कप्तान ग्रिफिथने अदालतमें स्वीकार किया है कि मैंने हर एक अफ्रीकीका वध करनेवालोको ५ शिलिंग दिए हैं, जब कि दूसरे अफसरोंने आदमी-पीछे १० शिलिंग दिए हैं। लदनवालोंको बताया गया कि अफसरोको हुक्म है कि काले आदमीको देखते ही गोली मार दो। आर० म्यूरका कहना है कि ब्रिटिश औपनिवेशिकोंने केनियामे बहुतसे सुधार किए हैं, अनेक क्रूर और बर्बर प्रथाएँ बन्द कराई हैं, स्कूल और गिर्जे खोले हैं और जीवन-यापनके अच्छे रास्ते बताए हैं। परन्तु जो वर्त्तमान कार्रवाइयाँ सरकार कर रही है, उनसे ब्रिटिश सरकारकी सबसे बडी प्रजातात्रिक सस्था होनेकी प्रतिष्ठा नहीं बढती।

केनियामें भारतवासी अँगरेजोंके पहले पहुँचे थे। वहाँकी उन्नतिका बहुत-कुछ श्रेय भारतवासियोंको है। पर वे अफ्रीकियोंके दोहन या उनपर अत्याचार करनेमें यूरोपियनोका हाथ नहीं बँटाते, इसलिए इनके कोप-भाजन हैं। एक भारतीय बैरिस्टरको केनियाकी सरकारने निकाल दिया हैं। यह स्थिति शोचनीय है। हम देखते हैं कि यह महत्ता अँगरेजोंको ले डूबेगी। इनके साम्राज्य से भारत, लका और बर्मा तो निकल ही गए है, शेष उपनिवेश भी रहते दिखाई नहीं देते। केनियामें जैसे क्रूर कार्य गोरे कर रहे है, वैसे यदि भारतमें करते, तो सारे एशियामें आग लग जाती। यदि अँगरेजोको अपना भविष्य बिगाडना नहीं है, तो राक्षसी कर्मोंका परित्याग करना ही उनके लिए उत्तम मार्ग है।

रूसी लोक-साहित्य

श्री वी० राजेन्द्र ऋषि, एम० ए०

ससारमें न केवल सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित होनेसे पहले, बल्कि लिखाईके लक्षणोंके प्रादुर्भावसे भी कई शताब्दियों पहले जगलोंमें बसनेवाले लोग गीत, कथाएँ तथा नृत्य जानते थे। मौखिक शब्द और प्राचीन कथाएँ—जो पीढी-दर-पीढी पिताके मुखसे पुत्र तक पहुँचती गई—एक प्रारम्भ था, जिससे सहस्रों वर्ष पश्चात् देवता-विषयक कल्पित कथाओ, किस्सो, कहानियों और तत्पश्चात् विज्ञान और साहित्यका जन्म हुआ। शताब्दियाँ बीतनेके साथ-साथ ये मौखिक शब्द और लोकगीतोंकी तालें आदिम-युग के जगलोंसे निकलकर समस्त पृथिवीपर बिखर गईं और भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न सस्कृतियोंका निर्माण करके मौखिक तथा सगीत-नृत्यमय लोक-रचनाओंका आधार बन गईं।

लोक-साहित्यका विकास

रूसी लोक-साहित्य पुस्तक-रूपमें आजसे केवल लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व लिखा जाने लगा और अधिकाश गीत, कथाएँ, कहावतें और बुझारतें जो आज उपलब्ध हैं, केवल उन्नीसवीं शताब्दीमें ही लिपिबद्ध हुईं। ग्यारहवीं शताब्दी से आरम्भ हुए रूसके प्राचीन इतिहासमें हमें लोक-साहित्य के कुछ नमूने मिलते हैं। उदाहरणार्थ ग्यारहवीं शताब्दी

के इतिहासने ही हमें कहावतों, कहानियों, गाथाओं और अन्य लोक-रचनाओंके उद्धरण मिलते हैं। ग्यारहवीं शताब्दीसे लेकर चौदहवीं शताब्दी तक उस समयके लोक-साहित्यके विषयमें केवल पृथक्-पृथक् तथा अधूरे प्रमाण मिलते हैं। परन्तु ये सब रचनाएँ लिपिबद्ध हुए बिना ही लुप्त हो गईं।

इसी दौरानमें रूसमें लिखाई तथा शिक्षाका आविष्कार, विकास और प्रसार हुआ। इच्छा होनेपर उस समयके अधिकांश रूसी लोक-साहित्यको लिपिबद्ध किया जा सकता था। परन्तु उस समय रूसमें लिखाई प्रधानत चर्चके ही हाथमें थी। चर्च लोक-गीतों, खेलों और रस्म-रिवाजोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता था और उनकी निन्दा करता था। ये गीत और खेल, जो मुख्यत विधर्मियों द्वारा रचे गए थे, चर्चवालोंको पैशाची और पापजनक दिखाई देते थे। इसलिए लोक-रचनाएँ लिपिबद्ध न हो सकीं।

एक कारण और भी था कि क्यों किसीने भी रूसी लोक-साहित्यके स्मारकोंको लिपिबद्ध नहीं किया। स्पष्ट रूप से उन शताब्दियोंमें प्राचीन रूसकी सब जातियोंका जीवन एक अत्यन्त व्यावहारिक वस्तुकी भाँति लोक-साहित्यसे पूर्णत ओत-प्रोत था। न तो गाँवोंमें और न ही शहरोंमें (जो उस समय बड़े-बड़े गाँवोंके ही समान थे) गीतों, कहानियों और लोक-तमाशोंके अतिरिक्त मनोविनोदकी कोई सामग्री थी। किसीके मस्तिष्कमें यह नहीं आया कि वे लोक-साहित्यकी ओर उचित ध्यान देते और उन लोक-गीतों और कहानियोंको लिपिबद्ध करना आरम्भ कर देते, जिनको वे जीवित रूपमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे-से-आगे देते जा रहे थे और जो अलिखित होते हुए भी सबको याद थे।

लोक-साहित्यका संग्रह और प्रकाशन

सत्रहवीं शताब्दीके पश्चात् लोक-साहित्य विषयक बहुतसे लेख सुरक्षित हो गए, भले ही वे प्राय फुटकर रूपमें तथा अपूर्ण थे। तत्कालीन शिक्षित लोगोंके पास कहावतोंके हस्तलिखित संग्रह थे। अधिकांश बिलोने और गीत भी लिपिबद्ध हो चुके थे। कानून-सबंधी प्राचीन रक्षा-गृहोंमें जादू-टोनोंके बारेमें पत्रक सुरक्षित हो गए। किसी 'जादुई' चिकित्सा करनेवाली बुढ़ियाको पकड़ लिया जाता और उनको तरह-तरहके दुख दिए जाते। उसका अपराध सिद्ध करनेके लिए प्रमाण-रूपमें अभियोग-पत्रके साथ जादू-

कुछ बदल गई। सरकारने
रहवीं शताब्दीके रईसोंके
मल्लाके दरबारमें भी
को देखा जा सकता था।
कलाकार मल्का
द्वितीयके दरबारमें शाही
किया जाता था। शिक्षित
प्रति गम्भीर और लगभग
चुकी थी। अठारहवीं
साहित्य-संग्रह तथा उसको
लग गए। लोक-गीत
पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित

अन्वेषण और

उन्नीसवीं शताब्दीके
साहित्य-संग्रह तथा
होने लगा। शताब्दीके
बुझारतों और अन्य लोक
शित हुए। संग्रह तथा
साहित्यके विज्ञानका भी
निक संस्थाओंने लोक
पर महत्वपूर्ण अन्वेषण कार्य
आजकल रूसमें लोक
दिया जाता है। लोक-
का कार्य सुव्यवस्थित ढंगसे
वैज्ञानिक प्रतिवर्ष अपनी
तथा व्यक्तिगत रूपसे
मास्को आदि बड़े-बड़े शहरोंमें
अजायबघर होनेके अलावा
रूपसे किया जाता है।
स्थानीय अजायबघर भी हैं

रूसी लोक-साहित्यका
है। रूसी जनता इनको
कहती है। ये पद्यबद्ध
जन्म रूसी शूरवीरोंकी
के रूपमें हुआ।
दो भागोंमें विभाजित किए

'नोवेगोरोदका बिलीना' कहते हैं। बिलीनोंमें अपने देसकी स्वतत्रता और ख्यातिके लिए लडनेवालोका वर्णन वडे आकर्षक ढगसे किया जाता है। इनमें उन कायर रईसो और रूसी कन्याज़ो (राजाओ) का मज़ाक उडाया जाता है, जो उस समय टाँगें तानकर आरामसे सोते थे, जब कि जनता शत्रुओंसे जान तोडकर लड रही थी।

रूसी बिलीनोका केन्द्रीय पात्र ईल्या म्यूरोम्येत्स है। यह शक्तिशाली बोगातीर टाँगोकी बीमारीके कारण दीवार की अँगीठीके पास तेंतीस वर्ष बैठा रहा और अलौकिक शक्ति द्वारा स्वस्थ होकर उठ खडा हुआ तथा अभूतपूर्व कारनामे करनेके लिए निकल पडा। गम्भीर और निर्भीक ईल्या चेरने गाँवके समीप तातारियोको हराता है, मूर्तिपूजक विधर्मियोको कीवसे भगा देता है, रूसी धरतीकी शान्ति-प्रिय जनताको रास्ता चलनेवाले डाकुओंसे नजात दिलवाता है और अन्य वीरताके कारनामे करता है।

एक आधुनिक बिलीना देखिए। अपनी मृत्युके पूर्व लेनिन स्तालिनको अपने पास बुलाते हैं और उनको जनताके नेतृत्वका भार सौंपते हैं। यह बिलीना इस प्रकार है :

प्रिज़ीवाल इलिच क सेब्ये दा द्रुगा स्तालीना,
गोवोरील येमू गोलोसोम ग्रौत झेलानिया पौलनोवो
—नेदौल्गी वेक तो मोये, औन कोन्चायत्सा,
स्मेरत्-तो स्कौरो मोया दा प्रीब्लीझायत्सा।
येरी, येरी दा ती ग्रोमी कल्यूची,
ज़ोलोती कल्यूची ग्रौत फर्स्येई ज़ेमेल्यूश्की,
उश कौमू, कौमू दा प्रीनीमाच देला,
वज्याच-तो व रुकी ते ज़ोलोती कल्यूची,
काक ने तेब्ये, दा द्रुगू मीलौमू,
द्रुगू मीलोमू, दा फ्स्ये वेद् वेरनौमू,
उग्रावलमायी देला, तेब्ये स्वास्तलीवो शिच,
तेब्ये स्वास्तलीवोशिच, दा दौल्गू वेकू बिच .

अर्थात् इलिचने मित्र स्तालिनको अपने पास बुलाया और अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करते हुए कहा—मेरे मन्य जीवनका अब अन्त हो रहा है। मेरी मृत्यु समीप आ रही है। लो इन कुजियोको सँभालो—सुनहरी कुंजियाँ सारी धरतीकी। और यह कार्य किसको सौंपूँ? इन सुनहरी कुजियोको सँभालनेका कार्य क्यो न तुझे, प्रिय मित्रको, हाँ प्रिय मित्रको, सबके विश्वासपात्रको, सौंपूँ। कार्य-भार सँभाल, तुम्हारा जीवन सौभाग्यशाली हो, तुम्हारा जीवन सौभाग्यशाली हो—शताब्दियो लम्बा।

चास्तुश्की

चास्तुश्की लोक-गीतोका एक सर्वप्रिय प्रकार है। यह अत्यन्त सक्षिप्त प्राय चार पक्तियोका होता है। इसे लोग बाजेके साथ चलते हुए या नाचते हुए गाते हैं। चास्तुश्कीमें अभिव्यक्त की जानेवाली भावनाएँ किसी-न-किसी कलात्मक चित्रसे मेल खाती हैं, जिनको प्राय प्रकृति से लिया जाता है। प्रफुल्लित गुलाब या अन्य फूल, ताजी और हरी घास, भाग्यशाली अनुभूतियोका प्रतीक है। मुरझाया या पाँवसे रौंदा हुआ फूल या घास, गँदला पानी, ठण्ड, बर्फ और बादलोका सम्बन्ध शोकजनक भावनाओका प्रतीक है। एक नमूना देखिए।

क्रान्ति-पूर्व रूसम एक लडकीका विवाह उसकी इच्छाके विरुद्ध किसी रईससे कर दिया जाता है। लडकी रोकर एक चास्तुश्कीमे कहती है

त्यातेन्का इ मामेन्का स्वास्तया उवावल्याइत्ये।
कौवो ल्यूब्लयू इ सोझालेयू स तेम् ने पोवेन्चाइत्ये।

अर्थात् चाची और अम्मा, सौभाग्य नष्ट कर रही हो? जिसका प्यार करती हूँ और चाहती हूँ, उसके साथ विवाह क्या नही करती?

एक और चास्तुश्कीम आजकलकी एक युवती अपने मँगेतरको सेनाम भर्ती होनेके लिए विदा करती है। वह कहती है

मीली मोये, खोरोषी मोय मी रास्ताल्यम्सा स तोबोये।
फ्स्ये नाउकी इजूचाई, कौमान्दीरौम प्रीयज़्ज़ाई।

अर्थात् मेरे प्रियतम, मेरे अच्छे, हम जुदा हाते हैं। सब विद्याएँ पढना, कमाण्डर बनकर लौटना।

बच्चोकी लोरियाँ और चिढानके गीत

रूसी लोक-साहित्यके अन्य प्रकारोके साथ-साथ बच्चो के विषयमें लोक-साहित्यकी ओर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। इस विषयमें बहुत-से सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक नमूना देखिए

बायू-बाई, बायू-बाई क नाम प्रीयेखाल मामाई,
प्रोसील-वासेन्कू ग्रौतदाई।
अ मी वास्यू ने दादीम प्रीगोदीत्सा नाम सामीम।

अर्थात् बायु-बाई, बायु-बाई, हमारे यहाँ आई मामाई। माँग रही है वास्या (बच्चेका नाम) को, हम वास्या नहीं देंगे, हमें स्वय चाहिए।

बच्चेकी चिढ

कोल्या नामके बच्चेको एक तोन्या नामकी लडकी चिढाती है.

कोल्या, कोल्या निकोलाई कोनुल शापकू ना साराई
शापका वेरतीत्सा, कोल्या सेरदित्सा ।

अर्थात् कोल्या, कोल्या निकोलाई, टोपी फेंक दी छप्परपर । टोपी चक्कर खाती है, कोल्या गुस्से होता है !

कोल्या तीन्काको उत्तरमें चिढाती है

तीन्का स्वीन्का, स पेची उपाला,
गोरशोक स्लोमाला ।

अर्थात् तीन्का सूअरी, अँगीठीपरसे गिर पडी, तोड डाला वर्त्तन !

एक बुझारत देखिए,

कूलो, कूलो, आ
जेलेनो, जेलेनो, दा ने
येस्च खवोस्त—दा

अर्थात् लोहे घोडा

एक और बुझारत देखिए,

कोन् स्तालनोये खव

अर्थात् गोल-गोल पूँछ है, चूहा नही ! (

लंका-दर्शन

श्रीमती सावित्री निगम, एम० पी०

लंका जाते समय पासपोर्ट-सम्बन्धी जाँच-पडतालके लिए हमें कुछ देर मडपम्-कैम्प नामक स्थानपर रुकना पडा । गर्मी और उमसके बाद समुद्र-तट्की शीतल हवा और हहर-हहर करते हुए नील समुद्रका सगीत हम बडा सुहावना प्रतीत हुआ । किन्तु उसके किनारेकी चमकीली और भूरी रेतीपर ज्यो ही हमने टहलनेका प्रयत्न किया, हमें लगा कि पैरोको डगमगानेवाली और कपडोको उडानवाली वह तेज हवा एक बडी वाधा है । पर वहाँसे जैसे ही हमारी ट्रेन धनुषकोटीकी ओर बढी, तेज हवा धीमी होती गई और थोडी देर बाद ही हमारी ट्रेन केवडेके हरे-भरे जगलके बीच दौडने लगी । लगभग एक-डेढ घटे सुगन्धित वायुका आनन्द लेते हुए हम फिर समुद्र-तटके निकट आ गए और गोधूलिके समय हमारी ट्रेन बिल्कुल जहाजके निकट आकर रुक गई। उस समय वहाँका दृश्य बडा मनोरम था । पूर्वीय आकाशकी अनुपम आभा नील समुद्रपर प्रतिबिम्बित हो रही थी । ऐसा प्रतीत होता था मानो अग्निके गोले की भाँति रक्ताभ सूर्यदेव अपने तापसे व्याकुल होकर स्नान करनेके लिए धीरे-धीरे नील जलमें उतर रहे हो ।

प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पन्नता

जहाजने ज्यो ही सीटी बजाई रग बिरगे कपडे पहने हुए स्त्रियाँ, बच्चे और लुगी-कमीज पहने हुए मुस्लिम और तमिल यात्री जहाजपर चढकर अपनी सीटें ढूँढने और सामान सँभालने लगे । लगभग डेढ घटे बाद जहाज लका

होते ही हमने देखा कि सुथरे गाँवोंके बीचसे द वृक्षोकी सघनता तथा हुआ । कटहल, नारियल पेडोकी दोनो ओर लम्बी होती थी । वर्षाके को देखकर कभी-कभी बरसातके बाद बगालके वर्षाके बाद धुले नीले बना-बनाकर उड रही थी । अधिकतर पक्के ही ओढनेके ढगसे भी सम्पन्नता तथा भीतरी व्यवस्था हम न्यूयार्ककी किसी ट्रेनमें चमकदार रबरका फर्श, आकर्षक थी । बाथरूम और एक कम्पार्टमेंटसे लिए सुन्दर गेलरीवाली यह प्रतीत हुई ।

भारतके

लगभग ७।। बजे हम गए । भारतीय हाई अफसर स्वागत

चाहती थी कि हम लोग लंकाकी सैरके लिए ही बिल्कुल स्वतंत्र रूपसे आए हैं पर उनकी तर्क और न्यायसंगत मांग के सामने झुकना पड़ा। उन्होंने कहा—'भारत-जैसे महान राष्ट्रकी गौरवशालिनी संसदकी आप सदस्या हैं आप इससे तो इन्कार नहीं करतीं। फिर उस हैसियतसे आपसे जो प्रश्न हम करें उनके उत्तर देनेमें आपको कोई आपत्ति तो न होनी चाहिए।' इसके बाद उन्होंने भारतकी विदेशी नीति, निकटवर्ती राष्ट्रोंसे हमारे सम्बन्ध, पंचवर्षीय योजनाकी प्रगति आदिके बारेमें कई मिलते-जुलते से प्रश्न किए। एक विदेशी पत्र प्रतिनिधिने यह भी पूछा कि लंका-सरकारने जो भारतीयोंके प्रति नीति अपनाई है उसका भारतवासियोंपर क्या असर पड़ा है। मैंने कहा—'वे खिन्न, दुखी और चिन्तित हैं और समस्याके न्यायपूर्ण हलकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

कोलोम्बोका बंदर और शहर

स्टेशनसे सीधे हम लोग इंडिया-हाउस पहुंचे। स्नान और नाश्तेसे निबटकर हम लोग शहरकी ओर निकल पड़े। कोलम्बोका कृत्रिम बन्दरगाह संसारके श्रेष्ठ बंदरगाहोंमें से एक है। प्रकृतिने तो इसका सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ा दिया है। पानीके ऊपर उठी हुई कगारोंपर खजूर और नारियलके पेड़ोंकी कतार ऐसी लगती है मानो किसी चतुर मालीने उन्हें चुन चुनकर लगाया हो। खुले आकाशके नीले चँदोवेके नीचे चमकती हुई बालू और इधर उधर बिछी हुई हरियाली कवियोंकी कौन कहे साधारण व्यक्तियोंको भी भावुकतासे भर देती है। सात समुद्रोंसे आनेवाले छोटे-बड़े जंगी और यात्री तथा माल लादनेवाले तरह-तरहके जहाज यहां रुकते हैं। विशाल और चमकीली लहरोंपर नाचती हुई छोटी नावें कभी-कभी लहरोंमें ऐसी छिप जाती हैं कि अनजान व्यक्ति उनके डूबनेकी आशंकासे घबरा उठता है।

बन्दरगाहसे लौटकर हम फोर्ट-एरियाकी तरफ बढ़े। सरकारी टूरिस्ट-ब्यूरो और शानदार ओरिएंटल होटलके सामनेसे निकलते हुए हम उस स्थानपर पहुँचे जहां सैर को आने जानेवालोंकी भीड़ और उनके रूप रंग तथा पहनाव उढ़ावकी विभिन्नता देख हम बम्बईके फोर्ट-एरियाकी याद आ गई। क्या इमारतोंकी ऊँचाई और क्या दुकानोंकी सजावट सभीमें एक विचित्रता भरी समानता नजर आ रही थी। प्रिंस स्ट्रीटकी दुकानोंसे बड़ी सुघरतासे सजे हुए हीरे-जवाहरात, पन्ने, लाल और अन्य कीमती नग तथा सच्चे मोतीके जेवर इतने मनमोहक प्रतीत होते हैं कि अक्सर लोग अपनी जेबकी शक्तिका अनुमान लगाए बिना ही चीज खरीद लेते हैं। लंकाकी कारीगरीके नमूने सिंहली तथा तमिल दुकानदारोंकी छोटी दुकानोंमें ही अच्छे मिलते हैं। कछुएकी खोपड़ी, नारियल तथा हाथी-दांत और बेंत तथा मिट्टीकी कलापूर्ण छोटी-छोटी सस्ती चीजें बड़ी सुंदर होती हैं।

सेंट पीटर्स चर्चकी ऐतिहासिक इमारत जो डच-साम्राज्यमें कौंसिल चेम्बर था एक कृत्रिम उद्यानके सामने स्थित है। इससे थोड़ा ही आगे चलकर हम लोग क्वीन्स हाउस जो क्वीन्स स्ट्रीटपर है पहुंच गए। गवर्नर जनरलका यह निवासगृह दुमंजिला बना हुआ है और छायादार घने वृक्षोंके बागमें घिरा है। प्रचलित शिष्टाचारके अनुसार हम थोड़ी देर भवनमें रुके और मेजबानकी अनुपस्थितिमें उनके ए० डी० सी० ने हमारा स्वागत-सत्कार किया। फिर हम गालफेसके सुंदर चौरस तथा हरे भरे लानकी तरफ बढ़े। समुद्रकी धवल लहरोंके मधुर संगीतसे गूंजते हुए इस मैदानमें मानो प्रकृति मुस्करा उठी है। समुद्रकी उज्ज्वल लहरें किनारोंके बार बार चरण चूमती हैं और चलनेवालोंपर नन्ही फुहारोंकी थोड़ी-थोड़ी देरपर वर्षा होती है। गालफेस होटलकी ऊंची लाल ईंटोंकी बनी हुई शानदार इमारतकी अरुणिम आभामें नीचेका हरा भरा मैदान बड़ा सुंदर लगता है। कहते हैं इस मैदानसे लंकाका सूर्यास्त सबसे सुंदर और मनोरम दिखाई देता है।

दर्शनीय स्थान और व्यक्ति

लौटकर हम लोग फिर क्वीन्स रोडपर स्थित सिनेट भवन पहुंचे। बाहरसे देखनेमें यह बिल्कुल साधारण सी इमारत दिखाई देता है। लाइब्रेरी भवन देखनेके बाद रबड़के मोटे कारपेटपर चलते हुए हम उस कमरेमें पहुँचे जहां सिनेटर्स बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। यह देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहांपर वे सभी सदस्य मौजूद थे जो कुछ दिन पहले दिल्लीमें हमारे अतिथि रह चुके थे। उनका स्नेह प्रदर्शन तथा सत्कार देख हमें बहुत आनंद हुआ। महिला सिनेटरने हमें बताया कि सीमित संख्याके बावजूद वे बड़ी सतर्कता और तत्परतासे सिनेटकी कार्यवाहीमें भाग लेती हैं। सभी सदस्योंने भारतकी आश्चर्यजनक तरक्कीपर प्रसन्नता प्रकट की। इसके पश्चात हम लोग हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्ज देखने गए। सिनेट भवनकी अपेक्षा यह इमारत काफी आधुनिक ढंगकी और शानदार है। स्पीकर तथा अन्य सदस्योंके साथ चाय-पान और बातचीतके पश्चात हम लोग फिर सिनमन गार्डन्स (इंडिया-हाउस) लौट आए। सिनमन गार्डन्सकी सुंदर चौरस सड़कें दोनों ओर लाल फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी

कनार तथा गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ और उनके सामने सुरुचिपूर्ण ढगसे ला फूलोकी क्यारियाँ और मखमली मैदान देखकर मन पूछा कि आखिर इसका यह नाम क्या पडा ? एक मार्गदर्शकने बताया कि किसी जमानेमें वहा सचमुच सिनेमनकी खेती होती था ।

भोजनके उपरान्त हम लोग विक्टोरिया पार्क देखने गए । इस सुन्दर पार्ककी प्राकृतिक शोभा देखने लायक है । जगह जगह वलमें बने हुए कुजोमें चहकने-फुदकने वाली सुन्दर चिडिया और तितलियाँ बडी ही आकर्षक प्रतीत होती है । कोलम्बोका टाउन हाल भी काफी विशाल सुन्दर और आधुनिक ढगसे बना हुआ है । इसे देखनेके बाद हम लोगोने आर्ट गैलरीमें एक गुजराती नवयुवक कलाकार द्वारा आयोजित चित्र प्रदर्शनी देखा । आर्ट गैलरीके पास ही म्यूजियमका एक बडी शानदार इटैलियन ढगपर बनी हुई इमारत है । इसमें अन्य कलापूर्ण वस्तुओंके साथ ही प्राचीन कैंडी नरेशोकी तलवार भी रखी है ।

एक छोटे द्वीपके ऊपर स्थित यहाकी लाइब्रेरीमें सब प्रकारका सिंहली भाषाका प्राचीन एव नवीन साहित्य इकट्ठा किया गया है । रेड एवन्यू और हैवलोक रोड होते हुए हम लोग प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर अशोका रमया देखने गए । यहाकी गौतम बुद्धकी मूर्तिया बहुत ही विशाल चमत्कार और कलापूर्ण है । इस मठमें अशोकके पुत्र महेन्द्रकी भी मूर्ति है । कोलम्बोमें पाटाहके बाजारकी तुलना हम दिल्लीके चादनी चौकसे अथवा आगरेके किनारी बाजारसे कर सकते है । ह्वलानी बलखाती हुई केलानी नदीपर बना हुआ विक्टोरिया-पुल शायद लकाका सबसे बडा पुल है । कोलम्बोसे आठ मील दूरीपर स्थित माउण्ट लैविनियाका सुन्दर पर्वत-श्रृखला लकाके बडे ही रमणीक स्थानोंमें से है । रामकृष्ण मिशन लकामें भी भारतकी तरह ही अपने सेवा कार्यके लिए प्रसिद्ध है ।

शामको हम इण्डियन मर्कन्टाइल एसोसियेशन तथा सीलोन डेमोक्रेटिक कांग्रेसके मित्रोकी चाय-पार्टियोमें जाना पडा । बारी-बारीसे हम उनका स्नेहपूर्ण आतिथ्य स्वीकार करके लौट आए क्योंकि उसके बाद ही हमें लकाके प्रधान मंत्री द्वारा दिए गए प्रीतिभोजमें भी जाना था । भोज बहुत ही शानदार और तडक-भडकवाला था । टम्पल ट्रीजका सजावट और रोशनीकी छटा अनुपम था । प्रधान

मिला । सिंहली स्त्रियाँ
कुल्लूके नाकनक्श-सी ठोडा,
समय हँसनेको तैयार श्वेत
और आकर्षक प्रतीत होता

•

दूसरे दिन प्रात काल
धानी अनुराधापुरके लिए
वृक्षोकी कतारके बीचमें
वृक्षोंपर लिपटी हुई काला
कोकोके सुन्दर फलोसे लदी
होती थी । सडकके
और उनके चारो ओर
नारियलके बगीचोको
मानो हम लोग कोचीनके
जा रहे है । प्राकृतिक
गावोंके लोगोके रहन ८
कि लगभग हर १०वें
अथवा बौद्ध है । गावोंके
सुन्दर और समतल है ।
सामान बडे सुन्दर ढगसे

अनुराधापुरमें बौद्ध
मठोंके अवशेष हम बौद्ध
दिलाते है । पालोनरुवा
जाना था । रग बिरग
सराहना करते हुए हम
तालाबके पास पहुँच गए ।
मूर्तिया एक ही चट्टानकी
लेटी हुई मूर्ति सबसे
रगीन रेशमी साडिया और
स्त्रियाँ और लुंगी-कमीज
सुड विशाल बौद्ध वि
पूजन आते है । विशाल
स्नानागारके घुमावदार
अनुमान लगाते है कि यह
के ऐतिहासिक विद्यालयकी

पालोनरुवाके ८
एलिजबेथ ठहरी थी हम

कवितामयी अँगरेजीमें उसने उन वार्तालापोंको दोहराया, जो रानी एलिजबेथ, मिसेज पंडित तथा पंडित नेहरूसे हुए थे। चलते समय बड़े अधिकार एवं स्नेहपूर्ण ढंगसे उसने हमारी सारी तैयारीकी ओर आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"आप भारतीय लोगोंके प्रति मेरे हृदयमें बड़ा प्रेम और श्रद्धा है। मैं एक दिन भारतवर्ष जरूर जाऊँगा और पंडितजीके दर्शन करूँगा।"

गुनाहोंकी यादगार

लगभग ४० मील लगातार घने जंगलोंके बीच चलनेके बाद हमें एक बहुत बड़ी कमलके फूलोंसे भरी हुई झील दिखाई दी। पर झीलपर न रुककर जब हम लोग एक अजीब भोंडी-सी चट्टानकी तरफ बढ़े, तो मैंने मार्गदर्शकसे पूछा कि हम लोग इधर क्यों जा रहे हैं? उसने कहा—"प्रेम और त्यागकी यादगारें तो आपने बहुत देखी होंगी, पर गुनाहोंकी ऐसी अनोखी यादगार दुनियामें शायद ही कहीं होगी, जैसी आप देखने जा रही हैं।" और एक ठंडी साँस लेकर वह फिर बोला—"पापियोंको उनके पापका असली दंड उसी समय मिलता है, जब उनकी आत्मा उन्हें खुद धिक्कारती है। और जब पापोंकी भयानक छाया उनके सिरपर सवार होकर उन्हें बेचैन करती है। फिर भयभीत होकर वे इधर-उधर छिपते फिरते हैं। पर उन्हें कहीं चैन नहीं मिलता। तभी तो पितृघाती राजा कश्यप अपने पिता धातुसेनका वध करनेके पश्चात् इसी घने खतरनाक एवं भयानक जंगलमें छिपनेके लिए आया था। उसने यह शेरकी शक्लकी जगह, जिसका नाम सिगरिया है, बनवाई थी। चलिए, देखिए।" चूने और ईंटके बने हुए पंजोंकी बगलसे पूँछके आकारकी सीढ़ियोंपर चढ़ते-चढ़ते हम काफी ऊपर पहुँच गए। जहाँपर पहाड़ी चट्टानका निचला हिस्सा बहुत ही चिकना और चमकदार है और उसपर रंग-बिरंगे बड़े सुन्दर अनेक चित्र बिल्कुल अजन्ता-एलोराकी गुफाओंके समान ही कलाकारितापूर्ण ढंगसे बने हैं। पहाड़ीके ऊपर ही तालाब, पानी जमा करनेका स्थान, अदालत तथा दरबारके भवनोंके अवशेष आश्चर्य-चकित कर देते हैं। सबसे ऊँची मंजिलपर रहनेके भवन हैं।

सिगरियासे १० मील चलनेके पश्चात् हम दम्बुलाके दर्शनार्थ-मन्दिरके निकट पहुँच गए। श्वेत कमलके फूल तथा नारियलकी छोटी दुकानोंमें भक्तोंकी भीड़ लगी थी। वहीं कोई यजमान बौद्ध भिक्षुओंको भोज दे रहे थे। ढालू पर्वतपर काफी कठिन चढ़ाई तथा ऊपरसे कड़ी धूपके बावजूद सैकड़ों सिंहली स्त्री, पुरुष और बच्चे काफी ऊँचाईपर स्थित लगभग १५० बौद्ध प्रतिमाओंके दर्शनार्थ बड़ी श्रद्धापूर्वक जा रहे थे।

कैंडीकी प्राकृतिक छटा

मन्दिर देखनेके पश्चात् हम लोग कैंडीकी उस सुन्दर नगरीकी ओर चले, जिसकी प्राकृतिक छटा, अद्भुत वनस्पतियों और मनोहर झीलोंके कारण लोग उसे 'एशियाका जिनेवा', 'लंकाका कश्मीर' तथा 'पृथ्वीकी इन्द्रपुरी' कहते हैं। हरे-भरे विस्तृत कुदरती लानों और कल-कल करती सुन्दर छोटी नदियोंमें नहाते हुए हाथियोंके समूहोंको देखकर मन बड़ा प्रफुल्लित हुआ। स्वच्छ आकाश और चमकते हुए सूर्यकी पूरी उपेक्षा करती हुई नरम लहलहाती पत्तियाँ चमक और आकर्षणमें फूलोंसे होड़ लगा रही थीं। घासपर खिले हुए फूल देखकर कभी-कभी यह भ्रम हो जाता था कि शायद वे किसी अनाड़ी मालीसे तोड़ते समय बिखर गए होंगे।

उस दिन हम लोग कैंडीके राजाके सुपुत्रके भोजनपर आमन्त्रित थे। उनके यहाँके शाही रिवाजके अनुसार हमें तीस प्रकारके पकवान खानेमें दिए गए। लंकामें पहली बार हमें सिंहली सभ्यता और रीति-रिवाजोंका मधुर परिचय यहाँ हुआ। सबसे अधिक प्रसन्नता और आश्चर्य हम इस बातपर हुआ कि सिंहली तरकारियाँ बनानेका ढंग और स्वाद उत्तर-भारतसे बिल्कुल मिलता-जुलता है। इतनी समानता तो दक्षिण और उत्तर-भारतमें भी नहीं है। खानदानी इज्जतपर मर मिटनेकी आदत, अपने पहनाव और रहन-सहनके ढंगपर गर्व करनेकी बान और मेहमानोंके स्वागतार्थ दिखाई जानेवाली तत्परता सभीमें भारतीयताकी अद्भुत छाप थी। इसकी चर्चा जब मैंने अपने मेजबानसे की, तो वे हँसकर कहने लगे—"आपका कहना ठीक है। हम लोग उत्तर-भारतीयोंके ही वंशज हैं।" उन्होंने कैंडीके नर्तकोंके नृत्यका भी आयोजन किया था। उनका नृत्य भी कत्थक-नृत्यसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। नर्तकोंका अद्भुत अभ्यास, भावपूर्ण मुद्राएँ और आकर्षक वस्त्र सचमुच अद्वितीय थे।

निःशुल्क शिक्षा-व्यवस्था

कैंडीके चीफसे विदा लेकर हम लोग वहाँका विश्व-विद्यालय देखने गए। विश्वविद्यालयके भवन आधुनिक कारीगरीके अत्यन्त शालीन और भव्य नमूने हैं। छः-सात फर्लांगके दायरेमें बनी हुई सुन्दर इमारतें भीतरसे भी उतनी ही सुरुचिपूर्ण थीं। सभी आधुनिक फर्नीचर तथा रबरके कार्पेटोंसे कलात्मक ढंगसे सजाई गई थीं। हर विद्यार्थीको एक ड्राइंग-रूम, एक बैड-रूम तथा बाथरूम

मिला हुआ है। रसोईघरोंमें कहीं घी या तेलका निशान नज़र नहीं आता। सारा भोजन बिना हाथसे छुए वैज्ञानिक यन्त्रोंकी सहायतासे बनता है। आलू छीलने तथा रोटी बेलनेकी भी मशीनें हैं। विद्यार्थियोंके रहन-सहनका स्तर इतना ऊँचा देखकर मन पूछा कि आखिर इतनी शानदार व्यवस्थाके लिए प्रतिमास कितना खर्च करना पड़ता है? तब एक प्रोफेसरने बड़े गर्वसे कहा— मुझे यह बतानेमें बड़ा हर्ष हो रहा है कि लंकामें प्राइमरीसे लगाकर यूनीवर्सिटी तक सारी शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। सारे खर्चेकी जिम्मेदारी सरकारपर ही है।"

पदनियाँ गार्डन

यूनीवर्सिटी देखनेके बाद हम लोग पदनियाँ गार्डन देखने गए। करीब डेढ़ मीलके दायरेमें फैला हुआ यह बाग संसारके श्रेष्ठ उद्यानोंमें एक कहा जा सकता है। इसकी निगरानी इतने अच्छे ढंगसे की जाती है कि पूरा बाग सुरुचिपूर्ण ढंगके अद्भुत फूलोंसे भरी हुई अनुपम आकृतियोंकी सुंदर क्यारियोंसे सजा हुआ है। बागमें सारे गरम मसालों जायफल, जावत्री लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी तथा कुनैनके वृक्षोंकी पत्तियाँ और फल देखनेको मिले। पैदल चलते चलते थक जानेके कारण हमने फिर मोटरमें ही चलना शुरू कर दिया। बागके अन्दर ही बड़ी सुहावनी झीलें हैं। हमारे मार्गदर्शकने बताया कि यहाँ दुनियाके सभी गरम देशोंके वृक्ष मँगाकर लगाए जाते हैं।

हमें उसी दिन कोलम्बो लौटना था, इसलिए वहाँका प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर 'टैम्पल आफ् द टूथ' देखकर, जिसमें बड़े कीमती और भारी सोनेके अनेक डिब्बोंको खोलनेके बाद पुजारीने हमें कुछ हड्डीके टुकड़े और एक पन्नेकी तेलकी काफी बड़ी शीशी दिखाई। यह सामान करोड़ोंकी कीमतका है। मन्दिरके नीचेसे एक बड़ी सुरंगसे होकर भिक्षु लोग भीतर-ही भीतर पीछेकी ओर स्थित तालाबमें स्नानके लिए जाते थे। यहाँ प्राचीन बौद्ध ग्रंथोंका बड़ा अमूल्य संग्रह भी है।

सामाजिक समानता

लंकामें अधिकतर लोग मांसाहारी हैं। बौद्ध धर्मको माननेवाले भी स्वतंत्रताके साथ सभी कुछ ग्रहण करते हैं। अदालतोंका कार्य तथा राज्यका कार्य सब अँगरेजी

में होता है। सिंहली
समझी जा सकती है,
अँगरेजी और फ्रेंच शब्द
प्रयोगमें लाए जाते हैं।
प्रभावित होनेके कारण
समान उतने
पुरुषोंको समान रूपसे
की स्वतन्त्रता है।
दिया जाता, इसलिए
सामूहिक नृत्य तथा
फैशन है। स्वतन्त्र और
वैवाहिक जीवनका विशेष
स्वाभाविक ही है।
तथा सामाजिक अधिकार
जिक कुरीतियाँ तथा
महिलाएँ बड़ी कुशलता
सेवा करती हैं। लंका
भी शिक्षा प्रसार,
के शिक्षण तथा शाक-स
ही सराहनीय कार्य कर
हुए सस्ते भोजनगृह तथा
भी अवसर मिला।
कुशलतापूर्वक सेवा-शु
सहायता की जाती है।

लंकाकी

लंकाका हालचाल
स्वागतके लिए अधीर बूढ़
लंकामें निजी उद्योग
और आवश्यक सामान
प्रकृति-माँ हमपर बड़ी
रबर और गरममसाले ही
से हम बिना माँ सब
हुए भी हमें कोई अभाव
कि लंका अपने आकर्षक
वनस्पति-परिवार तथा
एक दर्शनीय स्थान है।

सुनीति

श्रीमती विमला लूथरा

सुनीति मिश्राका नाम तो आपने जरूर सुना होगा। वही न लबी, पतली, गोरी-सी लडकी, जिसके सौंदर्य की चर्चा दूर-दूर तक थी। परतु अब तो इस बातको भी कोई पद्रह वर्ष हो गए। तब मैं इलाहाबादमें कालेज में पढती थी—सुनीति हीके साथ; एक ही क्लासमें। होस्टलमें भी हमारा कमरा बराबर-बराबर ही था। मुझे अब तक याद है सुनीति कैसी आकर्षक थी। देखनेमे तो सुन्दर थी ही, पढने-लिखनेमें भी दक्ष और बातचीत करनेका ढग इतना सरल कि जिससे बात करती, उसीको मोह लेती। ऐसा अनोखा सयोग था सब गुणोका उसमे।

प्रोफेसर लोग उसे घर बुलाती, पढनेको किताबे देती। सुनीति भी उनसे खुलकर बातचीत करती, जब कि हम लज्जाके कारण झिझकती रह जाती। सप्ताहमें दो बार हमें सध्या समय होस्टलसे बाहर जानेकी छुट्टी मिलती थी। हमें समझ ही न आती कि कहाँ जायें, क्या करें? कभी महीनेमें एक-आध बार सिनेमा देख आए या बाजार तक घूम आए। किन्तु सुनीतिको फिरने-फिरानेसे फुरसत ही न होती। उसके लिए यह दो दिन भी कम थे। बहुधा कोई-न-कोई बहाना करके वह एक-आध दिनकी छुट्टी और मार लेती। इन सब बातोके कारण हम सुनीतिसे जला करती। मुझे याद है कि हम लोग ईर्ष्या, जिज्ञासा तथा द्वेषसे प्रेरित होकर उसकी हरएक गतिको यूँ चौकस होकर देखा करती, मानो हमें सी०आई०डी०का काम सौंपा गया हो। और सुनीति बिलकुल बेधडक बिना किसी हिचकिचाहटके जो जीमें आता करती। जब बाहरसे लोग मिलने आते, व उसके लिए उपहार लाते व उसे मोटरोंमे घुमाने ले जाते, तो हमारी छातीपर मानो साँप लोटने लगता। हमारा भी जी चाहता कि हम भी कहीं आयें-जायें, घूमें-फिरें, मिलें-मिलायें, परन्तु इतना साहस कहाँसे लाती? अत हम बैठी सुनीतिके चाल-चलनकी निंदा करती न अघाती। "देख लेना इसका अत बुरा होगा।" हम सब कहा करती—"किसी दिन पछतायगी।" फिर जब वह रातको हँसती, खिलखिलाती, बातें करती लौटती, तो जैसे हमारे घावोपर कोई नमक छिडक देता। हमें अच्छा भला मालूम था कि वे नवयुवक, जिन्हें वह अपने ममेरे-चचेरे भाई बताती है, उसके भाई नहीं है, वे उसके मित्र हैं और इसीलिए जब-जब वह उनके साथ घूमने जाती, तो हम तरह-तरहकी कल्पनाएँ किया करती। आए दिन नई सूरतें दिखाई देती, नई मोटरें आती, उसके कमरेमे सुन्दर-सुन्दर फूल होते और तरह-तरहके इत्तर, पाउडर, क्रीम इत्यादि इतनी छोटी-छोटी चीजें, जिनकी कोई गणना ही न थी। हमें दुख होता कि अच्छे-भले घरकी लडकी कैसे अपना जीवन नष्ट कर रही है।

किन्तु सुनीतिपर हमारी इन बातोका कुछ असर नही हुआ। युनिवर्सिटीकी परीक्षामें भी वह अच्छे नवर लेकर पास हुई—उन लोगोसे बहुत अच्छे, जो यह समझकर दस-दस, बारह-बारह घटे पढती थी कि जितना परिश्रम किया जाय, उसीके अनुरूप परीक्षा-फल भी अच्छा होगा।

बी० ए० पास करके मैंने तो कालेज छोड दिया और घरके काम-काजमे माँका हाथ बँटाने लगी। सुनीति एम० ए० में दाखिल हो गई। कहते हैं कि उसके माता-पिताकी बहुत इच्छा थी कि सुनीतिका विवाह कर दिया जाय। अच्छे-अच्छे लडके भी मिल रहे थे, परतु सुनीति ने उनकी एक न सुनी। और सुनती भी क्या, एम० ए० की लडकियोको तो कालेजमें और भी स्वतन्त्रता थी। लडके-लडकियोकी शिक्षा एक साथ होती थी। हास्टल के नियम भी इतने कडे न थे। परिणाम यह हुआ कि सुनीति स्वच्छदतासे घूमने-फिरने लगी।

जब भी हम दो-चार लडकियाँ कही मिल बैठती, तो सुनीतिकी ही चर्चा होने लगती। आज उसकी एकके साथ मित्रता है, तो कल दूसरेके साथ। एक रात उसे सिनेमा में देखा गया, तो दूसरी रात कही और। हम लोग उसकी दुष्कीर्तिका वर्णन करती और सोचती कि इस लडकीका भविष्य क्या होगा? कालेजवाले उसकी इन हरकता को कब तक चुपचाप देखते रहगे? इस तरह तो कालेज के बदनाम होनेकी सभावना है। कही युनिवर्सिटीके अधिकारियोने उसे निकाल बाहर किया, तो क्या करेगी?

परतु जो हुआ, वह इन आशकाओंके बिलकुल विपरीत था। एम० ए० पास करते ही सुनीतिको विदेश जानेके लिए छात्रवृत्ति मिल गई और वह दो वर्षके लिए विलायत चली गई। जब कभी मैं इस बातका ध्यान करती कि सुनीति-जैसी लडकीने, जिसका यहाँपर यह हाल था, विलायत के स्वच्छद वातावरणमें पता नहीं, क्या-क्या गुल खिलाए होंगे, तो शरीरमें एक कँपकँपी-सी दौड जाती। न मालूम

ऐसी लडकियोको देखकर वहाँके लोग हमारे आचरणके बारेमें क्या सोचते होंगे ?

(२)

सुनीतिके भारत लौट आनेकी खबर मैंने सुनी थी और जी चाहता था कि उसे देखूँ—विलायतके नाच, शराब तथा रँगरलियोका उसपर कैसा कुप्रभाव पडा होगा ? वह दिन मुझे जीवन-भर नही भूल सकता, जब मेरी सुनीतिसे कनाट प्लेसमे अकस्मात भेंट हुई । मेरा विवाह दिल्लीमें हुआ था और कुछ सालोसे हम वही रहते थे । मईका महीना था और सध्याका समय । मैं कुछ चीजे खरीदने निकली थी । गर्मीसे व्याकुल, पसीनेमें तर-बतर, एक हाथमें खिलौनाके लिए रोती हुई मुन्नीकी अँगुली पकडे, दूसरेमें चीज़ोका बडा-सा थैला उठाए मैं कुछ झुंझलाई हुई-सी चली जा रही थी, जब कि मैंने सुनीतिको सामनेसे आते देखा—वैसे ही प्रफुल्ल, सजीव, उत्साह-युक्त, जैसे वह पहले थी । यदि कोई अन्तर था, तो यही कि वह अधिक सुन्दर लग रही थी । बाल कटा लिए थे । मेक-अप किया हुआ था, मानो विलायत जाकर उसकी रमणीयता और भी निखर आई हो । कोई विशेष बातचीत नही हुई उससे । ऐसे ही हैलो-हैलो, कैसी हो इत्यादि । और बातें होती भी क्या ? ऐसी प्रगाढ मैत्री तो थी भी नही कभी उससे, परतु जितनी उदास और खिन्न-चित्त मैं उस दिन घर लौटी, बता नही सकती । कितना अतर था उसमें और मुझमें ! पिछले चार सालसे, जबसे मुन्नी पैदा हुई, मैं बराबर मोटी होती चली जा रही थी । इनकी नौकरी भी कुछ खास अच्छी न थी । हाथ तग रहता था । घर के काम-काजमें ही दिन बीत जाता, अपनी देख-भाल करने को अवकाश कहाँ ? और उधर सुनीति थी वैसीकी वैसी, वही आकर्षण, वही रूप, वही लचक, वही मुस्कुराहट । उस रातको मैं खूब रोई । क्या सदाचार और शिष्टाचार सचमुच गर्व करनेकी बातें हैं या केवल मिथ्या मध्यवर्गीय रूढियाँ ?

दुनियाकी जबान तो कोई रोक नही सकता । वह तो चलती ही रही, पर सुनीतिके कानपर जूँ तक न रेंगी । वह अपनी विलासितामें मस्त थी । क्लब, डान्स, काकटेल-पार्टियाँ, रेस्तराँ—यही उसका जीवन था । उसे इनसे फ़ुरसत कि स

फिर भला उसे मान-
होती ?

कनाट प्लेसकी भेंटके
सुना कि उसे बबईकी
मिल गई है । तब हम ल
करना छोड दिया, क्योंकि
सुनीति आर्थिक, सामाजिक
बढती जा रही थी । मुझे
चार, सद्व्यवहार, पुण्यश
बातें हैं ।

धीरे-धीरे मैंने सुनी
दिया, क्योंकि जब भी
मुझे अपनेमें न्यूनताका
होता । अच्छा ही हुआ f
जानेके साथ-साथ मेरे ज

कहते हुए लज्जा आत
मैंने उस दिन जब सुन
दरवाज़ेके बस-स्टापपर
हाँ, सुनीति ही तो थी वह,
न थी । उसकी सूरत
थकी हुई, उदास तथा
मुखकी रेखाएँ भी कुछ कड
थीं । न वहाँ उसके लिए
छैला । आवाज़में भी
बात करना चाहा, परतु

पूछ-ताछ करनेपर
लौट आई है । इतनी
लौट आई, मुझे आश्चर्य
क्यों छोडने लगी ? हो
है । छोड देनेका तो द
व्यवहार देखकर कपनी
कही वह फँस तो नही गई
मुहल्लेवाली राधाकी याद
अपने मामाके लडकेकी
भुगतना पडा था उसे

करना चाहे और उसे भी वांछित पुरुषकी प्रतीक्षा करनी पड़े। कितने आश्चर्यजनक हैं ये पुरुष! जिन लड़कियों को साथ लिए इधर-उधर घूमते-फिरते हैं, उनसे विवाह नहीं करना चाहते! पत्नी-रूपमें एक-दूसरे ही ढंगकी सीधी-सादी, भोली भाली युवती चाहते हैं।

मेरे मनमें सुनीतिके प्रति कुछ संवेदना-सी जागृत हुई, पर बहुत देरके लिए नहीं, वह थी भी अनावश्यक। सुनीति का सितारा अभी ऊँचा ही मालूम देता था, क्योंकि थोड़े ही दिनोंके बाद सुननेमें आया कि रमेशचन्द्र नामक केन्द्रीय सरकारके एक बड़े अफसर सुनीतिसे विवाह करनेवाले हैं। रमेशचन्द्रकी सुनीतिसे क्लबमें पहली बार भेंट हुई और उसे देखते ही उनके हृदयमें उसके लिए अनुराग पैदा हो गया। उनके मित्रोंका विचार था कि शीघ्र ही वे सुनीतिसे विवाह का प्रस्ताव करेंगे। मुझे फिरसे डाह होने लगी। मेरे अंदर फिरसे ईर्ष्याका ज्वार आया। तो क्या सुनीतिका भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल होगा, उतना ही सुखमय, जितना कि उसका विगत जीवन? मुझे क्रोध आया, पर मेरे क्रोध करनेसे क्या होता?

एक दिन मैं खाना खाकर दोपहरको आराम कर रही थी, जब मालतीने आ जगाया। मालती हमारी कालेज की सहेलियोंकी टोलीमें थी। वह भी दिल्ली ही में रहती थी। अतः हम जब कभी मिलतीं, तो बीते दिनोंकी बात करना कुछ स्वाभाविक-सा होता। उस दिन वह काफी उद्विग्न-सी थी। आते ही बोली—"सुना सुनीतिको क्या हुआ?

"विवाह हो गया होगा और क्या?"—मैंने हँसकर कहा

"नहीं, नहीं हुआ न, यही तो बात है!"

"क्यों, क्या रमेशचन्द्र चकमा दे गए? —मैंने पूछा।

"नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता।" और मालती ने सारी कहानी कह सुनाई। रमेशचन्द्र क्लब तो रोज जाता ही था। एक दिन बाहर लाउंजमें बैठनेकी बजाय अंदर बारकी ओर बढ़ गया। वहाँ दो पुरुष बैठे ह्विस्की पी रहे थे। रमेश भी अपना गिलास लेकर साथवाली मेजपर बैठ गया। वे दोनों अपनी किसी पुरानी प्रेमिका की बातें याद कर-करके हँस रहे थे। रमेशचन्द्रने पहले तो उनकी बातोंपर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया, किंतु जैसे ही सुनीतिका नाम उसके कानोंमें पड़ा, तो वह चौंक उठा। जी चाहा कि उन दोनोंको पीटे, परन्तु विवेकने रोक दिया। रमेशचन्द्र एक ही घूँटमें अपना गिलास खाली कर बाहर निकल आया, पर जो-कुछ सुनीतिके विगत जीवनका हाल वह सुन चुका था, उसे कैसे भुला देता? उस लड़कीसे विवाह करना कैसे स्वीकार कर लेता, जो उन दोनोंकी प्रेमिका रह चुकी थी? न जाने और भी ऐसे कितने पुरुष होंगे?

अगले दिन रमेशचन्द्रने तीन महीनेकी छुट्टीके लिए आवेदन दे दिया और उसकी स्वीकृति होते ही दिल्लीसे बाहर चला गया।

यह सुनकर जीवनमें पहली बार मेरे मनमें सुनीतिके लिए वास्तविक सहानुभूति जगी। मैंने सोचा, अब सुनीति के यौवनके प्रमादकी छाया उसके सारे जीवनको आच्छादित करती रहेगी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायँगे, उसे उन चीजोंका अधिक आभास होगा, जिनसे वह वंचित रह गई है। पति, पुत्र तथा गृहस्थके अभावसे स्त्रीके जीवनमें एक ऐसा सूनापन आता है, एक ऐसी रिक्तता, जिसको विगत जीवनकी हजारों विलासमय स्मृतियाँ भी कभी पूर्ण नहीं कर सकतीं। मनमें आया कि और नहीं तो चार साल तक कालेजमें एक साथ रहनेके नाते ही सुनीतिसे ऐसे समय जाकर मिलना चाहिए। न जाने कितनी व्यथित होगी बेचारी!

इसी विचारसे संध्या समय मैं उसके घर गई। परन्तु सुनीतिने जो मुझसे कहा, उसकी मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। आरंभिक शिष्टाचारके बाद वह कहने लगी— बहन, तुमने बहुत अच्छा किया, जो मुझसे मिलने आईं। सच, मुझे रमेशसे यह आशा न थी। परन्तु उसके चले जानेका कोई ऐसा अफसोस भी मुझे नहीं है। मैंने अपने जीवनमें सुख और सुन्दरताकी जो घड़ियाँ देखी हैं, उनकी याद ही मेरे लिए बहुत है। मैं समझती हूँ कि जितना आनन्द मैंने इस थोड़े समयमें अनुभव किया है, सामान्यतया लोग उम्र भरमें नहीं करते। मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि यदि मुझे फिरसे जीवन प्रदान किया जाय, तो फिर मैं अपनी युवावस्था इसी प्रकार बिताऊँ।'

उस दिन घर लौटते समय सुनीतिके शब्द रह रहकर मेरे कानोंमें गूँज रहे थे—सुख, सुन्दरता, नैतिकता, वर्दी, रूप, असत्य मेरा अपना विश्वास जैसे डगमगा रहा था। कौन कह सकता है कि जीवनका कौन-सा रास्ता ठीक है और कौन-सा गलत?

मेरी पहली गिरफ्तारी

श्री भूपेन्द्रकुमार दत्त

वैसे तो मुझे पुलिसका मेहमान कई बार बनना पड़ा है, पर यहाँ मैं अपने पहले आतिथ्यकी कहानी ही कहना चाहता हूँ। पहले महायुद्धके समय (१९१६) भारतमें अँगरेजी शासनके खिलाफ बगावत करानेके लिए जर्मनीसे जो हथियार भेजे गए थे, वे भारत नहीं पहुँच सके। अमरीका-स्थित चेक-विप्लववादियोंने खबर भेजी कि भारत-जर्मन षड्यन्त्र का भंडाफोड़ हो गया है। कुछ ही दिन बाद बालेश्वर (बालासोर) के हल्दीघाटपर यतीनदाके मारे जानेका समाचार भी मिला और एक प्रकारसे विप्लवका वह पर्व लगभग समाप्त हो गया।

जुलाई-विप्लव

साधारण लोग भले ही ऐसी विफलताओंसे निराश हो जायँ, पर विप्लववादियोंके कोषमें निराशा-जैसा कोई शब्द ही नहीं है। यतीनदाकी मृत्युसे हम सबको बहुत बड़ा आघात पहुँचा था, परन्तु यदुगोपाल मुखोपाध्याय स्थल-मार्गसे चीन, स्याम और आसामके रास्ते जो हथियार ला रहे थे, उनके बर्मा तक पहुँचनेका सुनकर हमें कुछ आश्वासन मिला। पर दुर्भाग्यवश एक पंजाबी इंजीनियरके विश्वास-घातके कारण यह प्रयास भी विफल हो गया और यदुदा भी पकड़ लिए गए। अब तो और कोई आशा नहीं बच रही थी। ३० जून, १९१६को कलकत्तेमें बसन्त चट्टोपाध्याय की हत्या की गई और उसी दिनसे टैगार्टकी ज्यादतियाँ भी शुरू हो गईं। इस घटनाको हम लोगोंने 'जुलाई-विप्लव' का नाम दिया।

तलाशियों और गिरफ्तारियोंकी धूम

टैगार्टका बहुत दिनोंका रोष सहसा ऐसा उमड़ा कि कलकत्ता और उसके आसपासके स्थानोंमें तलाशियों और गिरफ्तारियोंकी धूम-सी मच गई। विप्लववादियों और राजनीतिक कर्मियोंके लिए अपरिचित स्थानों और फुटपाथों के सिवा और कोई आश्रय-स्थल नहीं बचे। और अक्सर यहाँसे भी संदिग्ध व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया जाने लगा। सुबह होते ही देखा जाता कि दो-चार चौराहे या मकान

असम्भव हो जाता। जो लोग
व्यक्तिगत हाजतके लिए किड
स्थितिने हमारे दैनंदिन जीवन
बना दिया था। कई-कई
नसीब नहीं हो पाता था।

टैगार्टकी जुल्म-

और जो लोग पकड़े जाते
गत होती थी। सारा भेद
लगातार रात और दिन बैठने
चौबीसों घण्टे पुलिसका कड़ा
पहरेदार राजबन्दियोंके साथ
तो उसे तत्काल बरखास्त कर
बन्दियोंको खानेके लिए दोनों
मुडकी देनेकी व्यवस्था थी और
के लिए खास तौरसे इतनी
कई दिनोंके भूखे भी उसे खा
रातको अचानक थोड़ी-सी
यह शायद घूसके तौरपर ही।
या अन्य बंगाली अफसर
और बड़ी असभ्य भाषा तथा
लात, बाल खींचना, अँगुलियाँ
रूलसे मारना तथा तरह
कई-कई दिनतक भूखे-प्यासे और
पर प्रहार करना, मलद्वारमें
मूत्र लाकर मुँहपर फेंकना आदि
का प्रयोग होता था। यह क्रूर
या दिन-दिनभर चलता था।

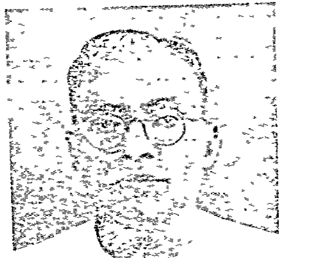
इन सब जुल्म-ज्यादतियोंसे
साथी घबराकर कोई झूठी-सच्ची
थे। पर जितनी वे करते थे,
उसका प्रचार किया जाता था,
गए अथवा उसके चंगुलसे

कभी हार माननेवाले नहीं हैं। फिर भी ऐसी ही किसी स्वीकारोक्तिके फल-स्वरूप मैं भी पुलिसके हाथोंमें पड़ा।

क्रान्तिकारियोंके मैसका संचालन

चन्दननगरसे अतुल घोषने सूचना भिजवाई कि पुलिस मेरे पीछे है, अत. मैं कालेज छोड़कर इधर-उधर हो जाऊँ। अतुलदा विप्लवी दलके गठन और परिचालनमें यतीनदाके दाहिने हाथ थे और भारत-जर्मन षड्यन्त्रके उन अफसरोंमें से थे, जिनकी गिरफ्तारीके लिए बहुत बड़े इनामकी घोषणा की गई थी। उन्हींके एक साथी सतीशदा थे, जो मफरूरों को किस प्रकार सावधानीसे काम करना चाहिए, घूम-फिरकर यही बताते रहते थे। अतुलदाका सन्देश मुझतक वे ही लाए थे। उस वर्ष मैंने एक मेसका आयोजन किया था, जिसमें अधिकांश हमारे साथी ही थे। इनमें मेघनाथ साहा, शिशिर मित्र, शैलेन घोष, यतीन सेठ, ज्ञान मुखोपाध्याय और ज्ञान घोष आदिको लेकर ही बादमें सर आशुतोषने विज्ञान-कालेजकी नींव डाली थी। ये लोग प्राय. यतीनदा और शचिदासे मिलते रहते थे और किसी-किसीका भारत-जर्मन-षड्यन्त्रमें थोड़ा-बहुत सहयोग भी था। इसी बीच शैलेन घोष किसी तरह अमरीका जानेकी व्यवस्था कर पाए। पर दौलतपुर, नडाल इत्यादिका भ्रमण करनेके कारण उनका पासपोर्ट बेकार हो गया। एक दिन उनको खोजते हुए जब खुफिया-अफसर हमारे मेसमें आए, तब ज़रा हमारा माथा ठनका! मुझसे कहा गया कि अब मेरा यहाँ रहना खतरेसे खाली नहीं। इस समय यद्यपि मेसमें सीटोंकी भर्ती और मकानका किराया चुकानेका काम मेरे ही जिम्मे था, पर मैं स्वयं फरीदपुरके इन्दु सरकार द्वारा सचालित एक अन्य मेसमें ही रात बिताने चला जाता था।

इसी बीच एक रात शालखके एक मकानमें सतीशदा घिर गए। गोली चलाते-चलाते उन्होंने अँधेरेमें भाग निकलनेकी चेष्टा की, किन्तु एक गोरे घुड़सवार पुलिस-अफसरने उनकी छातीपर इतनी ज़ोरसे लात मारी कि उनके हाथका पिस्तौल दूर जा गिरा और वे स्वयं भी जमीनपर गिर पड़े। पकड़ा जाना निश्चित समझकर उन्होंने अपने पासका पोटेशियम साइनाइड खाकर आत्महत्या करनी चाही। पर सौभाग्यसे वह आक्सीडाइज्ड हो चुका था, इसलिए उनका प्राणान्त तो न हो सका; परन्तु उनका सुन्दर स्वास्थ्य फिर जीवन-भर न लौटा। इस घटनाके बाद हमारे मेसके राजेन्द्र पाल और अश्विनी भट्टाचार्यको भी पकड़ लिया गया। अब पुलिसको पता चला कि यह मेस तो क्रान्तिकारियोंका अड्डा है। इसलिए रोज़ उसपर छापा मारा जाता और या तो खानातलाशी होती या किसी



लेखक (श्री भूपेन्द्र ‍मार दत्त) का जन्म पूर्वी बंगालमें हुआ। बचपनसे ही बंकिम बाबूका 'आनंद मठ' पढ़कर आप क्रान्तिकारियोंके साथ हो गए। जब आप केवल १३ वर्षके छात्र थे, तो अरविन्द घोषके युगान्तर-दलके साथ थे। १९१६में आप नेताजी सुभाष बसुके साथ ही प्रेसिडेंसी कालेजमें दर्शन (आनर्स) के छात्र थे। ओटन-काण्डमें भाग लेनेके कारण सुभाष बाबू तो कालेजसे निकाल दिए गए और आप १९१६में जर्मनीसे आनेवाले शस्त्रास्त्रोंसे सशस्त्र क्रांति करने के षड्यंत्रसे संलग्न होनेके कारण पढ़ाई छोड़कर फरार हो गए। १९१७में आप पहली बार पकड़े गए। प्रस्तुत लेखमें इसीका वर्णन है, जो कि आपके हाल हीमें प्रकाशित बंगलाके संस्मरणात्मक ग्रन्थ 'विप्लवेर पदचिन्ह'से लिया गया है। इस गिरफ्तारीके बाद आपने राजबंदियोंके साथ होनेवाले अमानुषिक व्यवहारके खिलाफ ७८ दिनकी भूख-हड़ताल की। १९२०में रिहा होनेपर आप नागपुर-कांग्रेस में जाकर गांधीजीसे मिले और हिंसात्मक क्रान्तिकी प्रवृत्तियों से हाथ खींचकर 'सत्याश्रम' के अन्तर्गत रचनात्मक कार्य करने लगे। १९२३में देशबंधु चितरंजन दासने आपको स्वराज्य-पार्टीका एक संचालक नियुक्त किया। इसी वर्ष १८१८के तीसरे रेगूलेशनमें पकड़कर आपको मिदनापुर-जेलमें बन्दी बनाया गया। यहाँ जेल-अधिकारियोंके दुर्व्यवहारके खिलाफ भूख-हड़ताल करनेपर आपको बर्मा भेज दिया गया, जहाँ आप बेसीन, माडले और थायतम्यो की जेलोंमें रहे। १९२८में रिहा होनेपर आप फिर कांग्रेसमें शामिल हुए और १९४१में आप फिर पकड़े गए।

की गिरफ्तारी या किसीके बयान लिए जाते। इस हालत में मैंने उधर जाना ही छोड दिया।

ट्रांसफर-सर्टिफिकेटकी प्राप्ति

कुन्तल चक्रवर्ती (श्री मनोज बसुके 'भूलो नाई' उपन्यास के नायक) भी उस समय फरार थे। अतुलदाके प्रयाससे एक नक़ली नामसे उन्हें एक जगह मास्टरी मिल गई थी और इस नामका ट्रान्सफर-सर्टिफिकेट लानेका भार मुझे सौंपा गया था। उस समय मैं प्रेसिडेंसी कालेजमें आनर्स क्लासमे पढता था और यह सर्टिफिकेट लेना था संस्कृत कालेजसे। हमारे कालेजके डा० महेन्द्र सरकारका मुझपर अपार स्नेह था, अत जब उन्होने मुझसे पूछा कि यह सर्टिफिकेट क्यों चाहिए, तो एक बार उनके सामने झूठ बोलने का मुझे साहस नही हुआ। पर फिर यह सोचकर कि मेरा जीवन अपेक्षाकृत एक बडे सत्यसे ओतप्रोत है, इसलिए मैंने कह दिया—"गाँवमे पिताजी अस्वस्थ हैं, इसलिए उनके पास ही जाकर रहना चाहता हूँ।" इसके बाद उन्होने मुझे कालेजके प्रिंसिपल डा० सतीश विद्याभूषणके पास भेज दिया। वे बोले—"जितने दिन तुम्हारे पिता अस्वस्थ रहे, उतने दिन उनके पास रह सकते हो। सिर्फ इतनी-सी बातके लिए सर्टिफिकेट नही मिल सकता।" मुझे निराशा तो हुई, पर मैं जल्दी ही हार माननेवाला नही था, इसलिए प्राय उधर ही रोज चक्कर काटता रहता। पुलिस मेरी ताकमें थी ही, इसलिए मुझे खूब सावधानीसे आना-जाना पडता था। अन्तमें मैंने सर्टिफिकेट प्राप्त कर ही लिया।

पुलिससे आँख-मिचौनी

इसके बाद मेरा अधिकाश समय चन्द्रनगरमें ही बीतने लगा। कभी मैं एक साथीके यहाँ रहता और कभी दूसरी जगह। जिन स्थानोको मैं छोडता, वही पुलिस पहुँचती और या तो तलाशी लेती या किसीको गिरफ्तार करती। कलकत्तेमें रहनेकी सभावना प्राय असभव हो उठी थी, इसलिए तिल्जलाके रेल्वे-केबिनमें रहनेवाले देवेन घोष (सिन्धुबालाके पति) का निवास-स्थान ही हम लोगोका प्रमुख आश्रय-स्थल हो गया था। पर अधिकाश क्रान्तिकारी चन्द्रनगरमें ही रहते थे और पुलिस बुरी तरह उनके पीछे पडी थी। अतुल घोष चूँकि बहुत दिनोंसे यहाँ रहते थे, इसलिए सरकारी अफसरोंसे उनका अच्छा परिचय हो गया था। इसीके फल-स्वरूप तलाशी अथवा पुलिसकी

यत्नोसे बचाया जा सका था कि इस बार पुलिसने खास की है। इसलिए अमरदा जानेकी स्थितिमें नही थे, एक सब लोग आस-पासके जगलमें चक्कर काटकर आखिर

मैं उस दिन कलकत्तेमें मिली कि जिस तरह भी हो, शाम तक चन्द्रनगर पहुँचूँ, भेजनेकी व्यवस्था की जा सके ही हमारे धन-सबल थे और मैं भिखारी। पर दुर्भाग्यवश स्कूल-कालेज बन्द थे। अत बजबज पहुँचा और उनसे छ नगर गया। देवेन घोषकी मेरा भी सामान्य परिचय हो कुछ साथियोको गोहाटीकी यदुदाकी लम्बी दाढी तथा साथ सिरपर टोपी, कन्धेपर मुँहमें हुक्का लगाए एक बार तो साथी भी शायद सकते थे। सबसे अधिक उनका लम्बा-चौडा शरीर, आदिको छद्मवेशसे ढँकना के कानाई साहाके लिए भी आखिर उन्हें देवेन बाबूके कहकर दो तल्लेपर रखा गया और मैं सशस्त्र पहरा देने लगे

काली भेंडकी

पर कानाई बाबूको लेकर पडा। रह तो रहे थे वे कर्मचारी देवेन घोषके बेकार तीन जडाऊ अँगूठियाँ, टाकाई जैसे उनका काम ही नही चलता उनके कोई साथी आकर प्राय सेंट आदि दे जाते थे। प्राय गाडी किराएकर एकाध

किन्तु बादमें कुन्तलका सन्देह सच निकला और इन कानाई बाबूकी कृपासे न केवल अनुशीलन-दलका ही अन्त हुआ बल्कि कई क्रान्तिकारी भी पकड लिए गए।

आश्चर्यजनक परिवर्तन !

अमरदाको जिस जगह छिपाकर रखा गया था वहाँ के लोग खतरेके कारण अब उन्हे एक भी दिन और नही रखना चाहते थे। पिछले कई दिनोसे सुबह होनेके पहले ही वे अमरदाको नित्य कर्मोंसे निवृत्त करा और कुछ खिला पिलाकर एक कमरेमें बन्दकर बाहरसे ताला लगा देते थे और इसीके बाहर बरामदेमे एक स्कूल लगता था। आधी रातको कमरा खोलकर उन्हे फिर कुछ खिला पिला दिया जाता था। यह क्रम केवल चार ही दिन चल पाया और पांचवें दिन उन्हे पहले दक्षिणश्वरके मन्दिर और फिर बोटनिकल गार्डेन ले जाया गया। दिन भर वहा बिताकर और कोई चारा न देख उन्हे दवेन घोषके यहा ही ले आया गया।

अब हम लोग अमरदाके लिए उपयुक्त स्थानकी खोज करने लगे। शैलेन घोषके एक आत्मीय रामगोपाल दत्त खिदिरपुर डाकघर काम करते थे। उनके द्वारा उन्हे किसी जहाजपर सवार करानेकी बात सोची जाने लगी। चूकि पुलिस मुझे पकडनेके लिए बडी चेष्टा कर रही थी इसलिए सोचा गया कि अमरदाके रहनेकी व्यवस्था करनेके बाद मै गोहाटी चला जाऊँ। यदुदाका निर्देश था कि गोहाटी पहुँचकर मै दिनमे कभी बाहर न निकलू और न कभी पैदल घूमू फिरूँ। एक दिन मै अमरदाके जानेकी व्यवस्थाके सबधमे रामगोपालसे मिलने ट्राम द्वारा खिदिरपुर गया। जब मै उसके दफ्तरमे पहुँचा तो दरवानेके पास एक दाढीवाले व्यक्तिको बैठे देखा जो मेरी ओर घूर घूरकर देख रहा था। इसपर विशेष ध्यान न दे जब मै राम गोपालके पास पहुँचा तो उसे भी बहुत बदला-सा पाया। पहले जब कभी मै उसके पास जाता वह मुझे देखते ही उठ खडा होता और मुझे लेकर बरामदेमे चला आता जहा हमारा बातचीत होती। पर आज उसने मुझसे नजर ही नहा मिलाई और बडा उदास दिखाई दिया। मैने पूछा कि क्या तुम बीमार हो तो उसने केवल नही कह दिया और फिर फुसफुसाकर बोला कि कोई व्यवस्था वह नही कर पाया है। मैने और बात करना ठीक नहा समझा और चुपचाप लौट आया।

पुलिसकी चपेटमे

बाहर आकर मै ट्रामके फर्स्ट क्लासमें बैठ गया। घाटगजके मोडसे मैने चार-पाँच पुलिसवालोको उसी ट्रामके सेकेण्ड क्लासमें चढते देखा। पर मैने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया क्योकि पुलिसवाले प्रायः ट्राममे चला ही करते है। एस्प्लेनडपर आकर मै ट्रामसे उतरा। मुझे चारुके लिए जिनके पीठमें गोली लगी थी और जो चन्द्र नगरमे ही यक्ष्मासे पीडित हो चिकित्सा करा रहे थे कुछ फल लेने थे। ट्रामसे उतरकर ज्योही मै न्यूमार्केटकी ओर चलने लगा तो मुझे पीछसे कई भारी जूतोकी आहट सुनाई दी। ज्योहा मैने पीछेकी ओर मुडकर देखा कि झपटकर उन लोगोने मुझे चारो तरफसे दबोच लिया। कुछ दिन पहले मेरे दाहिने हाथकी पिछली तरफ एक गोली लगी थी जिसके कारण हाथपर पट्टी बँधी थी। इस जख्मी हाथको छिपानेके लिए मै एक चादर ओढे रहता था। पुलिसके चगुलमे पडते ही मुझे ध्यान आया कि मेरी बाह जेबमे इन्च कौंसलकी एक चिट्ठी है जिसे गोहाटीमे यदुदाके पास ले जाना था। यद्यपि इसमे कोई बडी अनिष्टकर बात नही थी फिर भी अभ्यासवश मुझे इसे नष्ट करनेका ही ध्यान हुआ और मै पट्टी-बधे दाहिने हाथमे ही जबसे रिवाल्वर बाहर निकालनेकी चेष्टा करने लगा। पर पुलिसवालो ने चारो तरफसे मुझे इस तरह जकड रखा था कि दोनोमे से कोई भी हाथ हिल नही सकता था।

झपटकर पकडे जानेके कारण मै जमीनपर गिर पडा था। मैने सोचा कि यदि जबके भीतर ही रिवाल्वरकी एकाध आवाज हो सके तो सभव है कि आतकित होकर सिपाहियोकी पकड कुछ ढीली हो। अतः जमीनपर पडे पडे ही मैने किसी तरह अपना हाथ जबमे सरकाया रिवाल्वर की सेफ्टी हटाई और घोडा दबाया। लेकिन दुर्भाग्यवश वह कपडोमे ऐसा उलझ गया था कि काम ही न कर सका। इसी समय आस-पाससे और भी पुलिसवाले आ पहुँचे और मेरे हाथ-पाव बाधनेकी चेष्टा करने लगे। मै भरसक झपटा-झपटी किए जा रहा था और एक पुलिसवाला मेरी छातीपर बैठकर मेरी चादरका फन्दा मेरे गलेमे डालकर उसे कसता जा रहा था। उस समय शरीरमे काफी बल था इसलिए मैने धक्का-मुक्की करनेमे कोई कमी न रखी। पर फिर यह सोचकर कि पुलिसके फन्देमे तो पड ही गया हूँ और रिवाल्वरका प्रयोग कर नही पाऊँगा इसलिए जबसे पोटैशियम साइनाइड निकालकर ही क्यो न खा लू। पर जब जबमे आर हाथ गया तो देखा कि छाना पहलेसे पुलिसवाले वह जब ही फाडकर ले गए थे। इस प्रकार सघर्ष करते-करते कब मै बेहोश हो गया मुझे याद नही।

बादमे पता चला कि बेहोश हो जानेके बाद मेरे हाथ पाँव बाँध और टैक्सीमे डाल पुलिसवाले मुझे इलीशियम रो

ले आए थ। मेरे सब कपड बिल्कुल फट गए थ और चादर का केवल एक टुकडा ही कमरम लिपटा रह गया था। रगड और मार-पीटसे शरीर कई जगह क्षत विक्षत हो गया था और कई घावोसे खन बह रहा था। वसाखकी दोपहरी का समय था और भूखसे ज्यादा प्यासस मेरा दम निकला जा रहा था। पर पुलिसवालोन इसकी कोई परवाह न कर मेरे दोनो हाथ पीठकी ओर कर हथकडी पहना दी। बरामदा पार करके जब मझ एक कोठरीकी ओर ले जाया जा रहा था तो बगलकी एक कोठरीसे आवाज़ आई—भूपेन दत्तको पकड लाए ह !

मार और गालिया

कोठरीम पहुचते ही खुफिया विभागके बहुत-से लोग मझ देखन आए। एक व्यक्ति मेरे पीछ आकर खडा हो गया और मेरे बाल खीचनकी चेष्टा करन लगा। पर चूकि मेरे बाल खूब छोट और कट हुए थ इसलिए ठीकसे उसकी पकडम नही आए। म चूकि जानता था कि अब तो बरी तरह मरम्मत होगी इसलिए चुप रहा। मेरी चुप्पासे उन लोगोका साहस बढा और चारो ओरसे मुझपर गालियोकी बौछार होन लगी मार खानम म पक्का हो चका था पर अपशब्द सुनन और सहनका मुझ विशष अभ्यास न था। इसलिए जब गालियोम भी अति होन लगी तो मुझसे और न सहा गया और म चीख पडा— शतानो चुप करो। शम नही आती तुम्ह इस तरह बकते। तुमन अपनी मातभमि अपन वतन और अपनी आत्माको तो बच ही दिया है अब तुम्ह एक देशभक्तके खिलाफ अपशब्दो का प्रयोग करते भी लाज नही आती ? भूख थकान और घायल होनकी दुबलताके बावजद मेरे चिल्लानसे जसे वह कोठरी काप उठी और गालिया थम गइ।

देशद्रोहियोंको फटकार

एक इस्पेक्टरन मेरे बाल खीचनवाले कान्स्टबलसे कहा— मत मारो इसको। इसका केस कोटम जायगा इसके बाद मार बन्द हो गई और फिर मेरे कभी मार खानका अवसर न आया। दो चार लोगोको छोडकर बाकी सब लोग भी बाहर चले गए। बच हुए लोगोम से एकन मेरे पास आकर धीरेसे पूछा— आपको प्यास लगी है ? पानी पिएग ? मन पास खड हुए एक गोरे साजेण्ट को सुनानकी दृष्टिसे अगरेजीम ही जवाब दिया— तुम

धो धाकर उसम पानी ले बाद वह दुबारा जल लाया एक टुकडा लेकर उसे पान धोन लगा। जहासे अभी जल पट्टी रखी।

मुझ एक कुर्सीपर विठा बाद एक बूढ अफसर आए यही लडका है ? तुम्हारा नाम

म बोला— क्या आप नही वे लोग ह। स तब मुझ आपसे कुछ अच्छा अच्छा।

शामको कई गोरे एक मन अनुमान लगाया कि होगा। इसी समय लाड आए थ। टगाटकी जुल्म उन्होन उसे हटा दिया था। नामके एक नए डिप्टी दे रहा था। शामको म इसी के सामन पेश किया गया। छडी थी जिसे सामनकी ट एक साथ कई प्रश्न किए तुम्हारे बापका नाम क्या है ? तुम्हारी उम्र क्या है ? क्या बरामद हुआ है ? मन का नाम उम्र गावका नाम बतानके बाद कहा— बस ज्यादा म एक विदेशी चाहता।

भारत छो

कार्बेटन तेजीसे कलम वह जल्दीसे लिख लिया और ल्बर तुम्हारे पाससे बरामद जवाब दिया— म और कुछ उसन दूसरा प्रश्न किया— तुम्हारे पाससे बरामद हुआ म इसका कोई जवाब नही

जोर-जोरसे साँस लेने लगा। फिर मेरी ओर देखकर बोला—"तुम विदेशी सरकारके अफसरके प्रश्नोंका जवाब नहीं देना चाहते? इसका मतलब है कि तुम क्रान्तिकारी हो?"

"नहीं, मैं एक देशभक्त हूँ।"

"क्या तुम जानते हो कि इस प्रकारके व्यवहारका नतीजा क्या होगा?"

"हाँ, मैं जानता हूँ, तुमने बहुत-से क्रान्तिकारियोंको शारीरिक यातनाएँ दी हैं और बहुतोंको मार भी डाला है।"

"हमने यातनाएँ दी हैं! क्या तुम्हारा ब्रिटिश सरकारकी ईमानदारीमें विश्वास नहीं?"

"नहीं। मैं नहीं जानता कि क्लाइवसे लेकर तुम तक किसको अधिक बेईमान कहूँ!"

"तुम चाहते हो कि हम हिन्दुस्तानसे चले जायँ?"

"पर तुम अपनी इच्छासे जानेवाले नहीं हो, यह मैं जानता हूँ। परन्तु हम लोग तुम्हें निकालकर ही छोड़ेंगे।"

"इसका मतलब है कि तब तुम क्रान्तिकारी हो?"

"मैं सिर्फ एक देशभक्त हूँ।"

"पर तुम तो क्रान्ति करना चाहते हो। लेकिन कितने लोग हो तुम? मैं तुम लोगोंके नाम अँगुलियोंपर गिन सकता हूँ। क्या तुम्हारे पास सेना है? क्या तुम्हारे पास नौसेना है? और तुम्हारा जनरल कौन होगा? सतीश चक्रवर्ती? क्या सतीश चक्रवर्ती तुम्हारा जनरल होगा? क्या तुम जानते हो कि एक साधारण सिपाहीके लिए कितना खर्च करना पड़ेगा? शायद तीन करोड़ रुपए! क्या इतना रुपया तुम्हारे पास है?"

इस तरह उसने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। मुझसे भी न रहा गया और मैंने कहा—"हम लोगोंके पास कुछ नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर हम लोग मरना जानते हैं। हम लोग दल-के-दल मरेंगे और उसीसे अपने देशको जगाएँगे। देखें कितने दिन और तुम लोग हमें सेनाकी संख्या और रुपयों का हिसाब दिखाकर दबाए रख सकते हो? स्वाधीनताका मंत्र सीख लेनेके बाद क्या कभी कोई देश किसी दूसरे देशके दबाए दबा रह सकता है? हम लोग कम-से-कम देशको आजाद होनेकी तमन्ना तो सिखा जाएँगे, फिर चाहे लम्बे अर्से तक तुम लोगोंकी छीना-झपटी ही चले, तो चले।" जब मैं यह सब कह रहा था, तो कार्वेटके हाथकी छड़ी घूम रही थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यदि एक बार भी वह छड़ीसे मुझपर वार करे, तो हाथोंमें हथकड़ी होनेके बावजूद एक बार तो मैं उसे लात मारकर गिरा ही दूँगा, फिर चाहे कुछ भी हो। पर उसके हाथकी छड़ी संयत ही रही, यद्यपि क्रोधसे उसका चेहरा तमतमा उठा था। मेरी बात समाप्त होते ही उसने गरजकर कहा—"ले जाओ इसे यहाँसे।" पहले तो मैं समझा कि शायद इसका मतलब है मारवाली कोठरीमें ले जानेका, पर बादमें देखा गया कि मुझे लाल बाजार थाने ले जाया गया।

'ब्लैक मेरिया'की यात्रा

वह भी एक कहानी ही है। इलीशियम रोके यंत्रण-गृहके बाहर पुलिसकी एक बन्द गाड़ी खड़ी थी, जिसके पास पाँच बन्दूकधारी हिन्दुस्तानी और दो गोरे सार्जेण्ट खड़े थे। पहले देशी सिपाही गाड़ीमें चढ़ गए, फिर एक गोरा आगे बैठा और एक राइफल तानकर पिछले दरवाजेमें बैठ गया। गाड़ीके दरवाजेके बीच एक खुफिया-अफसर खड़ा था, जो भीतर नहीं आ रहा था। सतीश मजूमदारने उससे पूछा—"अन्दर आकर क्यों नहीं बैठते?" उसने उत्तर दिया—"किसी एक और आदमीको साथ ले लेते, तो अच्छा होता।"

"अरे, तुम भी क्या बात करते हो? देखते नहीं, उसके हाथ पीछेकी ओर बँधे हैं और उसपर कितने ही सिपाही बन्दूक लिए भीतर बैठे हैं। फिर राइफलधारी सार्जेण्ट भी तो साथ है और तुम्हारे पास भी तो रिवाल्वर है। क्या इतनेपर भी एक आदमीकी और जरूरत है? अरे, इतना घबराते क्यों हो?"

"नहीं, घबरानेकी तो कोई बात नहीं।"—कहता हुआ वह गाड़ीमें बैठ गया। यह था मेरा ब्लैक मेरियामें पहली बार बन्द होना। भीतर एकदम अँधेरा था और लगभग यही स्थिति मेरे मनकी भी थी।

अपने लिए दूसरोंका सर्वनाश!

लाल बाजार ले जाकर एक बूढ़े और भले-से सार्जेण्टके पास मेरा नाम आदि लिखाया गया। इसके बाद सार्जेण्ट मुझे सेलमें ले गया, जहाँ दो कम्बल गिन दिए गए। दरवाजे पर पाँच सिपाही बैठा दिए गए और बाहरसे ताला जड़ दिया गया। कुछ क्षण बाद शायद खुफिया-विभागके परामर्श से एक संगीनधारी सिपाहीको अन्दर खड़ा कर दिया गया। मैं दरवाजेके सामने ही कम्बल बिछाकर उसपर बैठ गया। सारा कथानक एक झिलमिलीकी तरह मेरे मनमें उलट-पुलट होने लगा। उस सबमें से तीन मुख्य बातें ही मेरे सामने थीं। पहली तो यह कि आखिर मैं पकड़ा कैसे गया? मेरा निष्कर्ष ठीक ही निकला कि मुझे पकड़वानेमें राम गोपालका हाथ था। बादमें पता चला कि मुझे पकड़वा देनेके आश्वासनपर ही उसे छोड़ा गया था। यह खबर बाहर भी फैली और उसे भाई बिरादरी द्वारा बहिष्कृत और परित्यक्त कर दिया गया। बादमें पुलिस-विभागमें उसे नौकरी मिल गई। दूसरी बात मुझे यह बर्चेन कर रही

थी कि जो लोग बाहर बच रहे हैं उनका क्या हाल होगा ? कुन्तल और चारु इतने मफरूर साथियोकी क्या और कैसे व्यवस्था करेंगे ? फिर मेरे न पहुँचनेपर पता नही वे क्या-क्या सोचते होगे ? और तीसरी बात यह कि जिन लोगोने स्वीकारोक्तियाँ की हैं, वे भला ऐसा कैसे कर सके हैं ! मुझे अतुलदाकी एक दिनकी बात याद हो आई कि मार खानेसे ही यदि स्वीकारोक्ति सभव होती, तो शायद किसी भी देशमे विप्लव नही हो पाता । सुरेशदाका मत था कि यदि कोई कुछ जानता ही न हो, तो कितना भी मारे जानेपर वह क्या स्वीकारोक्ति करेगा ? कुन्तलका कहना था कि मारते-मारते कोई प्राण भी क्यो न निकाल ले, तब भी मुँहसे एक बात भी न कहना ही तो सच्चे क्रान्तिकारी का लक्षण है।

इन्ही सब बातोको सोचते-सोचते मुझे लगा कि अपनी रक्षा करनेमे दूसरोका सर्वनाश करना क्रान्ति-धर्मसे डिगना और विप्लववादियोकी जातिसे पतित होना है। आत्म-सम्मानका अभाव होनेपर ही क्रान्तिकारी अपने साथियोके साथ विश्वासघात और पुलिसके सामने माथा नीचा कर सकता है। पर स्वीकारोक्तिका जो मिथ्या और अति-रजित प्रचार पुलिसकी ओरसे किया जा रहा था, उसका एक विशेष हेतु था। इसीलिए किस-किसके नामपर उसने यह लाछना नही लगाई ? यहाँ तक कि जीवन चट्टोपाध्याय का नाम घसीटनेसे भी वह बाज नही आई, जिनपर मैं अपने से भी अधिक विश्वास कर सकता हूँ। यही बात अनु-शीलन-दलके अमृत सरकारके बारेमें भी कही जा सकती है। बादमे सुना गया कि इन लोगोके विषयम स्वीकारोक्ति का जो प्रचार किया गया था, वह सब असत्य था और अपने आत्म-सम्मान तथा क्रान्ति-धर्मको अक्षुण्ण रखकर ही ये क्रान्तिकारी अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे।

स्वीकारोक्तियोंका आतक

इसी समय एक और बातका भी मुझे खयाल आया और वह यह कि केवल मार और यन्त्रणासे क्रान्तिकारियो से स्वीकारोक्ति करा लेना बहुत सभव नही देख पडता। तब क्या पुलिस किसी प्रकारकी औषधि खिलाकर इस तरह की स्वीकारोक्ति कराती है या उनका मानसिक सन्तुलन बिगाडकर अथवा उन्हें बेहोश करके कुछ कहलवाया जाता है ? यदि इसमें कुछ भी सचाई हो और मेरे साथ भी इसी प्रकार व्यवहार किया जाय, तो क्या वैसे कलकित जीवनका भार

रखकर परम निश्चिन्ततासे
बाद सुना कि मेरी गिरफ्तार
से कहा था कि "अब हम
इसपर अमरदाने पूछा था—"
रोक्ति करे, तो हम लोगोका
क्योकि फिर हम लोग किस
है ?" कानाईसे ठीक उल्टी
सदस्यने गोहाटीमें कही थी।
के बाद एक सज्जनने कहा
की बहुत-सी बातें जानते है।"
कहा था—"मेरी उनसे कुछ
उसीके आधारपर मैं यह वह
स्वीकारोक्ति करे, पर भूपेन
विश्वास नही कर सकता।"
मुझपर आस्था है, और उस
देकर जिन्दा रहनेका मेरे लिए
मनम कुछ दृढता आई।

आत्महत्याकी वि

रातको साढे दस बजेके
खुला और कार्बेट अन्दर घुसा।
वे ही बातें कही, जो दिनको
उत्तर था। इसके बाद उसने
को खीच-खीचकर देखा कि
नही है। इसके बाद बाहर
सेलका ताला बन्द किया,
कि वह ठीकसे बन्द हुआ है या
सन्तरीको कड़ी निगाह रखनेक
सामनेसे कुछ कर
एक बार पाखानेका निरीक्षण
रहा। पर मुझे सारी रात
और कभी उठ-बैठकर मैं जैसे
और कभी-कभी तो ऐसा
विदा ले रहा हूँ। रातके
बैठा, और शौच जानेके लिए
माँगा। पाखानेमें पहुँचकर
कमोड रखकर देखा कि हाथ
जाता है। उसपर बैठकर
और उसे बँटकर एक रस्सी

सिरा खिडकीसे बाँधा और दूसरेका फदा बनाकर अपने गलेमें डाला और बिना कोई शब्द किए धीरे-धीरे शरीरको नीचे झुला दिया।

परन्तु जो भय था, वही हुआ। मेरे भारसे खिडकी का पुराना पलस्तर धडाम-से कमोडपर आ गिरा। इस आवाजको सुनकर बाहरके कास्टेबलोमे भगदड मच गई और 'क्या हुआ' 'क्या हुआ'का शोर मच गया। एक सार्जेण्टने दौडकर ताला खोला और अन्दर आया और मुझे देखकर चिल्लाया—"एक छुरी लाओ। जल्दी करो।" उस समय मेरा गला बुरी तरह सूख गया था। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि अब शायद अधिक भुगतना नही पडेगा। सहसा सार्जेण्ट बोल उठा—"दोजने पकडकर ऊपर उठाओ।" और तब मुझे लगा कि अब शायद मृत्यु सभव नही। इस पर मैंने दीवारपर सिर टकराकर माथा फोडनेकी चेष्टा की। इसी समय एक कास्टेबलने मेरे दोनो पैरोको अपने कन्धेपर रखकर मुझे खडे-खडे ही ऊँचा किया और इस समय मैंने फिर कई बार इस और उस तरफकी दीवारसे सिर टकराया। इससे मैं फिर बेहोश हो गया।

जब मुझे होश हुआ, तो एक सार्जेण्टका स्वर सुनाई पडा—"क्यो डाक्टर, क्या इसे अस्पताल ले जाना आवश्यक होगा?"

"हाँ, ठीक तो यही रहेगा।"

जिस समय यह बातचीत चल रही थी, मैं जान-बूझकर चुप्पी साधे था। सोचा, चलो अस्पतालमें ही शायद मुक्तिका कोई अवसर मिले। एम्बुलेंस गाडी मँगवाई गई। पहले दिनकी ही तरह इसके चारो ओर भी कडा पहरा था।

अस्पताल पहुँचकर मै आँखें बन्द किए ही पडा रहा। चारो ओर क्या व्यवस्था है, कौन लोग है, कुछ भी देखनेकी क्षमता मुझमें नही थी। केवल इतना ही अनुभव हुआ कि माथे और शरीरके अन्य घावोको धोया जा रहा है, मरहम-पट्टी की जा रही है। पहले एक गोरे डाक्टरने आकर नाडी देखी, पर उनकी समझमें कुछ नही आया। उनके चले जानेके कुछ ही क्षण बाद एक बँगाली डाक्टर आए। नाडी देखकर उन्होने हाथ छोड दिया। फिर एक दियासलाई जलाई और उसकी रोशनीमें मेरी पलकें उलटकर देखने लगे और बोले—"लगता है, होश आया है। अगर अभी तक नही आया है, तो अब आने ही वाला है।"

मैंने महसूस किया कि अब और अधिक देर यह बहाना नही चलेगा। धीरे-धीरे आँखे खोली। सबसे पहले जो दिखाई पडे, वे थे मेरे एक सहपाठी कानाई बसु-मल्लिक, जो बडे स्नेह एव अपनत्वसे मेरे घावोकी मरहम-पट्टी कर रहे थे। चारो ओर दृष्टि दौडाई। कुछेक छात्रोको छोडकर बाकी सब वर्दीधारी पुलिसवाले थे। कुछ बिना वर्दी के भी थे। मैं समझ गया कि अब मुक्तिकी कोई आशा नही। थोडी देर बाद फिर स्ट्रेचर आया, फिर वही एम्बुलेन्स गाडी, फिर वही पहरेवाले और फिर वही लाल बाजारका सेल! उस दिन प्रभातके प्रथम सूर्यके साथ-साथ कई वर्षोंके लिए बाहरके जगतपर यवनिकापात हो गया। मनकी एक आशा जैसे अन्तिम बार बुझ गई और मनमे यह आशका जन्मी कि मर तो सका नही, तब क्या जीवितावस्थामे ही मरकर रहना होगा? (श्रीमती इन्दुमती द्वारा सकलित और अनूदित)

काँचकी दो चूड़ियाँ

श्रीमती सरस्वतीदेवी कपूर

"आज आपकी गानेकी बारी है!"

"मेरी? मुझे तो गाना आता ही नही!"

"यह सब यहाँ नही चलेगा। रोना और गाना किसे नही आता? फिर हमारे यहाँका तो यह रिवाज है कि जो नया मुर्गा (कैदी) आता है, उसे बाँग लगानी ही पडती है।"

"अच्छा, तो इसे रिवाज नही, हुक्म कहना चाहिए!"—वे बोलीं।

"अजी हुक्म नही, क़ानून समझ लीजिए!"—मैंने कहा।

और उन्होने गाना शुरू किया—'क्या-क्या रग दिखाया सरकार दीवानी!' गानेका तर्ज कुछ ऐसा था कि हम सबकी सब हँस पडीं। पर हमारे साथ ही वे भी हँस दीं। उन्होने हमारी इस बेतकल्लुफी नहीं, बदतमीजीका जरा भी बुरा न माना।

इतनेमें स्वर्गीया कमला नेहरूका उर्दूका अखबार आ गया। मैंने उसे तपाकसे हाथमें ले लिया और इधर-उधर से देखनेका उपक्रम करने लगी। वे बोलीं—"बहनजी, क्या लिखा है इसमें?"

मैंने ज़ोर-ज़ोरसे पढना शुरू किया—'लखनऊ-ज़िला कांग्रेसकी सर्वप्रथम महिला-डिक्टेटर श्रीमती श्यामारानी गिरफ्तार !' मेरे चुप होते ही वे स्वर्गीया कान्ति अवस्थी (जो कि उनके जेलमें आनेके चन्द घटे बाद ही आ गई थी) की ओर एक कटाक्ष फेंकती हुई बोली—"चुप क्यों हो गई बहनजी, आगे पढिए न !"

बात दरअसल यह थी कि श्यामाजी और कान्तिजीमें जेलमें आते ही कुछ वैमनस्य-सा, कुछ प्रतिस्पर्द्धा-सी लक्षित होने लगी थी। इसका कारण चाहे जो भी रहा हो, पर दोनो ही स्वयको लखनऊ-ज़िला कांग्रेसकी सर्वप्रथम महिला-डिक्टेटर बताती थी। श्यामारानीजीको अपने पक्षकी सत्यता समाचारपत्रसे सिद्ध होते देख वास्तवमे उत्साह आ गया था।

मैंने पढना जारी रखा—'चन्द घन्टो बाद ही द्वितीय डिक्टेटर श्रीमती कान्ति अवस्थी भी गिरफ्तार कर ली गई।' मैं सोच ही रही थी कि आगे क्या पढूं कि श्रीमती कमला नेहरूने हँसीसे व्याकुल होकर अखबार मेरे हाथसे ले लिया और अपनी हँसीको दबानेकी कोशिश करते हुए कहा—"बडे गज़बकी लडकी हो तुम, पडित ! बस रहने दो, सिर-फुटौवलका तमाशा देखना चाहती हो क्या ?"

"इसमें मेरा क्या कसूर है ? जो लिखा है, उसे तो पढना ही होगा !"

स्वर्गीया शर्मदा त्यागी असली भेद जानती थी। उन्होने कहा—"अखबार कमलाजीको दो, तो पता चलेगा क्या लिखा है ?"

मेरा मुँह उतर गया। साथ ही श्रीमती श्यामारानी भी फीकी पड गई। श्रीमती अवस्थी खिल उठी। सबको पता चल गया कि मुझे तो उर्दू आती ही नही !

यह बात १९३०के दिसम्बरकी है। उस समय हम सब लखनऊ सेंट्रल जेलमे बन्द थी। मै शायद सबसे छोटी थी, इसलिए या कुछ खुशमिजाज और हाज़िरजवाब थी इसलिए, मेरी सबसे खूब पटती थी। सभी मुझसे प्रेमसे पेश आती थी। अब विचित्रता यह थी कि मैं तो कमलाजीकी भक्त थी और अपना अधिक-से-अधिक समय मैं उन्हींके सम्पर्कमें बिताती थी और इधर श्यामाजी पता नही क्यों, मुझ-सी नाचीज़को अपनी ओर खींचना चाह रही थी। मैं थी अपनी रहन-सहन, खान-पान इत्यादिसे सर्वथा

मेरा कुछ भी सरोकार न था। रसोईघरमे उपस्थित न बातपर कमलाजीसे मुझे डाँट चाही भी किस कामकी !

नि.स्वार्थ प्रे

मेरी पार्टी मुझे ताने देती पार्टीमें जा मिली हूँ ! यह जीके हाथकी अरहरकी दाल व्यजन इतने स्वादिष्ट एव मन ललचा जाता था। वे पीती। और मैं थी दूधकी जो दूध मुनक्का, छोटी रातको सोते समय पीनेको वहांके राशनमें मिलनेवाला नही परोसा। बढिया और तरह-तरहके अचार वे थी। मैं फिर भी कुछ न पड गई है। इन्हींके चलते पडती है। बीच-बीचमें मैं "यह सब आडम्बर मेरे ब नि स्वार्थ प्रेम-भरी आँखोकी

अपनी जूठी थालीमे किसीका छुआ तक न खाती उठती। वे कहती—"मुझे क्या ?" इसपर मुझे क्या सोच नही पाती। वे मेरा मेरी सब आवश्यकताओको नादान बच्चेके लिए उसकी माँ ही नित्य कर्मके बाद अपने पर उपस्थित पाती ! स्नान नाश्ता खुशबू और रूप-रगसे तैयार मिलता ! खाते हुए जाती। वे मुझसे चाहती पर जैसा कि मुझे आगे कहकर पुकारनेके बदलेमें उस 'अदेय' न रखा।

वे छी ७

उन्होंने मेरा हाथ खींचकर कलेजेसे लगा लिया। दिल जोरोंसे धड़क रहा था। हाथ ठण्डे पड़ रहे थे। मैं अपने बिछौनेसे उठकर उनके पास चली गई। वे बोली—"तुम सो जाओ।"

"मैं अब किसी तरह भी सो नहीं सकती।"—मैंने कहा—"आपको अपनी बात मुझे बतानी ही पडेगी।"

बहुत-कुछ पशोपेशके बाद वे अपनी बीती सुनानेका उपक्रम करने लगी। बोली—"तुम्हारी क्या उम्र होगी? यही कोई बीस-इक्कीस बरसकी ही तो तुम होगी?"

"बिल्कुल ठीक।"—मैंने कहा—"मैं इक्कीसवें बरस में से गुजर रही हूँ।"

"हाँ, तो मैं जब उनसे (अपने पतिसे) अन्तिम बार वचित हुई थी, उसे आज बाईस वर्ष हो रहे हैं। यदि भूले भी मेरी कोई सन्तान हो जाती, तो वह आज तुम्हारे बराबर की जरूर होती।"—कहते-कहते वे बिलख-बिलखकर रोने लगी।

मैं उठकर बैठ गई थी। उन्हें बडी मुश्किलसे सँभाला। बैरकमें दूसरी सोनेवालियोंके जाग जानेका भय दिखाया। बहुतेरा कहा कि ये सब लोग अपने मनमें क्या समझेंगी? पर वे किसी तरह भी स्वस्थ हो ही नही पा रही थीं। उस समय कोई भी उपाय उन्हें शान्त करनेका मुझे सूझ ही नहीं रहा था। अचानक मेरी कल्पनाने काम किया। मैं उनके कलेजेसे एकदम सट गई और कहा—"यदि आपकी सन्तान मेरे बराबरकी हो सकती थी, तो क्या मैं ही आपकी सन्तान नहीं हो सकती हूँ? कृपाकर मेरा विश्वास करें। मुझे अपनी औरस सन्तान ही समझें।"

"सच?"

उनकी बडी-बड़ी सुन्दर आँखोंके चमकते हुए प्रकाशको मैंने लालटेनकी धुँधली रोशनीमें से स्पष्ट देखा। वे बोली—"क्या तुम मुझे अपनाओगी?"

अपनेमें इतने बडे आदर-सम्मान और प्रेमकी योग्यता का विश्वास-सा न करते हुए थोडी देर तो मैं सोचती ही रही कि क्या जवाब दूँ? परन्तु तुरन्त ही कुछ आश्वस्त-सी होते हुए मैंने कहा—"माँ, मेरा विश्वास करो, मैं तुम्हारी सन्तान ही हूँ।"

वे जैसे जी उठी! बोली—"तुमने मुझे माँ कहा। यहाँ सभी मुझे मासी—'माँ-सी'—ही कहते हैं। पर 'माँ' का प्यारा सम्बोधन पहले-पहल तुम्हींने मुझे प्रदान किया।"

वे अपनी सुन्दर, सुडौल और सफेद बाँह एव हाथको मेरे सारे शरीरपर इस तरह फेरती रही, जैसे कोई नेत्र-विहीन सालोंसे बिछुड़े अपने कलेजेके टुकड़ेको टटोल-टटोलकर उसकी स्वस्थता इत्यादिका ज्ञान कर रहा हो। इसके बाद बहुत-सी बातें हुई।

सारी रात कैदियोंकी गणना बदस्तूर रही। हमारी बैरककी पक्की ठीक पाँच-पाँच मिनट बाद '५३ कैदी, जँगला, ताला, लालटेन सब ठीक है हुजूर' का नारा बाकायदा लगाती रही। श्यामाजी अपनी कहानी कहती रहीं—कहती ही चली गई। इसीमें सबेरा हो गया। ताला खुल गया। कैदी बाहर निकाले गए। हमें भी अपना बातोंका अध्याय बन्द करना पड़ा। कहानी इतनी लम्बी थी कि तबसे आज तक कई बार कही-सुनी जा चुकी है, पर उसमें जैसे नए-नए अध्याय जुडते ही जाते हैं। सचमुच यह जीवन एक कहानी ही तो है!

जिन्दगी-भरकी गाँठ

उनका विवाह १९०१में हुआ था। पति लाहौरके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित, सम्पन्न एव धनी परिवारके किशोर थे। इधर इनके पिता इन दो छोटी-छोटी कन्याओं (इन्हें और इनकी एक वर्ष बडी बहनको) इनकी माँकी गोदमें छोडकर चोरीसे विलायत बैरिस्टरी पास करने को चले गए थे। चोरीसे इसलिए कि एक तो उस समय विलायत जानेका चलन ही कम था, फिर वे अपने धनी-मानी-यशस्वी वकील पिताके इकलौते पुत्र थे। वे उन्हें पल-भरको भी अपनी आँखोंसे ओझल नहीं होने देना चाहते थे। खैर, यह एक अलग कहानी है। उसका निचोड यह है कि वे इँग्लैण्ड गए और वहासे लौटनेकी तारीखको ही स्वर्गवासी हो गए। जिस जहाजसे उनके स्वदेश लौटनेकी खबर थी, उससे उनके दोस्तोंने उनकी हड्डियाँ यहाँ भेजी! इस दुर्घटनाके समय श्यामाजीकी उम्र ३॥ सालकी थी।

बारह सालकी उम्रमें इनका विवाह हुआ। लाड-प्यारसे पली हुई सुन्दर सलोनी गुणवती पौत्रीका कन्यादान बहुत ही प्रतिष्ठित एव अपनी बराबरीके घरानेमें करके इनके दादाने अपनेको कृतकृत्य माना।

द्विरागमन (गौना) होनेमें कई बरसकी देर थी। वर महोदय डाक्टरी पढनेके लिए विदेश चले गए थे। पाँच वर्ष बाद सब ठीक-ठाक होकर गौना भी राजी-खुशी हो गया। सुनते हैं इतना दान-दहेज दिया गया था कि चारों तरफ तहलका मच गया और लखनऊसे लाहौर तक सभी-समाजमें अर्से तक इस लेन-देनकी चर्चा रही। इस प्रकार मन्दिरकी शानदार इमारत बनकर तैयार हो गई थी। सजावट और आडम्बरका तो कहना ही क्या था! मूर्ति भी प्रतिष्ठापित हो गई थी। देखनेमें सब ठीक एव सुन्दर था। पर वह मूर्ति पत्थरकी थी, उसमें

प्राण न था, चेतना न थी, जीवन न था। विलायती रस्मोरिवाज, एटीकेट आदिसे अनभिज्ञ श्यामाजी-जैसी अपूर्व सुन्दरी युवतीके प्रति डाक्टर साहबका जरा भी अनुराग न था, सहानुभूति न थी, प्रेम न था, दया भी न थी। सुहागरातके दिन ही किसी कुघडीमें कोई ऐसी गाँठ पड गई, सो जिन्दगी-भरके लिए पडी ही रह गई।

अप्रत्याशित हरकतें

वकील साहब सालों बाद कुछ-कुछ जान पाए कि उस समयकी कुलललनाएँ लज्जावश अपने पति-गृहकी चर्चा ही पितृ-गृहमें नहीं करती थी। पर मालूम होते ही श्यामाजीकी माँने तुरन्त मर्जका इलाज किया। एक मेमको बेटीको अँगरेजी पढाने और विलायती तर्ज-कायदे सिखानेको नियुक्त किया। वह उन्हें अपने साथ कानवेंट स्कूलमें भी ले जाया करती थी। थोडे ही समयमें श्यामाजी सजधजकर खासी मेम साहबा बन गईं। पर पतिदेवकी निगाहें बदल चुकी थीं। गर्मियोंके दिन थे। सारा परिवार कश्मीरकी सैर करनेको गया हुआ था। श्यामाजी भी साथमें थीं। बेचारी हर समय हैरान रहती थीं। अब वे विलायती तर्ज-कायदे (आम खानेके लिए बाथ-रूममें जाना तक।) भी सीख चुकी थीं। बात-बातमें थैंक्स कहना तथा डीयर-डार्लिंगसे सम्बोधन भी प्रगल्भतासे निःसंकोच होकर करना वे सीख गई थीं। पर विधि-विडम्बना ऐसी थी कि उनकी कोई भी प्रवृत्ति डाक्टर साहबको रुचती न थी। वे इन्हें देखते ही परेशान-से हो उठते थे। उनके मुखका विकार इतना स्पष्ट हो जाता था कि बेचारी श्यामाजी सहम जातीं तथा अनजाने ही अट-सट बकने और अनायास ऐसी हरकत करने लगतीं कि देखनेवाला उन्हें सचमुच मूर्खा तथा पागल तक समझे बिना न रहता।

वह मनहूस दिन।

उस दिन सुबहसे ही डाक्टर साहबका दिमाग बिगडा हुआ था। वे बार-बार दाँत पीस रहे थे। उनकी इच्छा होती थी कि पत्नीको गेंदकी तरह उछालकर पहाडसे नीचे पटक दें, पर जैसे उनकी कुछ पेश न आती थी। डाक्टर साहबके पिता, जो स्वयं भी डाक्टर ही थे, इस बातको लक्ष्य तो बराबर कर रहे थे, पर उस दिन उन्होंने पत्नीके प्रति सदय रहनेके बारेमें कुछ कह-सुन भी दिया था, जिससे उनके साहबजादे और भी कुढे हुए थे। इतनेमें होनीकी मारी

इस भद्दी हरकतसे इतने
सिर पीट लिया। और
तथा कठोर वाग्बाण सुनने
धक् करता है, लेखनी काँप
डाक्टर साहबने अपने निजी
होकर श्यामाजीका सामान
"अभी जाकर मोटरसे राव
आगे लखनऊ तकका टिकट
बस, इसके आगे और कोई
हुक्म-अदूलीका तो कोई
जैसे स्वयं मरने-मारनेको
मजाल क्या कि चूँ भी कर

विलायती एटीकेटसे
भर ही समझा कि उन्हें इस
पहले वे यह बात नहीं
पिताके घर जानेके बजाय
थी। अब इस नई विद्याने
कला भी सिखा दी थी।
मुझे बताया कि उस दिनके
उनकी रातको स्वयं जाकर
जिसके कारण वे इतने विषम
हरकतका ही परिणाम था
मस्तिष्कका सन्तुलन खोकर
लाल धागेसे सी डाला था।
माताजीने उस दिन लखनऊ
घायल हृदयको मेरे सामने

दादी, माँ आदि सभीने
आँखों देखी। वे लोग उसे
थे, पर ऐसा करनेसे
करनेपर कहीं वे (उनके पति)
दादाजी पहले ही स्वर्गवासी
बिना पतवारके डगमगाती हुई
लडकीको और भी पढाया
तो आप ही पतिको वशमें

बेतुकी

मेरे बहुत बार अनुनय-
के मुँहसे निकला था—"उस

कभी हो ही नहीं सकता। मेरी आँखें धोखा खा सकती हैं, मैं गलत देख सकती हूँ। वे कभी ऐसे नहीं हो सकते।"

मुझे उनकी इस बेतुकी श्रद्धापर गुस्सा आ जाता। मैं आपेसे बाहर हो जाती। जो-सो बक जाती। पर वे अपने हाथसे मेरा मुँह बन्द कर देती, अपने कानोंपर हाथ धर लेतीं। कहतीं—"बेटी, मेरे लिए, ईश्वरके लिए, इतना जुर्म न करो। मेरे देवताको गालियाँ न दो। मेरे पिछले जन्मके पाप मेरे सामने आए हैं। मुझे और काँटोंमें न घसीटो।" मुझे विवश चुप हो जाना पड़ता। मैं मन-ही-मन खिझ जाती और उसका बदला भी उन्हींसे लेती। उन्हें असत्य गरम-नरम बातें कह जाती, पर वे थीं कि उफ़ तक न करतीं। अपनी साक्षात् जन्मदातृ माँ भी कभी इतना सहन नहीं करेगी, जितना उन्होंने मेरी बातों को किया।

तबसे कई बार उनके श्वसुर-गृहमें जाकर रहनेकी चेष्टा की गई। श्वसुर मरे, जेठ मरे, देवर मरे और वे, जिन्हें कभी देखा-भर था, भी संसारसे चल दिए, पर श्यामाजी के मनका काँच टूटकर फिर जुड़ न सका।

माताजीने वर्षों मेरा साथ निभाया। कभी-कभी तो मेरी अपनी स्वर्गीया माताजी भी उनके मेरे प्रति इतने गहरे मातृत्वके भावसे व्यथित-सी हो जाया करती थीं। वे मुझे बार-बार याद दिलातीं कि 'तेरी वास्तविक जननी तो मैं ही हूँ।' यह सच था, पर माताजीका मेरे प्रति वात्सल्य सदा निश्छल-अविचल रहा। उन्हें विवश हो अलग तो रहना ही पड़ा, पर उनका मातृत्व अब भी मेरे चारों ओर छाया हुआ है। आज भी उनका मेरे प्रति वही प्रेम है, वही अपनत्व है, वही स्वयं भूखी रहकर मुझे खिलानेमें सन्तोषका भाव है।

सिंदूर और काँचकी दो चूड़ियाँ

प्रभात चार बजेसे लेकर रात ग्यारह बजे तक बच्चों—अपनी बहनके नाती-पोतों—में माताजी ऐसी घुली-मिली और व्यस्त रहती हैं कि दम लेने तकको अवकाश नहीं। हरि-भजन भी साथ-साथ चलता रहता है। प्रतिदिनके भजनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष माघ महीना इलाहाबादमें गंगाकी ठण्डी रेतीपर बनी कुटियामें बीतता है और नित-नियम ही उनके प्रतिदिनके साथी हैं। आज लगभग सत्तर वर्षकी उम्रमें भी उनके चेहरेपर वही तेज है, वही नूर है, और वही लाली है। डाक्टर साहबकी एक पूरी जवानी की फोटो उनके पूजाके सामानमें रखी है, जिसे उन्होंने विलायतसे इन्हें भेजा था। उसपर उनके हस्ताक्षरके साथ सिर्फ 'सप्रेम' लिखा है। एक वयोवृद्ध देवीको छोटे-से तरुण किशोरसे दिखाई देनेवाले प्राणीकी प्रतिरूपमें पूजा करते देख कुछ अटपटा-सा अवश्य लगता है, पर वे इन सब बातोंसे बहुत आगे हैं। सदा ही उनकी सुबहकी पहली प्रार्थना यही होती है—'भगवान, मेरे अपराधोंको क्षमा कर। मुझे अगले जन्ममें भी यही पति प्राप्त हो।' और इसके बाद वे अपनी झोली फैलाकर भगवानसे भिक्षा माँगती हैं—"नाथ, मुझे कृपाकर बस एक वरदान अवश्य देना और वह यह कि मरते समय मेरी माँग सिंदूरसे पुती रहे, मेरे हाथोंकी दो काँचकी चूड़ियाँ मुझे तब भी सुलभ रहें।"

अभी उस दिन एक पोस्टकार्ड मिला। लिखावट देखते ही कुछ कँपकँपी-सी अनुभव हुई। लिखा था—'बेटी, मेरा सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया! अब यह अभागी विधवा भी हो गई! क्रिया तारीखको होगी। जाऊँगी तो हूँ ही। —बदकिस्मत श्यामा।'

पत्र मूर्तिमान् दुर्भाग्यका प्रतीक था। माताजीको क्या दिलासा दूँ? कैसे धीरज बँधाऊँ? उनके सौभाग्य-विवर्जित मलिन मुखको इन आँखोंसे कैसे देखूँ? उनकी चुटकी-भर सिंदूर और दो काँचकी चूड़ियोंकी भीख भी ठुकराई जा चुकी है!

पर वे सब सह लेंगी। कोमलताके समान ही मनुष्य की कठोरता और सहनशीलताका भी पार नहीं है!

मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो कौन हँसेगा जगमें ? : श्री दिवाकर

तेरे आँसू देख सके जग, इससे पहले ही मिट जाना,
जीना तो शूलोंपर, अंगारोंपर भी चलकर मुसकाना,
लक्ष्य जिधर है बढ़ते जाना, कितने ही रोड़े हों मगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?
तेरी भाषा जगमें जीवन-ज्योति जगाती, धीर बँधाती,
चिर-निद्रामें लीन सुप्त जन-जीवनमें चेतनता लाती,
पतन और उत्थान विश्वका बसता है तेरे ही पगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?

रवि-शशि तेरी ही आँखें हैं, जिनमें जगको मिला उजाला,
धरती तेरी ही छाती है, जिसने जगका भार सँभाला,
सृष्टि-प्रलय तेरे इंगित, है प्रगति विश्वकी तेरे डगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?
मुझमें जगके प्राण, वायु भी तेरी श्वासोंमें पलती है,
नियति बनी दासी तेरे संकेतोंपर डरती चलती है,
तेरा ही सौंदर्य झलकता विस्तृत अम्बरकी जगमगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?

स्व० हरिहरनाथ शास्त्री

श्री अलगूराय शास्त्री

१९२०का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया था। कलकत्तम जो प्रस्ताव स्व० लाला लाजपतरायजीकी अध्यक्षता में स्वीकृत हुआ उसपर मत लेनके पश्चात लालाजीन अध्यक्ष पदसे यह घोषणा की कि म इसके विरुद्ध हूँ। असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके स्वीकृत होनका परिणाम यह हुआ कि स्कूल और कालेजके छात्रोन अँगरेजी शिक्षाका बहिष्कार किया। इसीके फल-स्वरूप आज जो हम बहुतसे काग्रसके कार्यकर्ता ह आपसम मित्र पाए क्योंकि हम सब एक ही



स्व० हरिहरनाथ शास्त्री

पथके पथिक थ। हममें से जो जहा था अपनी पढाई छोडकर राजनीतिमें कूदा। हमारे नताओमें बहुतोकी राय यह थी कि विद्यार्थियोसे अँगरेजी ढाचेकी पढाई छोडनकी प्ररणा के साथ उनके लिए हमें राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीकी व्यवस्था

और कालेजको छोड हुए इन सस्थाओंम प्रविष्ट हुए करनमें लग गए। इसी और म काशी विद्यापीठमें हमारा यही प्रथम मिलन आजमगढका। इन दोनो जैसे इन दोनो जिलोकी सीमा जा भविष्यम सामन मुच और हरिहरनाथको हमारे हृदयक कोट मिल *सीमाएँ मिलती गईं।* स्नहक जोड जुडते गए। अकाल मृत्यु हुई तो उसस एक बाहु कट गई या एक बुद्धिका कोई एसा पार्श्व ढह तो है *किन्तु अक्षुण्णताको*

विद्यार्थी

१९२०में हरिहरनाथ प्रथम वर्षके विद्यार्थी थ हमारा उनका कोई परिचय विश्वविद्यालयमें प्रविष्ठ पढाईको समाप्त किया। आदिके कार्योंम पड गए काशी विद्यापीठमें पढनमें पकडा किन्तु कोतवालीके क्योंकि बाबू भगवानदास थियोकी गिरफ्तारीको जो *विद्यार्थी* पकड जा चुके छोडकर शपपर जल ल ... यही कारण है कि यद्यपि सहपाठी थ परन्तु स्नातक बन चुका था। बैचम हरिहरनाथ आदि

स्वमेध घाटमें अगस्त-कुंड मुहल्लेके एक मकानमें रहा करता था। पढ़ाईका काम भी मेरा दर्शनशास्त्र था और हरिहरनाथका इतिहास और राजनीति। इसलिए एक ही संस्थाके विद्यार्थी होते हुए भी हम दोनोंका मिलन प्रायः नाम-मात्र का ही होता था। हममें से प्रत्येक अपनी कोई-न-कोई विशेषता रखता था, क्योंकि सब विशेष भावनाओंको लेकर अज्ञात भविष्यकी खोजमें निकल पड़े थे। छोटी-छोटी गोष्ठियोंमें हम लोगोंमें से अक्सर विद्यार्थियोंकी उनकी विशेषताओंकी चर्चा हुआ करती थी। ऐसे विद्यार्थियोंमें हरिहरनाथका प्रमुख स्थान था। जहाँ मेरे सम्बन्धमें विद्यापीठकी छोटी-छोटी गोष्ठियों और टोलियोंमें धार्मिक कट्टरताके लिए व्यंगात्मक और उपहास्य कटाक्षोंका प्रयोग होता था, क्योंकि मैं आर्यसमाजी था और वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान मानता था, वहाँ तुलनात्मक ढंगसे हरिहरनाथकी उदारवृत्ति और स्वतन्त्र-प्रज्ञ और प्रतिभाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती थी। इस प्रकार अपने दार्शनिक शब्दोंमें मैं हरिहरनाथको प्रत्यक्षवादी, बुद्धिमान दार्शनिक विचारवाला व्यक्ति मानने लग गया था और स्वयं अपनेको धार्मिक कट्टर भावनाओंके वशीभूत अनुभव करता था। हरिहरनाथ गीता पढ़ने और उसे कण्ठस्थ करते थे। अष्टाध्यायीके सूत्र भी याद करते थे। उनके जीवनमें मुझे यह विरोधी गुण देखकर आश्चर्य होता था और कौतूहल भी कि एक ओर वे मनुष्यके स्थानको, उसकी बुद्धिको, मर्यादाको धर्मशास्त्रोंमें अमर मानते थे और इस प्रकार बौद्ध धर्मकी प्रवृत्तियाँ उनके मनमें दृढ़ बनती जा रही थीं और दूसरी ओर उनके मनमें गीता आदिके लिए इतना मान और संस्कृत-काव्य पढ़नेकी ऐसी अभिरुचि थी। मेरी धार्मिक कट्टरताने मुझे उनकी ओर और आकृष्ट किया, दूर नहीं फेंका। कारण यह था कि बातचीतमें वे अपने पक्षका प्रतिपादन बड़े सुगम, सुन्दर और सहज ढंगसे अपनी मीठी मुस्कान, जिनमें शुभ्र मोतीकी तरह दमकते हुए उनके दाँत चमक आते थे, बिखरकर और कुछ सिर हिलाकर बिना किसी एक भी कटु शब्दका प्रयोग किए नकारात्मक प्रत्युत्तर देते थे। मुझे ऐसा लगता था कि मैं पूरे बलसे लाठी लेकर पानी पीट रहा हूँ। घंटोंके इस थकानपूर्ण परिश्रमके पश्चात् भी मैं सरस पानीको फाड़ नहीं पाता था, परन्तु स्वयं थक जाता था। मेरी कट्टरता का घड़ा उन चट्टानपर टकराकर फूट जाता था और मैं उनके लिए अपनेको ही दोषी पाता था, चट्टानको नहीं।

एक स्वतन्त्र विचारकके रूपमें

ऐसे कोमल बुद्धि-कालमें जिन मैत्रीका यह मधुर बीज आरोपित हुआ, उसका परिणाम भी इसी प्रकार होता गया और पूरे तीन वर्षके उस शिक्षा-कालमें हरिहरनाथ स्वतन्त्र विचारक बनते गए और मैं कट्टर धर्म-प्रचारक। काशी-विद्यापीठके उस वातावरणमें मेरे लिए उपहास-ही-उपहास था और हरिहरनाथके लिए प्रशंसा-ही-प्रशंसा, क्योंकि गांधीजीके उस युगमें 'सत्यार्थप्रकाश' का नाम लेनेवाला तिरस्कृत ही माना जाता था। मेरे लिए 'सत्यार्थप्रकाश', उसके लेखक महर्षि दयानन्द और उनकी मान्यताएँ वेदोंका भाष्य-ऐसी बातें थीं, जिन्हें छोड़ना सम्भव न था। सच तो यह है कि मैं प्राण दे सकता था, किन्तु अपनी इन मान्यताओंको त्याग नहीं सकता था, जिन्हें मेरे ये प्राणोंसे प्यारे साथी मेरी मूढ़ग्राही वृत्ति कहा करते थे। हरिहरनाथ इस मूढ़ाग्रहके उपहासके लिए हँसी-हँसीमें 'बुढ़िया बावरी री, तू सन्ध्या क्या नहीं करती ?' का गाना मन्द हासके साथ गा-गाकर आर्यसमाजी भजनोपदेशकोंका और उपदेशकोंका मीठा मजाक उड़ाते थे। यह उनके स्वभावकी मधुरता ही थी, जिससे उनका ऐसा करना मुझे न केवल अखरता ही न था, बल्कि इस कारण मैं उनकी स्वतन्त्र प्रतिभाके वश उनकी ओर आकृष्ट भी होता था। गांधीजीने जब 'सत्यार्थ-प्रकाश'की आलोचना की, तो मैं उनपर बहुत अनाप-शनाप बिगड़ा। किन्तु आश्चर्य है कि हरिहरनाथकी भावनाएँ वैसी ही होते हुए भी उनके प्रति मेरे मनमें कोई रोष कभी न आया। विद्यापीठके छात्र-जीवनमें जो वाद-विवाद, उत्सव आदि सार्वजनिक कार्यक्रम चलते थे, उनमें भी मैं अधिक भाग नहीं लेता था, किन्तु हरिहरनाथ उनमें अक्सर रहा करते थे। विद्यापीठके वातावरणमें आचार्य नरेन्द्रदेव आदिका जो प्रभाव था, उससे स्वतन्त्र विचारधाराके लिए कहीं अधिक प्रोत्साहन था। अर्थशास्त्र और इतिहासके विद्यार्थियोंका अधिक बोलबाला था। दर्शनके विद्यार्थी हँसे जाते थे। अपने विषयमें मैं अपने समकक्ष विद्यार्थियोंमें अच्छा माना जाता था, किन्तु विद्यापीठके पूरे वायुमण्डलमें हरिहरनाथकी ही गहरी छाप थी। विद्यार्थी जो पत्रिका निकालते थे, उसके सम्पादन और उसके लिए लेख आदि लिखनेमें हरिहरनाथका बड़ा हाथ रहता था। इस प्रकार विद्यार्थी हरिहरनाथके प्रति उनकी बुद्धि-विलक्षणता और स्वतन्त्र विचार-प्रवृत्तिके कारण एक सम्मानका भाव मेरे मनमें घर कर गया।

व्यापक कार्यक्षेत्रमें

१९२३में मैंने विद्यापीठसे 'शास्त्री'की उपाधि ली और १९२४में हरिहरनाथने। यह कौन जानता था कि हम दोनों फिर मिलेंगे और यह मिलन सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रका होगा। यह मिलन [illegible]

लाजपतरायके चरणोमें होगा और जीवनके आगेके दिन उस महापुरुषके नेतृत्वमें बीतेंगे। किन्तु ऐसा ही हुआ। जून, १९२४में हम दोनो लाहौर गए। हरिहरनाथके लिए आचार्य नरेन्द्रदेवजी आदिकी सिफारिश थी। मुझे ला० मोहनलाल और प० बलदेव चौबे, लाला लाजतपरायजीके चरणोमें ले गए। इस तरह हम दोनो लोक-सेवक-मण्डलके आजीवन सदस्य बने। मेरा सेवाका क्षेत्र मेरठकी कमिश्नरी और हरिहरनाथका बनारस था। काम अछूतोद्धारका मिला। मैं तो उसी कार्यके अन्तर्गत अबतक हूँ, किन्तु थोडे ही दिन बाद हरिहरनाथको मजदूरोमें कार्य करनेकी योग्यता-सम्पादनके निमित्त पूना भेजा गया और उसके पश्चात् वे कानपुरमें काममे लग गए। स्व० गणेशशकर विद्यार्थीके सम्पर्कमे वे वहाँ आए। अपनी कार्य-कुशलता के कारण चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन दिन चमकने लगे और बढने लगे और थोडे ही समय बाद इस क्षेत्रमें जो अपना स्थान बनाया, वह इस समाजग्राही कार्य-क्षेत्रमे किसी दूसरे आदमीको प्राप्त नही है। वे इतने ऊँचे उठेंगे, इसकी कल्पना तक हमें नही थी।

किन्तु जितना वे उठ सकते थे, अभी उतना उठ नही पाए थे। हम सबको अपने बुद्धि-चमत्कारसे चकित करनेवाले हरिहरनाथ भविष्यमे बडी देन रखते थे। हरिहरनाथका जीवन एक अधखिली कलीकी तरह पूरा सौरभ देनेसे पहले ही मौन हो गया। उनका जीवन-भ्रमर जिस कल्यानके लिए तडफडा रहा था, उसके पूरा होनेसे पहले ही कराल कालके हाथोंने कमल-सहित उसे अपने मुँहमे रख लिया। दुर्दैवकी इस कठोरतापर हृदय विदीर्ण होता है। परन्तु इसमे वश किसका है?

राष्ट्रीय मजदूर-आदोलनका स्वरूप

सन् १९२०से लेकर '४२ तकके प्रत्येक आन्दोलनमें जो काग्रेसकी ओरसे चला, हरिहरनाथने जेल-यातनाएँ भोगी। फैज़ाबाद जेलमें सन् '३२में तथा लखनऊ सेण्ट्रल जेलमें हमारा-उनका साथ रहा। फैज़ाबादमें बहुत कम दिन रहा, क्योंकि मेरे पहुँचते-पहुँचते ही वे बीमारीके कारण छूट गए थे। किन्तु सन् '४२में तो बरसो साथ रहे। यही समय था, जब दिन-के-दिन और रात-की-रात साथ-साथ कटे। एक-दूसरेको अत्यन्त निकटसे देखा। विचारो की परिपक्वता प्राय: हो चुकी थी और इसी स्थितिमे एका-

हम लोगोके सम्मिलित
दार्शनिक विचारोकी छाया
विचार-शैलीमे दर्शाता था,
करते थे। जहाँ
मेरे कुछ तर्कोका जब उनसे
बताते थे कि मेरा सम्पर्क
पड सकता है, वहाँ
उनके मस्तिष्कका द्वार सदा
के प्रवेशके लिए उसमें
कुछ देनेकी क्षमता रखते थे
किसानो और मजदूरोमे
उन्होने वहाँ सबके सामने
इतिहास और तत्सम्बन्धी
करते थे, उससे उनका प्रकाड
छाप छोडता था।
सगठन उन्होने आगे चलकर
स्व० सरदार पटेल-जैसे
उसकी पूर्ण रूपरेखा
४४में ही लखनऊ सेण्ट्रल

कम्युनिस्टो द्वारा १९४
हुआ, उससे वे दु:खित हुए।
में प्रभाव कितना घातक
हम लोगोके सामने जैसा
वे करते थे, वह वैसा ही हमारे
फल हुआ कि बाहर निकल
इस कार्यमें सहयोग देनेके
सीमित साधन और
इस आन्दोलनकी जो
बनाकर खडी कर दी, वह
मेरी समझमें कठिन प्रतीत
जबकि हर प्रकारकी बाधाएँ
समाजवादी दलके अपने ही
घोर उपद्रव मचानेवाले
क्षेत्रके हर कोनेके हर गोशेमें
और मिटानेमें सतर्क और
एक कुशल
हरिहरनाथ छोटे-छोटे

टूटती न थी। एक विचार दूसरेसे टकराता न था लड़ता न था। उसकी जैसे एक मंजिल होती थी। उक्तियोंमें पीछ तक होता था। तर्क प्रमाण-समर्थित वस्तु प्रतिपादन की ऐसी कला बहुत कम व्यक्तियोंमें मैंने देखी है। वे धीरे धीरे अपने पक्षका प्रतिपादन प्रारम्भ करते थे। प्रतिज्ञा-हेतु उदाहरण उपनय और निगमनके पंचावयव वाक्य द्वारा एक कुशल नैयायिकके नाई हरिहरनाथ अपने पक्षकी स्थापना करते थे। तर्क-संगत विचार प्रणालीके आधारपर ही हरिहरनाथने समाजवादी विचार होते हुए भी कांग्रेसका त्याग नहीं किया। मुझे अपने विचारोंका शत प्रतिशत साम्य इस दिशामें हरिहरनाथके विचारोंमें ही दिखाई पड़ा।

उस दिन वे बाहरसे आए। मैं पालम हवाई अड्डे पर उनकी पत्नी और मित्रोंके साथ उनको लेने गया। दूसरे दिन हमने साथ भोजन किया। शकुन्तलाजी उनके साथ था। मैं नहीं जानता था कि अपने प्यारे हरिहरनाथ के साथ यह अन्तिम भोजन और अन्तिम मिलन है। हाय हरिहरनाथ! तुम अद्भुत और अलौकिक थे। तुमने संसदमें अथवा विधान-सभा अथवा संविधान-परिषद्में कभी भूलकर भी तो श्रमिक समस्याके अतिरिक्त किसी अन्य बातको ओर अपने ध्यानको जाने नहीं दिया। एक निष्ठा और एक व्रतसे केवल इसी एक समस्यापर अपने जीवन को उत्सर्ग किया और उसीपर ध्यान रखा। तुम सच्चे व्रती थे। रामभक्तका एक ही व्रत होता है—राम राम रट राम राम रटु राम राम जपु। इसी प्रकार सोते जागते उठते-बैठते लिखते-पढ़ते और बोलते श्रमिकोंकी समस्या का समाधान ही तुम्हारे जीवनका व्रत रहा है और इस व्रत को पूर्ण करनेवालेको जो सद्गति प्राप्त होनी है उसको तुमने प्राप्त किया। आज तुम्हारी स्मृति हमें विह्वल करती है। तुम्हारा चित्र बोलने लगता है। तुम अमर हो!

स्व० 'रंजन'जी

श्री घनश्याम सेठी

हृष्ट-पुष्ट शरीर मस्तकके बाल आधे भागको ढँके चेहरा भारी छोटी-छाँटी तितलीनुमा मूँछ आँखें छोटी पर चमकीली कद औसत सरल स्वभाव ध्येयके प्रति अडिग विश्वास और नैसर्गिक निर्भीकता—यह थे रंजनजी जो गत १८ जनवरीको केवल ३९ वर्षकी अवस्थामें हा हमसे सदाके लिए विदा हो गए! प्रो० रंजन (वास्तविक नाम रघुवीरसिंह) का जन्म उत्तर प्रदेशके टसेपुर नामक ग्राममें २७ दिसम्बर १९१६को हुआ था। उनके पिता जमींदारी घराना ठाठे थे। कुछ काल तक वे ग्वालियर सरकारकी सेवामें भी रहे। कुछ समय तक क्षत्रिय महासभाके उपदेशक रहकर उन्होंने वानप्रस्थ ले लिया। सन् १९२०में रंजनजी हाई-स्कूलकी परीक्षा देकर स्वतंत्रता संग्राममें कूद पड़े। नमक कानून भंग करनेपर प्रथम बार भारतमें जेल काटनी पड़ी। बाहर निकलनेपर आपने पक्का निश्चय कर लिया कि इस्वर स्वतंत्रता-संग्राममें विदेशियोंसे लोहा लेना होगा। राजपूत रक्त उनकी धमनियोंमें बह रहा था निर्भीकता उनके खमीरमें घुली हुई थी। घरमें जमींदारी थी इसलिए उनके बजुर्गोंको इस प्रकारकी देश-सेवासे चिढ़ थी जो जमीनें जब्त करा दे।

राष्ट्रीय आंदोलन और जल-यात्रा

कुछ समय बाद आप उच्च शिक्षाके लिए काशी विद्या पीठमें भर्ती हुए जहाँ सर्वश्री श्रीप्रकाश सम्पूर्णानन्द और आचार्य नरेन्द्रदेव-जैसे अध्यापकोंने इस कमठ व्यक्तित्व आचरण को मांजा। १९३७में आपने एम० ए० और साहित्यरत्नकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् १९३९ तक प्रताप हाईस्कूल कानपुरमें प्राध्यापकका काम भी किया। १९४२ के आन्दो लनसे पूर्व आप वनस्थली बालिका विद्यापीठमें काम करते थे। परन्तु ज्यों ही वह उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ आपने उसमें अपना सक्रिय सहयोग दिया। इसी सम्बन्ध में आपको पकड़ लिया गया। मुकद्दमा चला। पर मुकद्दमेमें सरकार हार गई और तब मुगमा अभियुक्त के अपराधमें रंजनजीको अजमेर-जेलमें रखा गया। वहाँ भी आपकी निभयता रंग लाई। एक अन्य बन्दीके साथ आप अधिकारियों और पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंककर जेलसे भाग निकले! महीनों इधर उधर भटके फिरे। इलाहाबादमें पंडित सुन्दरलालजीके यहाँ रहकर ये फिरोजाबाद पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके पास पहुँचे। वहीं आप चतुर्वेदीजी के पास चार-पाँच महीने रहे। फिर मासिक दिनोंमें

एम० ए० करनेकी धुन सवार हुई। नागपुर जाकर आपने परीक्षा दी और विशेष योग्यताके साथ प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। रजन नाम आपने उन्हीं दिनों अपनाया था।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें

सरकारकी तलवार सिरपर लटक रही थी पर आप इस ओरसे निश्चिंत और लापरवाह होकर अपने काममें संलग्न रहते। वर्धा पहुंचकर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें आपने कार्य आरम्भ किया। वहां जो लापरवाही की वह आपको एक बार फिर जेल ले गई। यूनिवर्सिटीसे अपना डिपाजिट वापस मंगवाते समय आपने रघुवीरसिंह



स्व० रजन जी

मार्फत श्री रजन राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति वर्धाका पता दिया। पुलिस तो टोहमें थी ही और पुलिसको यह शक भी हो चुका था कि हो न हो प्रो० रजन और रघुवीरसिंह एक ही व्यक्तिके दो नाम हैं। उंगलियोंकी शनाख्त करके पुलिसने आपको रघुवीरसिंह प्रमाणित कर दिया। फिर

फिर रजनजी वर्धा
की हैसियतसे आपने सारे
शाखाएं स्थापित की हिन्दीके
मनमें श्रद्धा और सद्भावना
अनेक भवन अहिन्दी प्रान्तोंमें
रजनजीने ही शुरू किया था
वाचनालय तथा प्रचार-संस्थान

मध्य एशियाकी

बहुत समय तक एक ही
प्रतिकूल था। यों तो
सन्यासियोंके लिए होता है पर
त्यिक परिव्राजक थे।
भ्रमण वे अवश्य करते थे।
था। आपकी बड़ी अभिलाषा
को देख समझ सकें। सब
देशोंका भ्रमण वे कर सके
हमारे पड़ोसी देश पुस्तकमें
वे जो-कुछ भी बचा पाते वहीं

हैदराबादसे प्रकाशित f
सम्पादन भी आपने किया
श्रमके कारण उसका रूप एक
का हो गया था। पर जब
प्रकाशन स्थगित कर दिया गया
की यात्राके लिए निकल
जो उन्होंने लौटकर लिखे नि
महत्वपूर्ण देन हैं। ये यात्रा
स्याम श्रीलंका बर्मा तथा
द्वीपोंसे सम्बन्धित थे हिन्द
पत्रिकाओंमें पाठकोंकी नजर

खेती बाड़ीका

यात्रासे लौटकर आप
१९५२में आपका मन
सामुदायिक आधारपर खेती
थे। उपयुक्त भूमिकी
ग्वालियरके समीप श्योपुर
जीवनका एक नया दौर शुरू
अन्तकी पृष्ठ-भूमि भी बना।

जब उन्होंने किया, तो दिलने जवाब दे दिया। वे हृदय-रोग से पीडित हो उठे। हृदयकी गतिमें अन्तर पड गया और बुरी तरहसे हृत्पिण्ड विस्तृत हो गया। अभागा बुद्धिजीवी श्रमजीवी कैसे बन सकता है इस देशमें ? उनका यह नया प्रयोग एक भयकर रोगके रूपमें उनसे चिपटकर रह गया।

घातक रिक्शा-दुर्घटना

बहुत दिनो तक नागपुरके चिकित्सालयमें रहकर वे पुन हैदराबाद आकर बुद्धिजीवी हो गए और अग्रवाल महाविद्यालयकी प्रधानाध्यापकी स्वीकार कर ली। इस गभीर बीमारीमें भी उन्होने अग्रवाल हाईस्कूलको कालेजमें परिणत किया। कालेज बननेमें कई रुकावटे थीं, स्थितियाँ भी प्रतिकूल थी, परन्तु वे हतोत्साहित नही हुए। आखिर उनकी साधना और लगन रग लाई, उनकी चिन्ता का निवारण हुआ और हिन्दी-भाषियो द्वारा स्थापित यह स्कूल आर्ट और साइसके कालेजके रूपमे बदल गया और रजनजीकी देख-रेखमे बडी सफलताके सथ चल निकला। कालेजके उद्घाटनके एक-दो रोज पहले वे एक रिक्शा-दुर्घटनामें बुरी तरह घायल हुए और एक मास तक खाटने उन्ह नही छोडा। इस हादसेने उनके स्वास्थ्यपर बहुत बुरा प्रभाव डाला।

परिश्रमकी उन्हें सख्त मनाही थी। फिर भी वे निश्चिन्ततापूर्वक देशमे इधर-उधर विचरते फिरे। हाल हीमें पटनासे आए थे। रास्तेमे नागपुर उतरकर पत्नी तथा बच्चोको मिलते आए थे। १६ जनवरीको वे प्रदर्शनी देखकर लौटे। उस समय तक अस्वस्थताकी कोई सलामत प्रकट नही हुई थी। परन्तु आधी रातके समय अचानक उन्हें कै हुई और कुछ ही देरमें उनके शरीरका दाहिना भाग पक्षाघातका शिकार हो गया। तब उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया और फिर वही जिन्दगी और मौत की कशमकश शुरू हो गई। 'कल्पना'-सपादक श्री मुनीन्द्रजी अन्ततक उनके पास थे। उनका कहना है कि ऐसा सघर्ष उन्होने बहुत कम देखा था। आखिर १७ जनवरीकी रातको मृत्युकी जीत हुई, जिन्दगी हार गई।

अपने पीछे रजनजी एक नि सहाय पत्नी और दो छोटे बच्चोंके सिवा अपना बहुत-सा अप्रकाशित साहित्य छोड गए हैं। जीवनके सग्राममे एक वीर सैनिककी तरह रजन जीने सीना तानकर चोटोपर चोटें सही और कभी उफ् तक नही की। अपनी घुमक्कड-वृत्ति और पत्रकारिताके कारण रजनजी जमकर कही बैठ न सके। अत कोई स्थायी साहित्यकी चीज लिखनेका उन्होने प्रयत्न ही नही किया। पर स्वस्थ, सयत और ओजपूर्ण शैलीमे लिखी गई उनकी स्फुट रचनाएँ भी उनकी प्रतिभा, परिश्रमशीलता और स्वतत्र चिंतनकी अच्छी परिचायक हैं। अपने स्वाभिमानके कारण वे कभी भी अपने-आपको या अपनी चीज़ो को प्रकाशमे लानेको उत्सुक नही थे। इसलिए उन्हें प्रकाशमे लाना और उनके स्त्री-बच्चोकी खोज-खबर लेना उन हिन्दी-भाषा-भाषियोकी ज़िम्मेदारी एव कर्त्तव्य है, जिनकी सेवामे राष्ट्रके इस सपूतने अपने जीवनके श्रेष्ठ अराका लगा दिया। जो एक बार भी रजनजीके सम्पर्कमें आए हैं, वे उन्हें भूल न सकेंगे।

आत्महत्या

श्रीमती सोमा वीर

"मीठे-रसीले आम दसहरी, मीठे रसीले ए-ए " सडकपरसे फलवालीकी अनवरत पुकार सुनाई दे रही थी। लेनेका मन न हो, तब भी मन कर आए—ऐसी ही मधुर आह्वान-भरी पुकार थी वह। सुमन्त बडी देरसे इसे अनसुनी कर रहा था। परन्तु ठीक द्वारके सामने खडी हो, जब फलवालीने पुन वही गुहार मचाई, तो सुमन्तकी उँगलियोने उसे बुला ही लिया।

दो सेर आम ले वह अन्दर आया। आम टोकरीमें रख दिए और कुर्तेकी जेबमें से पैसे निकालने लगा। परन्तु जेब खाली थी। उसने पुकारा—"चन्दा, मेरे कुर्तेकी जेबमे पाँच रुपएका नोट पडा था न।"

"तो पडा होगा उसीमें।" अन्दरसे ही उसका तीखा स्वर गूँज उठा।

"इसमें तो नही है।"—सुमन्तने फिर पुकारा।

"नही है, तो मैं क्या करूँ ?" और चन्दा दनदनाती हुई आ पहुँची। बोली—"चीज इधर-उधर रख देते हो और आफत आती है मेरी। इसीमें होगा, जायगा कहाँ ?"

उत्तरमें सुमन्तने दोनो जेबें उलट दीं।

"तो मुझे दिखा क्या रहे हो ? तुम्हींने रखे होंगे और कहीं।"—वह तुनककर बोली।

"नहीं, मैंने तो इसीमें रखे थे, मुझे अच्छी तरह याद है।

कलकी ही तो बात है। पाँच रुपएका कोयला लाया था और बाकी पाँच इसीमें रख दिए थे।"

"तब कौन ले गया? घरमें नौकर-चाकर है नहीं। एक महरी है, सो वह इस कमरेमें झाँकती तक नहीं। मैंने तो तुम्हारा कुर्ता छुआ भी नहीं। हाँ, यदि तुम्हारे लाडले ने चुरा लिए हों, तो मैं जानती नहीं।"

"क्या कह रही हो तुम ?"

"मेरी बातका तुम्हें विश्वास क्यों होने लगा भला! मैं दूसरी माँ जो ठहरी! बुलाकर पूछ न लो उससे। मेरी बात झूठ निकले, तो जो चोरकी सज़ा, सो मेरी सज़ा।"

सुमन्त हतबुद्धिकी तरह उसका मुँह ताकता ही रह गया। पाँच रुपए तो क्या, लडकेने कभी पाँच पैसे भी बिना पूछे नहीं लिए थे। परन्तु चन्द्राका तर्क भी तो असगत नहीं लगता था। लेनेवाला और था ही कौन? हो सकता है उसे कोई जरूरत पड गई हो और बताने या पूछनेका अवसर न मिला हो। उसने स्वर ऊँचाकर पुकारा—"किशोर, जरा यहाँ तो आना।"

किशोर सामने आ खडा हुआ। भोला-भाला-सा तेरह वर्षीय सुकुमार, जिसके नैनोंमें अभीसे प्रौढताकी गम्भीर छाप थी।

"तुमने इस कुर्तेमें से रुपए लिए थे, बेटा?"—मृदु प्यार-सहित सुमन्तने पूछा।

"नहीं तो।"—उसने कुछ चकित होकर कहा।

"तुमने नहीं लिए, तो किसने लिए?"—चन्द्रा व्यंग-पूर्वक बोली—"और कौन आता है इस कमरेमें?"

कारण-अकारण विमाताके ताने व धमकियाँ सुनते-सुनते किशोरका कोमल हृदय छलनी हो चुका था। सिर झुकाकर सब-कुछ सुन लेना और कुछ उत्तर न देना, यही प्रण वह किए बैठा था। किन्तु चोरीका अपराध सिरपर मढे जाते देख वह बेतरह चिढ गया। एक टेढा उत्तर दिए बिना वह न रह सका। बोला—"मुझे क्या मालूम? मैं क्या दिन-रात तुम्हारे कमरेका पहरा देता रहता हूँ?"

सुमन्त दग रह गया। चन्द्रा रोषमें भरकर चीख उठी—"जवाब देता है नालायक! ऐसे बेटेसे तो बेटा न होना अच्छा। चोरी करता है और ऊपरसे झूठ बोलता है! लाज नहीं आती तुझे जरा-जरा-सी बातपर झूठ बोलते?"

एक बार जबान खुल जाती तो उ

कभी लाज नहीं आती, तो मुझे ही तो बेटा हूँ न!"

"देख रहे हो! सुन रहे के नयनोंसे टप्-टप् आँसू

"छि किशोर, क्या माँसे

"बस, केवल यही?"—उठी—"और कोई बाप बेटेकी चमडी उधेडकर रख बढता जा रहा है। आज तो कल घरका सारा सामान नहीं।"

"देखो किशोर"—सुमन्त "माता-पितासे पूछे बिना रुपए चाहे कितना ही आवश्यक दो अब भी कि किसलिए

किशोर तडप उठा। है, डैडी? जब मैं कह रहा हूँ

चन्द्राने मुँह बिराकर कहा है न जो डैडी झटसे विश्वास कमीनेपनकी बाते नहीं करेगा कैसी सतवन्ती थी!"

दिवगता माँका यह जा पहुँची! उचित-अनुचि की आँखोंमें खून उतर आया विमाताके मुँहपर जड दिया।

चन्द्राकी आँखोंमे आँसू हथेली रख वह फलवालीको पै

अपनी आँखोंके सामने मेद रोषसे सुमन्त काँप उठा। उठा और गिरा। उसे होश रहा है और किशोर चुपचाप एक आह तक न निकली, एक उसका छोटा लडका आकर उ "क्या है डैडी? क्यों मार रहे

अबोध बालकका क्रन्दन आया। उसे गोदमें उठा उसके छिपा वह तेज़ीसे बाहर निकल

हँसती थी गाती थी और वह मचल मचलकर लोटता था। मा दुलार कर-करके मनाती थी। पर आज कोई नहीं है ऐसा जिसकी गोदमें मुँह छिपा वह जी भरकर रो सके। तब रोनेसे क्या लाभ ?

(२)

भाग्यवान सुख-स्वर्गमें बसते है कठोर वास्तविकताकी यह निर्मम धरती है अभागोंका। किसीका भाग्य अधिक खोटा है, किसीका कम। बस केवल इतना ही तो। धरतीपर राजाके पुत्र भी पलते है और दीन-अभागे राहकी धूलिमें लोटनेवाले अनाथ भी। सबकी सुधि लेनेवाला वह ईश्वर तो एक ही है न। वही तो है जगत नियन्ता जगत पिता जड चेतनका विध्वंसक और निर्माता।

क्षणिक सुख भोगकी पूर्त्तिके लिए जो पुरुष उसके जन्मका कारण बना था स्नेहकी उस कडीके टूट जानेपर यदि वह आज अपनी उस भूलके लिए पश्चात्ताप करता है तो क्या उसके लिए यह उचित है कि जोंककी तरह उससे चिपटा रहे ? मूक बधिर-पंगु बन उसके घृणित आश्रयमें जीवनके क्षण गवाता रहे ? जब पत्थरमें रहनेवाला अदना कीडा भी अपनी उदर-पूर्त्तिके लिए साधन जुटा लेता है तब दो हाथ और दो पैरोंवाला स्वस्थ सबल वह मानवकी सन्तान क्या अपने जीवनका लक्ष्य स्वयं न खोज सकेगा ? किशोरका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था। दोनो हथेलियोंके बीच मुख छिपा वह तकियेमें सिर गडाकर पड रहा।

और आत्मग्लानिसे सुमन्तका हृदय फटा जा रहा था। आज उसने मातृहीन किशोरको मारा था ! अपने शिशुको अपने लालको !! क्योंकि वह अपनी माका अपमान सहन नहीं कर सका था ? सुमन्तका हृदय रो रहा था पर उसकी आँखें जल रही थीं। उसका अन्तर्मन उसे बार-बार धिक्कार रहा था—अपनी भावनाएं तो भुला ही चुका था अभागे उसकी भावनाओंका भी आदर न कर सका तू ! छि ! मनुष्यता भुलाकर एकदम पशु बन बैठा तू जिन हाथोंमें मृत्यु-शय्यापर पडी पत्नीकी अलकें सँवारी थीं जिन हाथोंसे उस बेहाल-बाल-बवलिताका हाथ थाम वचन दिया था कि केवल पिता ही नहीं उस अभागे शिशुकी माँ भी बनकर रहूंगा आज उन्हीं हाथोंसे अपने उस रक्त बिन्दुके अन्तस्तलमें अपने प्रति घोर घृणा भर दी ! माँ बनना तो दूर रहा पिताका कर्त्तव्य भी पूरा न कर सका ! हाय अभागे क्या यह घृणा अब इस जन्ममें दूर हो सकेगी ? क्या वह शिशु अब भी तेरा वही लाडला बेटा बना रह सकेगा ?

क्या नहीं रह सकेगा ? पिता-पुत्रकी ममताका बन्धन इतना कच्चा नहीं कि ऐसे आसानीसे टूट जाय। —सुमन्तने जोरसे कहा। हृदयके उद्गार मुखसे निकल पडे तो उसके टूटते हृदयको और बल मिला। उसने मन-ही-मन सोचा कि वह पुत्रसे क्षमा माँगेगा और भविष्यमें उसे चन्द्रासे दूर ही रखेगा।

लडका अब बडा हो गया है। जरा-जरा-सी वस्तुके लिए पैसे मांगनेमें उसे संकोच होता होगा। जहाँसे भी हो जैसे भी हो उसे कुछ जेब-खर्च अवश्य देना होगा। अब वह अबोध नहीं समझदार है। घरकी आर्थिक स्थिति उससे भलीभांति अवगत है। वह कभी पैसे व्यय नहीं कर सकता। फिर वह स्वयं भी इतना दरिद्र नहीं कि बच्चेकी एक साध भी पूरी न कर सके। पत्नीके लिए माला लिपस्टिक पाउडर आदिमें न जाने कितने रुपए फुक गए किन्तु किशोरकी एक भी बाल इच्छा पूरी न हो सकी। एक कैमरा यदि खरीद ही लिया गया होता तो कोई बडा भारी कमी न आ जाती। तर्क द्वारा पश्चात्तापको पराजित कर सुमन्त मन-ही-मन उत्फुल्ल हो उठा। उस दिन कार्यवश वह बाजार न जा सका और इस कारण पुत्रको समक्ष बुलानेका साहस भी न कर सका।

(३)

अगले दिन दफ्तरसे लौटते समय सुमन्त एक सुन्दर-सा कमरा खरीदता लाया। आज उसके पैरोंमें मानो पंख लग गए थे। पुलकित मनके आगे बार-बार एक मनोकल्पित दृश्य नाच उठता था। जब वह किशोरके हाथमें कैमरा देगा तो उसके नेत्र एकदम चमक उठेंगे। वर्षोंकी अधूरी इच्छा पूरी होते देख उसका चेहरा कमल-सा खिल उठेगा। तब उसे अपने अंकमें भर उसका मुख चूम लेगा और अपने अपराधके लिए क्षमा भी मांग लेगा। न जाने कबसे उसने पुत्रको चुम्बन नहीं दिया। यह बात भी आज उसे याद आई। वह अधीर हो उठा। उस अप्रत्याशित उपहारको स्पर्श पानेके लिए उसका वात्सल्य फडक उठा।

घरकी चौखटमें पैर रखते ही उसने पुकारा— किशोर अरे ओ किशोर।

किसे पुकार रहे हो ! —चन्द्राने आकर कहा— कलसे उसका तो कहीं पता भी नहीं है। वह तो एकदम आवारा हो गया है।

कलसे ? कहां वह गया है ? क्या वह सारी रात बाहर रहा ?

मेरा जी मैं तो यह-सब रोग लगा हुआ है ! दूसरी माँ जो ठहरी ! —चन्द्रा तनकर बोली— दोपहरको भोजन नहीं किया। बुलाने गई तो मुँह ढककर पड रहा।

शामको मैंने उसे बाहर जाते देखा। सीधे-से पूछा कि कहाँ जा रहा है, तो अँगूठा दिखाकर चलता बना।"

"रातको भी नही आया ?"—मूढ भावसे सुमन्तने पूछा।

"कह तो रही हूँ कि नही आया।"—चन्द्रा झुंझला उठी।

"तब तुमने मुझे रात ही क्यों नही बताया ?"

"बताती क्या ? मुझे क्या पता था कि हजरतने रात-भर आवारगी करनेकी ठानी है ! नौ बजे, दस बजे, नही आया, तो मैं भी द्वार बन्दकर लेट रही। सोचा था कि आकर खटखटायगा, तो खोल दूँगी।"

"सच पूछो, तो वह तुम्हारे ही डरसे नही आया।'—सुमन्त एकाएक गरज उठा—"लौटनेमें उसे कुछ देर हो गई होगी और आधी रात तुम्हारी विष-भरी वाणीकी अनवरत गूंजसे मुहल्लेको जगाना उचित न समझ वह बाहर ही कहीं पड रहा होगा।"

"हाय री माँ, मुझे मौत क्यो नहीं आ जाती !"—चन्द्रा तत्क्षण पैर फैलाकर रोने बैठ गई—"मेरी बातोमें ऐसा ही जहर भरा है, तो मुझे ही जहर क्यो नही पिला देते ? तुम बाप-बेटे मजेसे रहना फिर। तब मैं "

पर आज उस क्रन्दनपर सुमन्तका ध्यान न गया। उसके नेत्रोंमें अश्रु छलक आए। बोला—"वह अवश्य घर छोडकर भाग गया है, चन्द्रा ! उस मातृहीन बालकको कल मैंने मारा था। हाँ, अपने इन्ही हाथोसे। उफ् !'

रोना छोड चन्द्रा भिन्ना उठी—"मारा था, तो क्या हुआ ? मार किस लडकेपर नही पडती ? इसीलिए क्या सब घर छोडकर चल देते हैं ? अरे छुट्टीके दिन हैं, मौज कर रहा होगा कहीं। आ जायगा शाम तक।'

सुमन्तने अपना सिर धुन डाला—"नही, अब वह नही आयगा। कभी भी नही। उस सुकुमार शिशुकी कोमल देहमें मेरा ही रक्त है, चन्द्रा। गहन अपमानका ऐसा तीखा घूँट वह कदापि न पी सकेगा। मेरी मार कदाचित् वह सहन कर लेता, किन्तु उपेक्षाने उसका दिल तोड दिया होगा। कल सारे दिन और सारी रात मैंने उसकी खबर नही ली। उफ्, मैंने अपने हाथो अपने पुत्रका जीवन नष्ट कर डाला !"

"अजीब आदमी हो तुम भी। क्रोधमें भरकर यदि चला भी गया, तो लौट आयगा शाम तक। भूख लगेगी,

दिन-भर सडकोकी धू
लौटा, तो द्वारपर ही
उठ ही न सके। चन्द्रा
बैठी थी। देखते ही उसे

अपना सर्वस्व, अपने
खोज करेगा वह अपने
सुमन्तने। एकके बाद
अडौसी-पडौसी, निकट
खबर देना तो नही भूला
पता न लगा। रस्सी
भी धारी पड जाती है।
सुनते सुमन्तको भी
सच ही नालायक था।
माँ-बापका मुख काला
तरहसे अच्छा ही हुआ।
चिन्ता-जर्जरित तन-मन
रोया करता था। धीरे-

चन्द्राने आकर
तुम्हारे सपूतका समाचार

अन्धकारमें जैसे
सिर उठाया।

चन्द्राने कहा—"ये
वे कल सनीमा गई थी।
लाडले खडे थे और सगमें थे

सुमन्तका सिर झुक
"मैं यह नही मान सकता।"
उसका स्वर निश्चयात्मक
रहा था कि जिस लडकेकी
अभी केवल आठवी कक्षामें
दो पैसेकी मजदूरी कर लेने
एक पखवाडसे वह कहाँ
चार दिन बाद स्कूल खुल
होता नही ? माना कि उ
किन्तु इसका यह अर्थ तो

तभी बूढी महराजिन
आते ही बोली—"अरे

ही मैं अवाक् रह गई, बेटा। बच्चेका फूल-सा मुख कुम्हला-कर रह गया है। गोदमें बैठाकर पूछा—'इतने दिन कहाँ छिपे रहे, लल्ला? तुम्हारे बापू खोज-खोजकर हार गए।' तो वह चुप बैठा रहा। रामकिशनने ही कहा—'वसन्त सिनेमामें नौकरी कर ली है इसने। कहता है कि दिनको पढ़ूँगा और रातको कमाऊँगा। मैंने कहा—'यह कैसा पागलपन है, भैया? यह क्या तेरी नौकरी करनेकी उम्र है? खाओ-पिओ और ' पर उसने तो मुझे बात ही पूरी न करने दी। चिढ़कर बोला—'और ये जो जरा-जरासे लड़के दिनमें भीख माँगते हैं, जेब काटते हैं और रातको चोरी करते हैं, ये क्या इनकी भीख माँगनेकी उम्र है, मिसरानी माँ?' मेरी तो बोलती बन्द हो गई, बेटा। क्या कहूँ उस बच्चेसे, समझ न सकी। वह फिर बोला—'मैं जानता हूँ मिसरानी माँ कि तू क्या कहना चाहती है। इसीलिए मैं किसीसे मिलता नहीं। किसी जान-पहचानवालेको देखते ही छिप जाता हूँ। जाने किशन भैयाने कैसे देख लिया मुझे। मैं जानता हूँ कि जो कोई मिलेगा, यही कहेगा कि ग़लती तुम्हारी ही है किशोर। जाओ, घर जाओ। माँ-बापसे माफी माँग लो। भले लड़कोंका यही काम है। ग़लतीकी बात तो मैं जानता नहीं, मिसरानी माँ, बस इतना जानता हूँ कि अब जीते-जी उस घरमें पैर न रखूंगा। ये दोनों आँख फोड़ लूँगा, पर उस घरकी मालकिनका मुँह न देख सकूँगा।'

बात पूरी होते-न-होते चन्द्रा उठकर झनाकेसे अन्दर चली गई। सुमन्तके नयनोंसे झर-झर नीर गिर रहा था। सिसिककर बोला—"न-जाने कैसी मत मारी गई थी मेरी भी मिसरानी माँ, जो मैंने दूसरा विवाह कर लिया। फूल-सा बेटा था। उसके सहारे एक नहीं, सात ज़िन्दगी कट जाती। अब तो तीन-तीन ज़िन्दगिएँ बर्बाद हो रही हैं।'

मिसरानीके नयन गीले हो उठे थे। पर उसने झिड़ककर कहा—"छि बेटा, ऐसी बात नहीं कहते। ज़िन्दगी बर्बाद हो तेरे दुश्मनोंकी। लड़ाई-झगड़ा किस घरमें नहीं होता? चलना कल मेरे साथ। माँ-बेटा चलकर उस पाजीको मना लायेंगे।'

"वह अब नहीं आयगा, मिसरानी माँ।

"आयगा कैसे नहीं? इस तरह अधीर नहीं होना चाहिए, भैया। आखिर वह तेरा ही तो बेटा है। जन्मकी माया-ममता ऐसी आसानीसे थोड़े ही टूट जाती है। वह कहाँ चल दी? ले ये पाँच रुपए दे देना उसे। मैं चली।'

"कैसे रुपए?"

"अरे, अभी उस दिन एकाएकी किशनाके ससुर आ गए थे। घरमें कुछ था नहीं। मैंने सोचा, चिन्ता क्या है, अपनी लक्ष्मी बहूसे ही माँग लाऊँ। पहले तो वह बोली कि है नहीं। मेरा जी धक्-से हो गया। तभी वह सोचकर बोली कि देखूँ शायद उनके कुर्तेकी जेबमें पड़े हों। कोयला तो थोड़ा-सा ही लाए थे।"

"चाची!"—सुमन्तका हृदय बैठा जा रहा था।

"क्या करूँ सुमन्त, इससे पहले लौटा ही नहीं सकी, बेटा। कल ही तो किशनाको तनख्वाह "

उसकी मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई, क्योंकि उस नोटको सुमन्त टूक-टूक किए डाल रहा था। उसकी लाल-लाल ज्वाला उगलती आँखोंको देख वे डरकर बोली—"सुमन्त यह क्या कर रहे हो, भैया? लछमीपर गुस्सा नहीं उतारा जाता।"

सुमन्तने उन फटे टुकड़ोंको मुट्ठीमें भींचकर मसल डाला और कहा—"किशनको अभी भेजना चाची, मैं अभी उसे लेने जाऊँगा।"

द्वारकी ओटसे चन्द्रा बाहर निकल आई। बोली—"वह आवारा है, बदचलन है, वह मेरे घरमें पैर नहीं रख सकता।"

सुमन्तने फटी-फटी आँखोंसे उसकी ओर देखा, मानो उसे पहचानता ही न हो। फिर धीर-गंभीर भावसे कहा—"घर जितना तुम्हारा है, उतना ही उसका भी है। रही आवारा होनेकी बात, सो वह अभी आवारा नहीं हुआ है। किन्तु यदि तेरी सोहबतमें रहा, तो निश्चय ही आवारा हो जायगा।"

चन्द्राकी सारी देहमें मानो आग लग गई। तड़पकर बोली—"अपनी बेज़बान पत्नीको झूठ-मूठ कलंक लगाते तुम्हें लज्जा नहीं आई? मुझे बदचलन कहनेसे पहले '

'मेरी ज़बान कटकर क्यों नहीं गिर गई, यही न?" —सुमन्तने हँसकर कहा—"महारानी, तुम्हारी ज़बानकी मिठाससे मैं भलीभाँति परिचित हो चुका हूँ। उसमें अब और अमृत घोलनेका प्रयत्न मत करो। सुन लो कान खोलकर कि किशोर यहीं रहेगा, इसी घरमें। और जैसा व्यवहार तुम नन्हेंके साथ करती हो, वैसा ही उसके साथ भी करना होगा। नहीं तो याद रखना, मैं तुम्हारे नन्हेंको घरसे निकालकर आवारा बना दूँगा।"

चन्द्राने तड़पकर अपना अन्तिम अस्त्र प्रयोग किया। कहा—"यदि वह इस घरमें आयगा, तो मैं अपने नन्हेंको मार, स्वयं आत्म-हत्या कर लूँगी।'

सुमन्त ठठाकर हँस पड़ा। कहा—"तुम्हारी आत्मा शेष है ही कहाँ, जिसकी अब हत्या करोगी? उसकी तो तुम नित्य सौ-सौ बार हत्या किया करती थीं, जबकि तुम दो अबोध बालकोंमें भेद किया करती थीं। किसीकी बाल-सुलभ चपलतापर प्रेम उमड़नेपर भी जब तुम अपनी आत्माका गला घोंट, उसका निरादरकर दूसरेसे स्नेह करती थीं। कुढ़-कुढ़कर आत्म-हत्या तो बहुत कर चुकीं, अब हँस-हँसकर जीना भी सीखो। आओ मिसरानी माँ, चलें।'

रूसमें पट-परिवर्त्तन

राजनीतिका एक विद्यार्थी

कम्युनिस्ट रूसके सम्बन्धमे बाहरी दुनियाकी जानकारी इतनी अपर्याप्त और अटकलोंपर आधारित है कि वहाँ होनेवाले बड़े-से-बड़े परिवर्तनोंके बारेमें भी निश्चयपूर्वक और सप्रमाण कुछ कह सकना बड़ा कठिन है। इसीलिए गत ८ फरवरीको जब स्तालिन द्वारा चुने गए प्रधान मन्त्री मलकोवने अपने पदसे इस्तीफा देनेकी घोषणा की, तो सारी दुनिया स्तब्ध-सी रह गई। सरकारी रेडियो, अखबारो, पार्टी और नेताओंकी ओरसे एक स्वरसे सामूहिक और सगठित रूपसे जो प्रोपेगेंडा होता है, वह इतना कृत्रिम और परस्पर विरोधी बातोंसे भरा होता है कि उसकी सचाई पर बाहरी दुनियाको विश्वास ही नही होता। अत यहाँ हम मास्कोसे पत्रो और रेडियो द्वारा हुई घोषणाओंके आधारपर ही इस पट-परिवर्त्तनके कारणो एव इसकी पृष्ठ-भूमिपर कुछ प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

कठोर पेशबदी किस लिए ?

गत फरवरीके प्रथम सप्ताहमें सुप्रीम सोवियत (रूसी पार्लमेंट) का एक सयुक्त अधिवेशन बुलाया गया। यह अधिवेशन आम तौरपर मार्च-अप्रैलमें होता है, पर इस बार विशेष कारणोंसे कई सप्ताह पहले ही बुला लिया गया। इसके १३४७ सदस्योंके सामने १९५५का बजट पेश हुआ और मलोतफने विदेशी नीतिपर भाषण दिया। बजटपर सरकार और पार्टीकी नीतिके सम्बन्धमें अर्थ-मन्त्रीका नही, कम्युनिस्ट पार्टीके प्रधान मन्त्री क्रूशेवका भाषण हुआ। ७ फरवरीको एक विशेष आदेश जारीकर मास्को और सोवियत रूसके १६ प्रजातत्रो की सुरक्षा-व्यवस्थाको नए सिरेसे सुसगठित एव सुदृढ किया गया और इसके अध्यक्ष को मन्त्रिमण्डलमें बैठनेका अधिकार दिया गया। इसके



ज्योर्जी मलकोव

दिन मास्को-रेडियोसे दो ... की ...

यथार्थ कारण समझनेके लि
बेरियाकी 'हत्या' के
कहते हैं कि स्तालिनकी
'सुरक्षा-पुलिस' (जिसके
राजनीतिक काली भेडोंकी
बन्दूके ही नही, मशीनगनें,
को घेर लिया और उनके
गश्त लगाने लगे। मल
और जूकोव आदिने इससे
कि वह सुरक्षा-पुलिसका
इस अदूरदर्शितापूर्ण गल्त
स्तालिनका उत्तराधिकारी
बादमें हुई अपनी
सैनिक सत्तावादी दुबारा
थे, अत उन्होंने प्रधान मन्त्र
पुलिस, सुरक्षा-पुलिस और
कर ली।

सुप्रीम कोर्टके

मलकोवके इस्तीफेके
प्रधान मन्त्री नियुक्त होनेके
मन्त्रीकी ओरसे जो पहली
कोर्टके छ जजोंकी बख
की नामजदगी। जिसे
का थोड़ा भी ज्ञान है, उससे
कोर्टके ७० जज और ३५
कानूनदाँओंमें से सुप्रीम
जाते हैं (मौजूदा सुप्रीम
हुआ था)। उन्हें या तो
या किसीके खिलाफ
सकता है। पर इन ६
बोरीसो ग्लेवस्की, इवान
एलेक्सिएविच यासीन, प
पीतर एलेक्ज़ेंद्रिएविच
स्तेसानोव और बोरिस

सुप्रीम सोवियतका अभिनय

उपयुक्त बातोंसे ही बिन पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि तथाकथित किसान-मजदूरोंके स्वर्ग में असली सत्ता किसके हाथमें है और उसका किस प्रकार उपयोग किया जाता है। पर स्वतंत्र और जनतंत्रवादी राष्ट्रोंकी आंखोंमें धूल झोंकनेके लिए रूसके तानाशाहोंने चुनावों की ओटमें जो एक निर्वाचित प्रतिनिधियोंके सुप्रीम सोवियतका भूत खड़ा कर रखा है उसकी नपुंसकता और असहायावस्था का ऐसा स्पष्ट दिग्दर्शन कम ही हुआ होगा जैसा कि इस अवसरपर हुआ। बजट वैदेशिक नीति सुरक्षाकी नई व्यवस्था ६ सुप्रीम कोर्टके जजोंकी बखास्तगी जर्मनीसे युद्ध स्थिति समाप्त करनेकी घोषणा आदिपर जैसे उसके १३४७ सदस्योंने बिना बोले हाथ उठा दिए वैसे ही उन्होंने मलेंकोव के इस्तीफे और उसके २॥ घंटे बाद बुल्गानिनकी नियुक्ति पर भी हाथ उठा दिए। अगर रूसमें चुनाव और जनताके प्रतिनिधित्वका कुछ भी अर्थ होता तो १३४७ सदस्योंमें से एकको भी इनमें से किसीपर भी मुंह खोलनेका साहस या आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई यह समझना जरा कठिन है। दुनियाकी राजनीतिके इतिहासमें यह एक विचित्र घटना है। हां इन्होंने केवल एक बार मुंह खोला और वह खड़े होकर ३ मिनट तक क्रूश्चेव की (अध्यक्ष या प्रधान मंत्रीकी नहीं!) जय बोलनेके लिए! और दास-वृत्तिके इस नपुंसक प्रदर्शनकी चरम परिणति तो तब हुई जबकि क्रूश्चेवने सुप्रीम सोवियतके इन १३४७ सदस्योंसे पूछा कि क्या किसीको और कुछ कहना है तब सबके सब चुपचाप खड़े रहे! भला जिस पेशबंदीके बाद सर्वसम्मत स्वीकृतिका यह अभिनय हो रहा था उसका आभास मिलने के बाद कौन सदस्य मुंह खोलनेका साहस कर सकता था?

मलेंकोवकी झूठी स्वीकारोक्ति

पर सुप्रीम सोवियतके सदस्योंका यह हास्यास्पद अभिनय भी उस समय फीका दिखाई लगता है जबकि हम मलेंकोवकी कायरता नपुंसकता और आत्म-ग्लानि भरी स्वीकारोक्ति पढ़ते हैं। गत ८ फरवरीके पत्रोंमें उसका जो इस्तीफा छपा है उसमें उसने कहा है— प्रधान मंत्री का पद राजकीय कार्य बहुत बड़े अनुभवकी अपेक्षा रखता है। मैं यह महसूस करता हूं कि मेरा स्थानीय अनुभव अपर्याप्त है और यह भी सच है कि मुझे व्यवस्थाका कभी कोई अनुभव नहीं हुआ। मलेंकोवकी प्रतिभा और योग्यताके बहुत कायल तो शायद कम ही लोग होंगे पर जो कुछ उसने अपनी अयोग्यताकी पहली स्वीकारोक्ति के रूपमें कहा है उसमें सचाई शायद नहीं है—यदि अगर इसमें कुछ भी सचाई है तो उनके सम्बन्धमें रूसी पत्रों और नेताओंने अबतक जो-कुछ कहा है वह सब झूठ था। हमारी इस धारणाके चार आधार हैं (१) पहला तो यह कि २० वर्षसे मलेंकोव स्तालिनका दाहिना हाथ था और स्तालिनके जीवन-कालमें ही काफी अर्से तक वह कम्युनिस्ट पार्टीका मंत्री रहा। इस पदपर रहकर उसने जिस योग्यता और तत्परतासे काम किया उसकी सभीने प्रशंसा की। (२) दूसरे महायुद्धके दौरानमें जबकि स्तालिनग्रादमें जर्मनोंके टैंकों और बमोंके आगे रूसके होश उड़ जा रहे थे तो नागरिक व्यवस्था और युद्धोत्पादनकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी मलेंकोवपर थी। विमानोंके उत्पादनका तो उसने रेकार्ड ही तोड़ दिया जिसके लिए उसे आर्डर आफ लेनिन देकर सम्मानित किया गया। (३) उसकी कार्य-कुशलता और अनुभवके कारण ही स्तालिनकी मृत्युके बाद स्तालिनने उसीको अपना उत्तराधिकारी चुना और काहिरोमें चर्चिलसे भेंट होनेपर इस बातका उल्लेख भी किया। (४) पिछले पार्टी-कांग्रेससे लेकर कमियोंकी हत्या तक पार्टी और राजकीय कार्योंके निर्णयमें मलेंकोव का प्रमुख हाथ रहता था। अतएव व्यवस्था-सम्बन्धी अयोग्यता और अनुभवहीनताके सम्बन्धमें उसकी स्वीकारोक्ति सच नहीं है।

दूसरा स्वीकारोक्ति उसकी थी कृषिकी असन्तोषजनक व्यवस्था। इस सम्बन्धमें उसने कहा— पार्टीकी कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम भारी उद्योगोंके और अधिक विकास पर निर्भर करता है। फिर उसने कहा— भारी उद्योगों की उन्नति ही कृषि और उपभोक्ता वस्तुएं बनानेवाले उद्योगोंके विकासका आधार हो सकती है। इस कथन

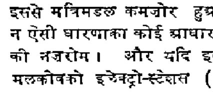


निकिता ख्रुश्चव

की असत्यताके दो आधार हैं (१) पहला तो यह कि स्तालिनकी मृत्युसे पहले और बादमें कृषि विभागका कार्य कभी भी सीधा मलेंकोवने नहीं देखा। यह जिम्मेदारी क्रूश्चेवकी थी जिसका दुर्नीतिसे न सिर्फ कृषिका उत्पादन ही घटा बल्कि किसानोंमें असंतोष भी बढ़ा। ( ) स्तालिनकी मृत्युके बाद ही मलेंकोवने स्तालिनकी भारी उद्योगोंकी प्रधानताकी नीतिको बदलकर उपभोक्ता वस्तुओंके निर्माणको प्रोत्साहन देनेकी नीति

अपनाई। गत ५ अगस्तको जब उसने सुप्रीम सोवियतमे इसकी घोषणा की, तो शायद उसके उन्ही १३४७ सदस्योने ३ मिनट तक हर्षध्वनि की, जिन्होने कि गत ८ फरवरीको मलकोव द्वारा ही इस नीतिको उलटकर फिर भारी उद्योगो को प्रमुखता देनेकी बातका भी सर्वसम्मतिसे समर्थन किया ! जो लोग मलकोवके मुंहसे इतनी वडी उल्टी और झूठ बात बुलवा सके, उनके कौशलकी सचमुच दाद देनी पडेगी।

तीसरी मिथ्या स्वीकारोक्ति मलकोवने यह की—"मेरी प्रधान मंत्रीके पदसे मुक्त किए जानेकी प्रार्थना इसलिए भी स्वीकार की जानी चाहिए कि इससे मन्त्रिमण्डलकी शक्ति बढेगी।" प्रथम तो स्तालिनकी मृत्युके बाद असली सत्ता मलकोव, क्रूश्चेव और बुल्गेनिनके हाथोमे आई। इससे मन्त्रिमडल कमजोर हुआ, ऐसा न कभी कहा गया, न ऐसी धारणाका कोई आधार ही था—कमसे कम रूसियो की नजरोमे। और यदि इसमे कुछ भी सचाई है, तो मलकोवको इलेक्ट्रो-स्टेशस (जिसका उसे कोई अनुभव नही !) का मन्त्री बनाकर (जबकि इस नियुक्तिसे पहले यह घोषणा तक नही की गई कि इस विभागके मन्त्री पावलेंको को कुछ ही दिन पहले अकारण बर्खास्त कर दिया गया है !) मन्त्रिमडलको कैसे सशक्त बनाया गया है ? अगर मलकोव की इस प्रकार राजनीतिक आत्म-हत्या करानेसे किसीको



निकोलाई बुल्गेनिन

लाभ हुआ है, किसीकी शक्ति और प्रभाव बढे है, तो वह स्तालिनपंथी क्रूश्चेव-गुट्ट और सैनिक सत्तावादियो का ही, जोकि भारी उद्योगो की उन्नतिके बहाने फिर रूस को युद्धोद्योगकी नई मंजिल की तरफ ले जाना चाहते है। और यदि मलकोव-जैसे अयोग्य और अनुभवहीन व्यक्तिके कारण ही मन्त्रिमडल दुर्बल था,तो उसे कोई दूसरा विभाग देना और उप-प्रधान मन्त्री बनाना क्या मानी रखता है ?

मलकोव और क्रूश्चेवको प्रतिद्वन्द्विता

मलकोवके इस्तीफेकी घटनाका महत्व रूस और शेष ससारके लिए स्तालिनकी 'मृत्यु' की ही भांति बहुत अधिक है। इतनी बडी घटना केवल उसकी अनुभवहीनता और

सुप्रीम सोवियतने जो मलकोव, आनेपर कोई खुशी जाहिर नही ३ मिनट तक खडे होकर हर्ष- क्रूश्चेवका आज रूसमे क्या स्थान दिन पहले जब पाश्चात्य या अर्थनीति ही नही, विरोध है, तो गत ५ फरव बातचीत करते हुए क्रूश्चेवने इसे और 'इच्छित कल्पना' घटेके अन्दर ही उसने सुप्रीम को हटाकर बुल्गेनिनको प्रधान

मलकोव और क्रूश्चेवकी म ही प्रकट होने लगी थी। विद्रोहको निर्ममतापूर्वक का ऐसा परिचय दिया था कि गभीर हो चली थी। मलकोवके उसने उसे कम्युनिस्ट-पार्टीके क्योकि मलकोवने परम्परागत कृषिके अधिक उत्पादन, लोगोके रहन-सहनके स्तरको प्राथमिकता देनेपर जोर दिया था में करके क्रूश्चेवने न सिर्फ वल्कि वहां मलकोव-शासनकी मलकोवकी नीतिको 'सुधारवादी' वाली' बतलाया गया। पिछले चर्चाकी जिन बातोको प्रमुखता द शासनकी अयोग्यता और खेती कम होना और उपजके नौजवानोमे चरित्र और ज्ञानकी पैदा हुई हो, ऐसी बात नही है। और फिर मृत्युके समय सत्ता लगे होनेके कारण चोटीके किसी नहीं दिया। बादमें पार्टी, सेना खिलाफ करनेके लिए इनकी मलकोवके सिरपर फोडा गया !

मलकोव-मिकोयनका

यद्यपि स्तालिनकी व्यवस्थित करने औद्योगिक

तथा पाश्चात्य देशोंसे आतंक और शीत-युद्धका सम्बन्ध रखकर रूस अधिक दिन सुरक्षित नहीं रह सकता। इस लिए स्तालिनकी मृत्युके बाद मलेंकोवने सुप्रीम सोवियत और प्रिसिडियमको यह विश्वास दिलाया कि युद्धोत्तर सुख-समृद्धिका अधिकाधिक लाभ जनताको पहुँचानेके लिए उसे आवास, उपभोक्ता वस्तुओं आदिकी अधिक सुविधा देना चाहिए और उसके रहन-सहनके स्तरको ऊंचा किया जाना चाहिए। साथ ही रूस द्वारा अधिकृत पूर्वी यूरोपके देशोंको भी अधिक स्वतन्त्रता देना तथा पाश्चात्य देशोंके साथ अधिक नरमी और समझौतेका व्यवहार रखना चाहिए। स्तालिनकी मृत्युके ५ महीने बाद ही मलेंकोवने सुप्रीम सोवियतके संयुक्त अधिवेशनमें (५ अगस्त १९५३को) हर्षध्वनिके बीच घोषणा की कि मजदूरोंके भौतिक और सांस्कृतिक स्तरको तेजीसे ऊँचा उठानेके लिए उपभोक्ता वस्तुओंके निर्माणमें तेजीसे वृद्धि करना होगा। १९५२के बजटमें जो रक्षा-व्यय २३.६ प्रतिशत था उसे आपने १९५३ में २०.८ प्रतिशत करवा दिया (लगभग १३ प्रतिशत कम) और १२९८०००० लाख रूबल सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्निर्माण-कार्यके लिए स्वीकृत कराए। इस भूमिकाके साथ आपने वादा किया कि जनताके खरीदनेके लिए मोटर, रेडियो, टेलीवीजन-सेट, रेफ्रीजरेटर, अच्छे कपड़े और जूते आदि काफी तादादमें बनेंगे जो ऊपरसे विदेशी चीजोंसे ही सुन्दर होंगे। अगले २-३ वर्षोंमें आपने जनताके लिए मांस, मांसकी चीजें, मछली, मछलीकी चीजें, मक्खन, शक्कर, मिठाई, कपड़े, क्राकरी, फर्नीचर और सांस्कृतिक तथा घरेलू आवश्यकताओंकी अन्यान्य चीजोंको भी सुलभ करनेकी बात कही। केवल तेजीसे जनताके भौतिक और सांस्कृतिक स्तरको ऊँचा करने और इन चीजोंको उसके लिए सुलभ करनेकी घोषणासे यह स्पष्ट है कि पिछले ३५ वर्षके प्रोलितेरियन शासनके बाद भी रूसी जनताका भौतिक और सांस्कृतिक स्तर अभी काफी गिरा हुआ है और उसे दैनंदिन जीवनकी आवश्यक चीजें भी सुलभ नहीं। यही नहीं, आपने चीजोंको ठीक ढंगसे न बनानेके लिए उद्योग-धंधोंके मजदूरों और अन्य पेशोंके कारीगरोंकी भी भर्त्सना की। आपने यह शिकायत की कि मकान बनानेका कार्यक्रम बुरी तरह चल रहा है और नए मकान बड़ी लापरवाहीसे बनाए गए हैं। सामूहिक खेतीके गरीब किसानोंके प्रति सरकारके गलत रुखकी निन्दा करते हुए आपने गरीब सहायक खेतीवालोंपर भारी टैक्स लगाए जाने और उनसे उनकी गायें तक छीन लेनेकी शिकायत की।

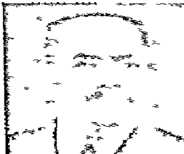
अपने उपर्युक्त भाषणमें ही—शायद पार्टीके धनी थोरियाके डरसे—मलेंकोव यह भी कहनेसे नहीं चूके कि बड़े-बड़े उद्योग-धंधों (जिनके कारण छोटे और उपभोक्ता धंधोंकी उपेक्षा हुई और जनताका रहन-सहनका स्तर उल्टा गिरा) की उन्नतिका विरोध करनेवाले त्रात्स्कीपंथी और दक्षिण-पंथी हैं (जबकि बेचारे त्रात्स्कीने बड़े उद्योगोंकी उन्नतिका विरोध नहीं, वकालत ही की थी!)। यद्यपि मौखिक रूपसे पार्टी, सुप्रीम सोवियत और गोस्प्लान (योजना समिति) ने मलेंकोवकी नीतिका समर्थन किया था पर मन-ही-मन स्तालिनपंथी बुल्गानिन, क्रुश्चेव आदि (जो मानसिक दृष्टिसे १९५३-५४ नहीं, १९१८के रूसमें ही रह रहे हैं) इससे संतुष्ट एवं प्रसन्न नहीं थे। परन्तु वे इसे प्रकट करनेका मौका ढूंढ़ रहे थे। पिछले २० वर्षोंमें रूसकी कोई ५ करोड़ आबादी शहरोंमें आ बसी है। इस अनुपातमें नए मकान नहीं बन पाए हैं। फिर दूसरे महायुद्धकी तबाहीने तो इस स्थितिको और भी गम्भीर बना दिया। उपभोक्ता वस्तुओंकी कमी भी खलने लगी। इसका मजदूरोंकी उत्पादन-क्षमतापर बुरा असर पड़ा। इधर पूर्वी यूरोपके कम्युनिस्ट अधिकृत देशोंमें रूसकी ज्यादतियों और शोषणके खिलाफ जबरदस्त प्रतिरोध उठ खड़ा हुआ। अन्य देशोंमें तो प्रमुख नेताओंकी सफाया करके जी-हुजूरोंको सत्तारूढ़ करा दिया गया पर पूर्वी जर्मनीके विद्रोहने मलेंकोवके आसनको भी हिला दिया। फिर उत्तर अतलांतिक समझौता और जर्मनीके पुनः शस्त्रीकरणके पाश्चात्य राष्ट्रोंके निर्णयको स्वीकृति न मिलनेसे मलेंकोवके शासनकी रही-सही प्रतिष्ठाको भी म्लान कर दिया। क्रुश्चेव और बुल्गानिनने पहले पार्टीका मंत्री-पद मलेंकोवसे लेकर उसमें उनकी भर्त्सना आरम्भ की। पार्टीमें कागानोविच, मोलोतोव, बुल्गानिन और कागानोविच तथा मास्कोके स्क्रुमिल्निन मलेंकोवकी इस व्यवसाय और हानिकर नीतिका संगठित विरोध शुरू किया।



अनस्तास मिकोयन

स्पष्ट-भाषी मिकोयनके सिवा मलेंकोवका कोई न्याय-समर्थक नहीं रहा। विरोधी त्रिगुटने यह प्रचार करना शुरू किया कि मलेंकोव का वर्गीय और परस्पर नीति विफल रही है और यदि इसे अधिक दिन जारी रहने दिया गया तो पश्चिमके साम्राज्यवादी राष्ट्र रूसको कच्चा चबा जायेंगे! दूसरे पक्ष

वर्षीय योजनाको लागू करनेसे पहले उसके कार्यक्रमको लेकर बडा वाद-विवाद हुआ। अन्तमें अक्तूबरमें यह तय हुआ कि (१) १९५८-६० में रूसकी अर्थनीतिका घनिष्ट संबध रूस अधिकृत देशोंसे संयुक्त रूपसे रहे और भारी उद्योगोंको उन्नत करनेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय। चीन तथा पूर्वी यूरोपके देशोंकी औद्योगिक उन्नतिमें भी रूसका प्रमुख हाथ रहे। (२) चीन, पूर्वी यूरोपके देशों तथा रूसकी फौजी स्थिति अधिक मज़बूत बनानेके लिए १९५५के बजटमे १० प्रतिशत रक्षा-व्यय अधिक किया जाय। सोवियत-गुटके सैनिक संगठनके लिए एक संयुक्त कमानकी स्थापना हो और चीन अनिवार्य फौजी भर्ती शुरू करे। चूंकि इस नीतिकी सफलता बहुत कुछ चीनके समर्थनपर निर्भर करती थी, अत माओ-से-तुगकी स्वीकृति लेनेके लिए क्रूशेव, बुल्गेनिन आदि गत अक्तूबरमें चीन गए। वह लेकर लौटनेके बाद इन्होंने दृढतासे इसका प्रचार करना शुरू किया। नया बजट इसी दृष्टिसे बनाया गया। गत २५ जनवरीको क्रूशेवने सार्वजनिक रूपसे भारी उद्योगोको प्रधानता देनेकी बात कही जिससे असहमत होनेके कारण मिकोयनको इस्तीफा देना पडा और यही हश्र बादमें मलकोवका भी हुआ। अर्थ-मन्त्री ज्वेरोवका, जिसने शायद उपभोक्ता वस्तुओके बारेमे केवल मौखिक सहानुभूति दिखाई थी, भविष्य अभी अनिश्चित है। क्रूशेव, बुल्गेनिनके चीनसे लौटनेके बाद ही पार्टीके मंच, पत्रों, विश्वविद्यालयों और अन्यान्य संस्थाओंमे उपभोक्ता उद्योगोंके समर्थकों, और भारी उद्योगोंके विरोधियोंके खिलाफ बडा जबरदस्त प्रचार होने लगा, जिसके प्रमुख उत्प्रेरक थे मास्को वित्त-समितिके ज़े० कासिमोवस्की, द० कुस्नेत्सोव और पी० कोस्लावस्की।



लाज़ार कगानोविच

रूसी बोनापार्टकी छाया

मलकोवके इस्तीफेकी घोषणाके तीसरे ही दिन चीनने अनिवार्य फौजी भर्तीका एलान कर दिया। इसीके साथ मार्शल जूकोवके रक्षा मन्त्री होनेकी घोषणा इस बातका संकेत है कि पीकिंगसे एल्ब नदी तक लाल सेना युद्धोद्योगो और संयुक्त कमानके द्वारा एक नई शक्ति बनने जा रही है।

मातहत बनाया गया है।) । किस तरह राजनेताओंकी मू प्रभाव-प्रभुत्व बढा और लेनिन, त्रात्स्की और स्ता इसलिए अपने समयमें स्ता शक्ति नहीं बनने दिया। पार्टीकी ही रही। सेनाको 'सुरक्षा-पुलिस के रूपमें एक रखी, स्वयं जनरलिसिमोका तथा दूसरे महायुद्धसे पहले रोवको प्राणदंड देकर तथा उस तिमोशेंको आदिके बढते हुए पद देकर रोका।

पर आज स्तालिनकी-स मलकोव, क्रूशेव, मलोतफ, ब मलकोव-क्रूशेव-बुल्गेनिनके पार्टी और मन्त्रिमंडल दोनोंके ही किया है। बेरियाकी गठनके बाद उसमें भी इतनी फौजी ताकतके सामने टिक स में सैनिक सत्तावादी अधिनाय राज्य था, जिसका अधिनायक ब्यूरो था, पर अब तो किसी के उदयकी आशंका लोग जूकोवसे जोडते हैं। समय—बल्कि कहना चाहिए सबसे अधिक लोकप्रिय वे ही पति नहीं हैं, पर लडाईके नियं विधिके रूपमें उनका कोई पिछले महायुद्धमें हो चुकी है। कि उनमें रूसी फौजी अफसर जो ताल्स्तायने 'वार एण्ड पीस हैं। रूसके बाहर भी वे किसी से कहीं अधिक लोकप्रिय हैं। पार्टीके कर्ता-धर्ता उसकी सुरक्ष कडा रुख अख्तियार करनेके वृद्धि तथा भारी उद्योगोंकी तो वे सेनाकी किसी बातको टाल सकेंगे, इसमें सन्देह है। पट-परिवर्तन है,

अपना अपना दृष्टिकोण

लोक-सेवा आयोगकी उपेक्षा

प्रजातंत्रीय राज्यमें परिवर्तनमय शासन-व्यवस्थाको सुगठित एवं सबल बनानेके लिए जनतन्त्रकी भावनाका आदर करना आवश्यक है। जहाँ यह भावना ही सुप्त हो जाय, वहाँ कम-से-कम उसका रूप तो दृष्टिगत होना ही चाहिए। किन्तु जहाँ दोनोकी उपेक्षा हो, वहाँ जनतंत्र एक धोखा बन जाता है। कुछ ऐसी ही स्थिति भारतीय शासन-व्यवस्थाकी हो गई है, जिससे जनतन्त्रकी पवित्र भावनाके उपयोगमें संशय होने लगता है। भारतीय लोक-सेवा-आयोगोंके प्रतिवेदन प्रतिवर्ष इसी संशयको सबल बनानेके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतिवेदनोंमें यही निराशापूर्ण उल्लेख दुहराया जाता है कि सरकार न केवल आयोगोंको अपना मतव्य पूरा करनेमें अनावश्यक समझती है और कई बार उनकी पूरी उपेक्षा करती है; बल्कि वह इन आयोगोंके महत्वको स्वीकार ही नहीं करती। सरकारको हजारों निम्न कर्मचारियों और चपरासियोंकी नियुक्तिमें तो रुचि होती नहीं। उसकी आँखें तो सदा कुछ इने-गिने पदोंपर ही ठहरती हैं, जिनमें वह अपनी मनमानी व गोलमाल विधि नियमों द्वारा स्थिति सुरक्षित करवाकर इन पदोंको लोक-सेवा-आयोगोंके अधिकार-क्षेत्रसे बाहर करवा लेती है। लोक-सेवा आयोगकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य है सरकारी सेवाओंमें सुयोग्य व्यक्तियों की निष्पक्ष भर्त्ती करना। यह उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है जब कि आयोग आयुक्तगण सरकारी अधिकारियोंके अनुचित हस्तक्षेपसे पृथक रह सकें। इसीलिए संविधान द्वारा उनकी नियुक्ति, कार्य-काल, पृथकता आदिमें उनको विशेष सुविधाएँ दी गई हैं, जिनसे कि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्थिर किया जा सके। लेकिन संविधानमें इन पदोंपर उपयुक्त व्यक्तियोंको ही चुननेके नियमोंका उल्लेख नहीं किया गया है। उत्कल (उड़ीसा) लोक-सेवा आयोगके एक सदस्यकी योग्यता सरकारी तौरपर इस प्रकार है—नॉन मैट्रिक्यूलेट, एक भूतपूर्व रियासतमें सब-इन्स्पेक्टर, बादमें इसी रियासत के एक मंत्री, दो राज्योंमें सदस्योंकी योग्यता, कई नियुक्तियों में जाति, मित्रता, साम्प्रदायिकता व अन्य प्रकारकी पक्षपात-पूर्ण बातोंपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। इससे स्वाभाविक है कि अन्य विभागोंके अतिरिक्त स्वयं लोक-सेवा आयोगके कार्यमें ही शिथिलता एवं अकुशलताका प्रभुत्व रहता है।

आयोगके हस्तक्षेपको दूर करनेका सरल मार्ग है कुछ पदोंको उसकी अधिकार-सीमाके बाहर रखना। संविधानने इस सरकारी शक्तिको कम करनेके लिए यह शर्त्त लगाई है कि इस प्रकारसे होनेवाली नियुक्तियोंके समस्त नियम धारा-सभाको प्रस्तुत किए जायें, जहाँ उनमें जन प्रतिनिधियों के द्वारा आवश्यक संशोधन सुलभ हो सके। कुछ राज्य-सरकारोंने इस नियमकी भी अवहेलना की है। सन् ५२ में मध्य-भारत लोक-सेवा आयोगने अपने एक वक्तव्य में सरकार द्वारा निर्मित नियमोंके प्रतिवेदनको स्वीकार करने के भ्रमपूर्ण तथ्यका विरोध किया था। इसी सम्बन्धमें आयोगके सभापतिको विवश होकर कहना पड़ा कि 'सरकार ने कई स्थानोंको आयोगकी अधिकार-सीमासे बाहर रखकर संविधानकी भावनाको आघात पहुँचाया है।' केरलके (ट्रावनकोर-कोचीन) आयोगने अपने १९५१-५२ के प्रतिवेदनमें कहा है कि राज्य-सरकारको सेवाओंके नियम नहीं बनाने चाहिएँ। इसी वर्षके सौराष्ट्रके प्रतिवेदनमें भी इसी तरहसे सरकारकी आलोचना की गई है। हैदराबाद में समस्त सड़क यातायात-विभाग आयोगके अधिकार-क्षेत्रसे यह कहकर हटा दिया कि निकट भविष्यमें एक निगम (कार्पोरेशन) स्थापित किया जायगा। कुछ पदोंका, जिनपर नियुक्तियोंके लिए परामर्श ले लिया गया था, भी उनके हस्तक्षेपसे हटा दिया गया। इसके साथ ही न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) की स्थापनासे आयोगकी शक्ति व महत्व कम कर दिया गया है। संघीय आयोगकी राय है कि "इनके कार्योंमें पंक्तिबद्ध अवरोधोंको खड़ा करना लोकतन्त्रात्मक गणराज्यमें उचित नहीं जँचता।'

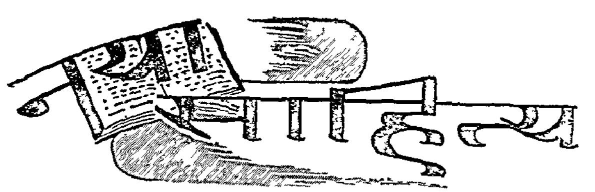
ट्रावनकोर-कोचीनके १९५१-५२के प्रतिवेदनमें शिकायत की गई है कि राज्य-सरकारने बिना परामर्शकी प्रतीक्षाके ही नई नियुक्तियाँ कर दीं। कुछकी नियुक्तियाँ सरकारने 'कार्य-सीमा विनिमय' के गोलमाल निर्वचनद्वारा कर दीं तथा २५ व्यक्तियोंको सीधा बिना किसी परामर्शके नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार सौराष्ट्रके प्रतिवेदनमें नई नियुक्तियाँ, उन्नति, स्थानान्तर व अवकाश प्राप्त व्यक्तियोंका वर्षों अधिक बिना आयोगकी सहमतिके रखने आदिका उल्लेख

है। बिहार-सेवा-आयोगने पटना-विश्वविद्यालयके १३ प्राध्यापकोंके लिए फिरसे विज्ञापन करानेकी राय दी है। इन पदोंपर विश्वविद्यालयने प्राय तीन वर्ष पूर्व ही नियुक्तियाँ कर ली थी। बम्बई-प्रतिवेदनमें स्पष्ट कहा गया है कि राज्य-सरकारने बिना आयोगके परामर्शके १२ नियुक्तियाँ कर दी। इनमें से कुछकी सूचना नियुक्तियोंकी समाप्ति पर दी गई। इस प्रतिवेदनमें कई अनियमिताओंका उल्लेख है। हैदराबाद-प्रतिवेदनमें राज्य-सरकार द्वारा की गई ९ अस्थायी नियुक्तियोंका उल्लेख किया गया है, जिनकी सूचना आयोगको बडे विलम्बसे दी गई। सरकारी विभागोंका स्तर गत वर्षसे सुधरनेके स्थानपर गिरा है। राज्य-सरकार ने आयोग द्वारा की गई १० व्यक्तियोंकी नियुक्ति-सम्बन्धी सिफारिशोंको भी ठुकरा दिया। ऐसी ही स्थिति अन्य राज्योंके आयोगोंके सम्बन्धमें भी है। इसके लिए आयोगोंको उपयुक्त सदस्योंसे पुनर्गठित करना तथा राज्य-सरकारोंको बिना आयोगके परामर्शके ही नियुक्त करनेके अधिकारसे से वञ्चित किया जाना आवश्यक है। भारतीय सविधानके अनुसार राज्याधीन नौकरियों या पदोंपर नियुक्तिके सम्बन्धमें सब नागरिकोंके लिए अवसरकी समता (उपबन्धका अनुच्छेद १६-क) तभी सम्भव है और तभी शासन भी सुधर सकता है।—अमरसिंह महता, जन्तरमतरके भीतर, नई दिल्ली।

हिन्दी टाअिपराअिटर और अुसका सुधार

देशकी राष्ट्रभाषा हो जानेके कारण हिन्दीका महत्व बहुत बढ गया है। राष्ट्र-सघमें ससारकी दूसरी भाषाओ के साथ अिसको भी स्थान मिल चुका है। फलत अिसके टाअिप-मशीनोंकी माँग दिनोदिन बढनेकी सम्भावना है। किन्तु अभीतक हिन्दीकी जो टाअिप-मशीनें प्रचलित हैं, अुन सबके 'की-बोर्ड पृथक है। किसी अेक विशेष मशीनपर टाअिप करनेवालेके लिअे दूसरी कम्पनीकी बनाअी हुअी मशीनपर टाअिप करनेमें भारी असुविधा होती है। अँगरेजी भाषाकी टाअिप-मशीनें चाहे जिस कम्पनी द्वारा बनाअी गअी हो, सभीके 'की-बोर्ड' अेक जैसे हैं। अत हिन्दी-मशीनोंके 'की-बोर्ड'का भी अेक स्टैण्डर्ड होना बहुत जरूरी है। दिन-प्रतिदिन बढनेवाले हिन्दी प्रचारको देखते हुअे अिस प्रकारका स्टैण्डर्ड शीघ्रातिशीघ्र स्थापित किया जाना चाहिअे। सरकारी तथा व्यापारी वर्गमें जिस समय सभी काम हिन्दीमें होने लगेंगे और अैसे स्टैण्डर्डकी

व्यक्तियोंका क्या हाल होगा
और कितना परिश्रम व्यर्थ
प्रश्नपर अच्छी तरह
अिसमें हमें थोडी भी देर
रायमें किसी भी स्टैण्डर्डको
बातोंको ध्यानमें रखना
मात्राओंका स्थान-निर्धारण
की गति अँगरेजीसे कम न
अिनमें 'की-बटन' अधिक न
अधिक न हो और (३)
सरकारी व्यापारी वर्गके काम
में नही हैं, अिसमें स्थान
हिन्दीकी सभी प्रचलित
प्रमाणित होगी।
अक्षरों तथा
मशीनोंका दोष देखनेके
अुदाहरण-स्वरूप लेना
कारण हम रेमिंगटनको
सम्बन्धमें हमने कअी
पत्रो आदिमें प्रयोग किअे हुअे
करके अुनका पृथक-पृथक
देखा है कि कौनसे अक्षर
प्रयोगमें आती हैं। हमार
चिन्ह 'ा' का स्थान सबसे
प्रतिशत प्रयोग किया जाता
स्थान रेमिंगटनमें
के नीचे रखा गया है, जबकि
दसो अगुलियोंमेंसे हमारे
सबसे अधिक क्रियाशील है
की अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे
विपरीत 'क्ष' और 'ष' अद
आधे अथवा चौथाअी
मशीनमें टाअिपिस्टके
नीचे रखे गअे हैं। अिनका
का होना चाहिअे। हिन्दी
मशीनसे अधिक 'की-बटन'
में भी, जो अँगरेजी



श्री गांधीचरितमानस लेखक—श्री विद्याधर महाजन, प्रकाशक—हिन्दी भवन, जालंधर और इलाहाबाद, पृष्ठ २१४, मूल्य ५॥=)

प्रस्तुत काव्य-ग्रंथके रूपमें रामचरितमानसके ढंगपर दोहा-चौपाइयोंमें गांधीजीके चरितको पेश किया गया है। चूंकि लेखकका इसके प्रकाशनसे कुछ ही समय पूर्व देहावसान हो गया, हम इसके सम्बन्धमें विस्तारसे कुछ कहना ठीक नहीं समझते। पर इतना तो कहना ही पड़ेगा कि पता नहीं लेखकने यह प्रयास क्यों किया? दोहा-चौपाई या रामचरितमानसकी नकल करना आसान है, पर उसमें काव्यत्व लानेके लिए तुलसीकी-सी अगाध प्रतिभा योग्यता, निष्ठा और भक्ति भी तो अपेक्षित है। इनका इसमें कहीं भूले भी आभास नहीं मिलता। वाल्मीकि और तुलसीके राम की जो छवि हमारे अन्त चक्षुके सामने उद्भासित होती है वह मानो फिर आंखोंके आगेसे हटती ही नहीं। पर इस पुस्तकसे गांधीजीकी वैसी कोई स्पष्ट छवि नहीं उभरती। लेखक ने भाषा और छंदके साथ भी अनेक स्थलोंपर बड़ी मनमानी की है। जातिवाचक संज्ञाओं तकको तोड़ा-मरोड़ा है। आजके युगमें इस तरहकी चीजोंका हमें तो कोई लाभ नहीं दिखाई देता।

भारतवर्षकी विभूतियां संपादक—श्री डॉ० आर० टालीवाल, प्रकाशक—ग्रेट इंडिया पब्लिशर्स नागपुर पृष्ठ ३५६, मूल्य १०)

पुस्तकके नाम और सर्वप्रथम दिए गए नेताजीके चित्र के बाद लेखकके दादाजीके पूरे पृष्ठके चित्रको देखकर ही पाठकको लगता है कि पुस्तक क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। इसमें कोई शक नहीं कि अधिकांश जीवन-वृत्त 'भारत की विभूतियां कही जा सकें', ऐसे हैं। पर जहां ऐसी दर्जनों विभूतियोंका नामोल्लेख नहीं हुआ है जिन्होंने बहुत-कुछ किया है, वहां अनेक ऐसे व्यक्तियोंको भी 'विभूतियों की पंक्तिमें ठेल दिया गया है, जिनके बारेमें शायद कम लोग ही सहमत होंगे। विवरणोंको भी प्रामाणिक बनानेकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए, नहीं दिया गया है। अच्छा हो, यदि इस प्रकारके संकलनोंके संपादनमें अधिक जिम्मेदारीसे काम लिया जाय। —'भग्नदूत'

बहुरंगी मधुपुरी लेखक—श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक—राहुल प्रकाशन, मसूरी मूल्य ४)

गर्मियोंमें शहरोंके बड़े-बड़े राजाओं और रईसोंको किसी-न किसी पहाड़ी स्थानमें जाना ही पड़ता है। उन्हीं पहाड़ी स्थानोंमेंसे एक प्रमुख स्थान है मसूरी। मसूरीका विलासमय जीवन अपने इर्द गिर्द कितने ही व्यक्तियों को लपेटे रहता है। इस विलासपुरीमें जानेवाले और उनसे जीविकोपार्जन करनेवाले भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका चित्रण 'बहुरंगी मधुपुरी'में है। स्वतंत्रतासे पहले और स्वतंत्रताके बादके जीवनपर, राजनीतिपर आपदंडोंपर यह एक करारा व्यंग है। फैशनकी टीमटामसे लैस आधुनिकतम नारियोंकी भिन्न भिन्न श्रेणियोंसे लेकर सेठ, महाप्रभु, लालाजी, रिक्शावाले कुली, खानसामा, माली और यहां तक कि रूपी-जैसी रूपाजीवाकी व्यंगात्मक कहानियां इसमें हैं। नेताओं, सेठों और अफसरोंके वर्तमान जीवनपर इसमें गहरी चोट है। आजकी समाज व्यवस्था और राजनीतिक अवस्थाका तो हर जगह अच्छा खाका खींचा गया है। हमारे जीवनकी भिन्न भिन्न समस्याओं और अभावोंका चित्रण बड़ी खूबी और सूक्ष्मताके साथ मानसको छू जाता है। बहुत दिनोंके बाद राहुलजीने समाज और जीवनकी बहुमुखी समस्याओंको सामने रखने वाली ऐसी रचना मिली है। कहानियां बड़ी रोचक और पैनी भाषामें लिखी गई हैं। हां, भाषा और मनोभावों का तीखापन कई जगह अपनी सीमाका उल्लंघन भी कर गया है। गरीबोंकी बकसोंसे उत्पन्न समस्याएं इतनी छूती हैं कि लगता है विलासपुरियोंके स्वर्गिक सुखके नीचे दर्द, कुचले और कराहती मानवताकी कराहें मुखर हो इस युगमें अपनी पीड़ा कह रही हों।

जिन्दगी मुस्कराई लेखक—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ४)

इस पुस्तकमें प्रभाकरजीने अपनी शैलीमें मनमुक्त

जिन्दगीमे मुस्कुराहट बनाए रखनेके गुण बडे ही रोचक ढगसे बताए हैं। अपने जीवनके संस्मरणोको लच्छेदार और मुहावरेदार भाषामें पाठकोके लिए कहानी बनाकर ही वे नही रह जाते, उन्हें बातोमे उलझाते-उलझाते रोजमर्राके जीवनकी खामियोके सामने ला खडा करते है और तब अचानक पाठकको याद आता है कि यह कहानी नही, यह तो उसके अपने जीवनका विश्लेषण करनेके लिए दर्पण है। यो तो सारी पुस्तक ही अपनी शैलीकी विशेषताके कारण बडी दिलचस्प लगती है, पर कुछ परिच्छेद तो बहुत ही सुन्दर बन पडे है। 'जब वे बीबीको अपने कमरेमे ले गए', 'यानी एक कम बीस मिनट', 'जी, क्या कहा, ऐं', 'वे दो चेहरे', 'ओह, याद ही न रहा' और 'कृपया अपनेसे पूछिए' तो बडे ही सरस, सन्तुलित और स्वाभाविक ढगसे अपना प्रभाव छोडते है। इनकी शैली और विषय दोनो ही अनोखे है। 'जिन्दगी मुस्कराई' ध्यानसे पढनेवालेके जीवनमें अवश्य ही सच्ची मुस्कुराहट ला सकती है।

बाबा बटेसरनाथ लेखक—श्री नागार्जुन, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ १४९, मूल्य १॥।=)

बट वृक्षकी आत्म-कथाकी ओटमे ग्रामीणोके सुख-दुख और समस्याओका इसमे बडा ही सुन्दर चित्रण है। गाव-वालोकी भावनाओ, रीति-रिवाजो, तौर-तरीको और अन्य समस्याओका इससे बडा अच्छा परिचय मिलता है। इसमें स्वतत्रताके पहले और स्वतत्रताके बादकी ग्रामीणोकी चेतना की भी झलक मिलती है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनका प्रभाव गाँवोमें कितना और किस प्रकार पड रहा है, इसका दिग्दर्शन मिलता है। बट वृक्ष अपनी जटा और दाढीमें कितनोकी हर्ष, व्यथा, वेदना छिपाए बदलते युगको देख रहा है और देख रहा है भविष्यके उस समाजकी ओर, जहाँ परिवर्तन अवश्यम्भावी है। लेखककी मँजी हुई लेखनीसे लिखी यह पुस्तक रोचकताके साथ-साथ ग्रामवासियोकी बदलती हुई मानसिक स्थितियो और परिस्थितियोपर सुन्दर प्रकाश डालती है।

बच्चोंकी देखभाल लेखक—श्री बहादुरमल, प्रकाशक—विश्वेश्वरानद प्रकाशन, होशियारपुर, पृष्ठ १४०, मूल्य १॥)

बच्चोके विकास-कालमें माता-पिताका व्यवहार और क्रियाएँ कितनी सधत होनी चाहिएँ, यह लेखकने बडी ही सरल भाषामें बतानेकी कोशिश की है। बच्चेका स्वास्थ्य, आदतें और स्वभाव हर घरकी रोजमर्राकी समस्याएँ हैं। श्री बहादुरमल्लने सरल भाषामें थोड-से में माता-पिताके ज्ञान के लिए काफी सामग्री दी है। देखभालकी मानसिक और शारीरिक दो भागोमें विभक्तकर उम्रके अनुसार - कंतापर उन्होने जोर दिया।

मातृत्वके दायित्वका ज्ञान अधिकाश बालाएँ माता बन वे बच्चोको न स्वस्थ रख पाती कर पाती हैं। हिन्दीमें इस दिया जा रहा है। लेखकने लालन-पालन तककी सभी विश्लेषण किया है। यह माँ बननेकी प्रेरणा दे सकती आदतो और स्वभावको करना चाहिए, इसका विवेचन में किया गया है।

शेर ओ सुखन भाग (४,५) गोयलीय, प्रकाशक—पृष्ठ २५५, मूल्य ३)

उर्दू-साहित्यको हिन्दी जीका कार्य हिन्दी-ससारसे भागोमें गोयलीयजीने उर्दू पाठकोको देकर उर्दूके प्रति चौथे भागमे इन्होने गजलकी परिचयात्मक सग्रह दिया है। आधुनिक शायरोंके परिचयके 'नई लहर'-परिच्छेदमें गाँधीजीकी मृत्यु-विषयक देवनागरी-लिपिमें उर्दू मिलना हिन्दीके पाठकोंके पाँचवें भागमे 'सिंहावलोकन गजलके इतिहासका अध्ययनके साथ-साथ इसमे उर्दू-साहित्यका मोड भी परिस्थितियोके साथ-साथ मिलते हैं। आधुनिक उर्दू जीवनकी रात-दिनकी स यह ज्ञात होता है। पिछले पृ और कलाम भी है, जिससे विचारोका परिचय मिलता

रोटियाँ और लाशोंके जुलूस गागेय, प्रकाशक—पृष्ठ १२७, मूल्य १।)

यह कहानी-सग्रह अभावोको बडे नग्न रूपमें सामने ठीक कहानियाँ तो नही,



डा० हेलेन केलर

गत २० फरवरीको ब्रिटिश साम्राज्यके अन्ध-संघकी ओरसे डा० हेलेन केलर भारत आई हैं। वे भारत, पाकिस्तान और सुदूर-पूर्वके देशोंका भ्रमणकर अंधोंकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें विवरण एकत्र करेंगी और अपने सुझाव देंगी। उनका जन्म एल्बामाके एक ग्रामीण-परिवारमें हुआ था। दो वर्षकी उम्रसे ही आप अंधी और बहरी हो गईं। गूंगी तो आप पहलेसे ही थीं। एन सलीवन



डा० हेलेन केलर

नामक एक अध्यापिकाने आपको स्पर्श और गन्धसे मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, फूलों, फलों तथा विभिन्न प्रवृत्तियोंका ज्ञान कराया। आप फ्रेंच, जर्मन, लैटिन और अँगरेजी जानती हैं। हारवर्ड-विश्वविद्यालयसे आपने बी० ए० (आनर्स) किया। गणित, विज्ञान, वनस्पति, प्राणिशास्त्र और दर्शनका भी आपका अच्छा अध्ययन है। घोड़ेकी सवारी, साइकिल चलाना, ताश और शतरंज खेलना आदि भी आप जानती हैं। कई देशोंका आप भ्रमण कर चुकी हैं।

गत २२ फरवरीको आपने भारतीय पत्र-प्रतिनिधियोंसे भेंट की और उनके प्रश्नोंका अपनी सेक्रेटरी कुमारी पॉली थाम्पसनके द्वारा उत्तर दिया। अपनी भारत-यात्रापर खुशी जाहिर करते हुए आपने नेहरूजीसे हुई भेंटका आश्चर्य-जनक वर्णन किया और कहा कि उनकी महानतासे आप प्रभावित हुई हैं। उनके उन्नत ललाटसे आपने उनकी महत्ता और उदारताका परिचय पाया और उनसे हुई कविता (और भगवद्गीता)-सम्बन्धी बातचीतका उल्लेख किया। फिर आपने ताजमहल देखनेकी उत्कट इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि 'यदि मैं *ताज न देखूँगी*, तो दुनियाके अन्धे बड़े निराश होंगे।' यह पूछे जानेपर कि दृष्टि और श्रवण-शक्तिमेंसे आप किसे वापस पाना चाहेंगी, आपने कहा—"मैं चाहूँगी कि मेरी श्रवण शक्ति ही लौटे, क्योंकि सुनकर आदमी अपनी कल्पनाके अनुसार ही अपने लिए दुनियाका चित्र बना सकता है। अभी तो मैं ज्यादातर गंधसे ही व्यक्तियों और देशोंका अनुमान कर सकती हूँ। अगर लोग झिझकें नहीं, तो मैं उनके होठोंके पास हाथ रखकर ही उन्हें और उनकी बातोंको समझ सकती हूँ।' एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें आपने कहा कि "कभी-कभी मैं बड़ी उदास हो जाती थी, पर धीरे धीरे मैंने अपने-आपको संभाला। मेरा खयाल है कि आत्म-ग्लानिसे बढ़कर अंधोंका कोई और दुश्मन नहीं।' शीघ्र ही आप मसूरीमें भारतीय अन्धोंके सम्बन्धमें होनेवाले एक सम्मेलनमें शामिल होने जा रही हैं। इसके बाद ही आप भारतीय अन्धोंके शिक्षण के सम्बन्धमें कुछ कहेंगी।

सिबिल थार्नडाइक और लुई कॅसन

अपनी दिल्ली, बम्बई और मद्रासकी यात्राओंके बाद पिछले दिनों ब्रिटेनके ख्यातनाम अभिनेत्री सिबिल थार्नडाइक और उनके पति सर लुई कॅसल कलकत्ता आए। यहाँ न्यू एम्पायरमें आपने ब्रिटेनके प्राचीन लोकगीतों और कविताओंका पाठ किया और शेक्सपियरके दो-तीन नाटकोंके कुछ अंशोंका अभिनय भी। यहाँ इस तरहके काफी अच्छे आयोजन प्रायः होते रहते हैं; पर जिन्होंने इन दोनोंका पाठ सुना और अभिनय देखा, वे मान गए कि कई वर्षोंमें ऐसा सुन्दर, सजीव और गंभीर अभिनय एवं पाठ देखने-

सुननेको नही मिले। हेनरी अष्टममें कैसनका हेनरी और सिविलका कैथराइनका अभिनय बडे ही आकर्षक और स्वाभाविक रहे। इसी प्रकार यूरीपिडकी 'मीडिया' और क्लेमेंस डेनके ' दि लायन एड दि केप्रीकार्न' मे एलिज-बैथका भाषण और बरनार्ड शाके 'सन्त जोन' के कुछ अशो का अभिनय आश्चर्यजनक थे। १४वी और १५वी शताब्दी के ब्रिटेनके कुछ लोकगीतो, लोरियो और कविताओकी आवृत्ति भी बडी सुन्दर थी। सर लुईने १९वी शताब्दीका एक फासीसी लोक गीत बडे ही स्वाभाविक ढगसे गाया। दोनो ही काफी वृद्ध हो चले है, पर दोनोंके स्वर, चेहरेके हाव-भाव और गतिमें जैसे कोई बडा अन्तर नही आया है।

कनाडा और हगेरीकी कला

कलाकी भाषा भूगोल, राजनीति और वादोके भेदोकी सीमाओको पारकर विश्व-मानवताके हृदयकी अभिव्यक्ति करती है। पिछले दिनो कलकत्तेमें हुई कनाडियन चित्रो और हगेरियन लोककलाकी प्रदर्शनियाँ देखकर हमे लगा मानो हम कोई परिचित विषय और भाषाको पढ रहे है। कनाडाका भारतसे कम परिचय है। पर उसकी कला-कृतियोको देखकर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे भारत, ब्रिटिश, फ्रेंच, अमरीका आदिसे कुछ विशिष्ट है। बडी-बडी नदियो, उपजाऊ मैदानो, घने जगलो, बिल्कुल सूने और उजाड बर्फीले पठारोका देश होनेके कारण उसकी कलापर भी इनका गहरा असर पडा है। डेविड मिल्नके 'कटर्स एड एल्म ट्रीज़' तथा लारेन हेरिसके 'नार्थ-शोर बेफिन आइलैण्ड'-जैसे रोरिकके चित्रोकी याद दिलाते है। हेनरी मेसनकी 'स्टिल लाइफ'और मैकडोनल्डका 'सी-शोर', लिस्मरका 'क्यूबेक अपलैण्ड्स, ', गुडरिच राबर्टका 'लेक आक्सफोर्ड' बडे सजीव चित्र है। भारत और हगेरी दोनो ही कृषि-प्रधान देश है, अत दोनोकी लोककलाओमे भी अद्भुत साम्य है। वहाके वस्त्रोकी बुनाई और रगोका कलामय सामजस्य वहाकी रगीन सस्कृतिके परिचायक है। मिट्टीके बर्तनोके प्रकार और सजावट भी सुन्दर थी। साथमें कुछ ऐसे फोटो भी थे, जिनमें लोगोको काम करते हुए दिखाया गया है।

अवनी बाबूके चित्र

पिछले दिनों कलकत्तेमे शिल्पी-गुरु स्व० अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके १९४३-४६में बनाए गए ६७ चित्रोंकी प्रदर्शनीका

से यह सिद्ध कर गए है कि
डा० सुनीतिकुमार चाटु
की आधुनिक कलाके
स्वय एक बहुत बडी घटना
नदलाल बसुका भारतीय
भारतीय साहित्य-क्षेत्रमे
उनके चित्रोंके बारेमें किसीने
वास्तवमें उनके सम्बन्धमे
भी नही है। उनके चित्रोमें
प्रेरणा और बँगला-सस्कृतिको
ही गहरी मानवीय
सौन्दर्यानुभूतिकी अन्तर्दृष्टि
बहुतोमें अवनी बाबूके १९
उठाव बरकरार है, वहाँ चतुर्थ
दर्शन होते है। किसी-
रागिनियोके चित्रोका
पर आजकी कला-फैशनके रूप
और सतोषकी बात नही।

भारतीय लो

प्रजातत्र-दिवसके दिन न
भारतीय लोकनृत्योका
के विभिन्न प्रान्तो, उनके
जातियोके नृत्योमें जहाँ
एकसूत्रता भी। यद्यपि स
प्रदेशके दलको उसके 'मारिया
मणिपुर, हिमाचल-प्रदेश तथा
अन्यान्य प्रदेशोके नाच भी कम
उदाहरणके लिए हैदराबादके
सौराष्ट्रका 'आठग', ट्रावनकोर
बुन्देलखडका 'अहीर', विन्ध्य-
का 'शापदोह', उडीसाका '
स्थानका 'वणजारा',
'कुरवजी', बम्बईका 'सिंह',
का 'यावल चोगवा',
पेप्सू, पजाब, हिमाचल-प्रदेश
देखकर तो जैसे आँखोपर
लोककला आज भी इतनी

दक्षिण-अफ्रीकामें १० हजार कालोंका निर्वासन

कई रूमानियन दूतावासोंमें गड़बड़ी : रूसमें चीनी मजदूर

उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसके जुल्म : सुदूर और मध्य-पूर्वमें सुरक्षाकी तैयारियाँ

गत २३ फरवरीको बैंकाकमें आरंभ हुई दक्षिण-पूर्वी एशियाई कान्फ्रेंसमें अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फिलिपीन, थाईलैण्ड और पाकिस्तानके प्रतिनिधियोंने इस क्षेत्रमें शांति बनाए रखने, जनतंत्र और व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा न्याय-कानूनके शासनके सिद्धान्तकी रक्षा करने, अर्थनीतिक उन्नति करने, रक्षात्मक सहयोग देने और कम्युनिज्मका प्रभाव-विस्तार रोकनेके लिए कुछ व्यावहारिक कदम उठानेका निश्चय किया है। ब्रिटिश विदेश-मंत्री सर एण्टनी ईडनके शब्दोंमें कान्फ्रेंसका मुख्य कार्य सदस्य राष्ट्रोंके सहयोगको अधिकाधिक प्रभावपूर्ण बनाना है। अमरीकी राज्य-सचिव डलेसने कहा कि अमरीकाका यह विश्वास है कि यदि इस समय फारमोसा और दक्षिण-कोरिया के नेतृत्वमें परिवर्त्तन होता है, तो उससे सुदूर-पूर्वमें अशांति के बढ़नेमें ही सहायता मिलेगी। आस्ट्रेलियाके विदेश-मंत्री केसीने कहा कि एशियाके गैर-कम्युनिस्ट देशोंमें कम्युनिस्ट अंत:प्रवेशकी जो जबरदस्त तैयारी कर रहे हैं, उसका अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से मुकाबला करना चाहिए। पाक-प्रधान मंत्री मोहम्मदअलीने कहा—"दक्षिण-पूर्वी एशियाके लोगोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि पश्चिमके जो राष्ट्र इस संधिमें शामिल हुए हैं, वे समानता और जनताके आत्म-निर्णयके सिद्धान्तके आधारपर ही। इसलिए यह कहना सच नहीं है कि इससे एशियामें उन्होंने अपना एक प्रभाव-क्षेत्र बनाया है।" यदि मोहम्मदअलीके इस कथनमें सचाई है, तो यह समझना आसान नहीं कि आज मलाया और ब्रिटेन में, न्यूज़ीलैण्ड, फिलिपिन और अमरीकामें कैसी समानता है और ब्रिटेन तथा फ्रांसका एशियामें क्या स्वार्थ है, जो वे इसकी सुरक्षा और शान्तिके लिए इतने चिन्तित हैं ?

मध्य-पूर्वमें सुरक्षा समझौता

जिस समय बैंकाकमें सुदूर-पूर्वकी सुरक्षाके लिए चर्चा हो रही है, तुर्कीके राष्ट्रपति बायर कराचीमें मध्य-पूर्वकी सुरक्षाके सम्बन्धमें एक समझौतेकी बातचीतको आगे बढ़ा रहे हैं। पता चला है कि तुर्की, पाकिस्तान, इराक, सीरिया, लेबनान आदि इसमें शामिल हो गए हैं, जुआर्दन और यमन के शीघ्र शामिल होनेकी आशा है तथा मिस्र, सऊदी अरब और ईरानको भी इसमें शामिल करनेकी चेष्टा की जा रही है। मिस्र इसके खिलाफ है और उसने इस सम्बन्धमें इराक तथा तुर्कीको भी सतर्क किया है। पिछले महीने लंदनसे लौटते हुए मिस्रके प्रधान मंत्री कर्नल नसरकी नेहरूजी से बातें हुईं, उनमें अवश्य ही इस विषयपर भी प्रकाश डाला गया होगा। मिस्रकी प्रधान आपत्ति यह है कि चूंकि तुर्की उत्तरी-अतलांतिक संधिका सदस्य है और उसके इस प्रयत्नके पीछे अमरीकाका हाथ है, अत: इस प्रकारका समझौता आगे चलकर अरब-राष्ट्रोंकी अपेक्षा यूरोप-अमरीकाके हितोंकी ही अधिक रक्षा करेगा। यही बात इससे सम्बद्ध पाकिस्तान के बारेमें भी लागू है, जो कि दक्षिण-पूर्वी एशियाई संघका सदस्य है। मिस्र मध्य-पूर्वके देशोंका एक ऐसा संगठन चाहता है, जो कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट-विरोधी दोनों गुटोंके प्रभावसे मुक्त हो।

उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसके जुल्म

कहनेके लिए मेंडीज़-फ्रांस जब फ्रांसके प्रधान मंत्री बने, तो उनकी प्रगतिशीलताके बड़े ढोल पीटे गए। पर ज्यों ही उन्होंने हिन्दचीनमें फ्रांसके फिसलते हुए पाँवोंको बचानेके बाद जब उत्तरी-अफ्रीकामें चलनेवाली उसकी निर्मम साम्राज्यवादी नीतिमें कुछ सुधार करना चाहा, तो उन्हें हटना पड़ा। गत ५ फरवरीको २३३ दिनके प्रधान मंत्रित्वके बाद आपकी उत्तरी अफ्रीका-सम्बन्धी नीतिके विरोधमें पास किया गया अविश्वास-प्रस्ताव २७३के विरुद्ध ३१९ मतोंसे पास हो गया। लोगोंने आपको 'फैसिस्ट' तक कहा, जिसके जवाबमें आपने भविष्यवाणी की कि 'घृणाके तूफानमें शीघ्र ही उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसका साम्राज्यवादी महल ढह जायगा।' उत्तरी अफ्रीकनोंसे जेलोंको भरनेके आरोपका उत्तर देते हुए आपने कहा—"मेरे शासन-भार सँभालनेसे पहले भूतपूर्व शासनने अकेले ट्यूनीसियामें ५००० राजबंदी जेलोंमें भर रखे थे, जिनके स्थानमें अब वहाँ केवल कुछ सौ साधारण बंदी हैं। मोरक्कोकी जेलों में तो ऐसे राजबंदी—और बच्चे तक—थे, जिनपर ३-४ वर्ष बीतनेपर भी कोई मुकदमा नहीं चलाया गया था। वहाँ तो इससे भी गंभीर बातें हुई हैं, जिन्हें मैं सार्वजनिक रूपमें कहना नहीं चाहता। मैंने न सिर्फ जेलें ही खाली कीं, बल्कि पुलिसकी ज्यादतियोंको भी बन्द किया और कई अफसरोंका तबादला भी किया।"

सभ्यता, संस्कृति, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और जनतंत्रके ठेकेदार गोरे तथाकथित कालोंको किस प्रकार सभ्य बना रहे हैं, इस कथनसे उसका कुछ आभास मिलता है।

दक्षिण-अफ्रीकामें कालोंका निर्यातन

पर दक्षिण-अफ्रीकाके उद्धत एवं असभ्य गोरे वहाँके कालोंके साथ जैसा अमानुषिक बर्त्ताव करते हैं, उसके सामने फासकी जुल्म-ज्यादतियाँ भी फीकी लगने लगती हैं। अभी कुछ दिन पहले उसके गोरे फैसिस्ट शासनने फरमान जारी किया कि पश्चिमी जोहानीसबर्गसे ६००० कालोंको जबरदस्ती निकालकर नगरके बाहर भी मीडालैण्डस्में बसाया जाय। तदनुसार गत ९ फरवरीको मूसलाधार बरसते पानीमें १५० काले परिवारोंको ३००० सशस्त्र गोरी पुलिस और फौजकी 'देख-रेख'में उनके घरोंसे ज़बरदस्ती घसीट-घसीटकर फौजी लारियोंमें बैठाया गया, उन्हींपर उनका सामान फेंका गया और उन्हें शहरके बाहर ले जाकर मीडोलैण्डस्में छोड दिया गया। उनके मकान नष्ट कर दिए गए हैं। किसी भी सार्वजनिक क्षेत्रमें १२ व्यक्तियोंसे अधिकका मिलना रोक दिया गया है और प्रमुख कार्यकर्त्ताओंको कहीं जाने या बोलनेसे बरज दिया गया। गत १३ फरवरीको इस सम्बन्धमें जोहानीसबर्गके एग्लीकन बिशप डा० एम्ब्रोस रीव्जने कहा है—"पश्चिमी जोहानीसबर्गसे ६००० कालोंको जबरदस्ती हटाए जानेके इस शर्मनाक कुकृत्यका हमें विरोध करना चाहिए। जिस क्षेत्रसे उन्हें हटाया जा रहा है, वह बहुत ही गंदा और अनुन्नत है। उनकी अन्य बस्तियोंकी हालत तो इससे भी कहीं बदतर है। फिर हटानेके बाद जिस बेरहमीसे उनके मकानोंको नष्ट किया जा रहा है, वैसे पागलपनके काम तो अफ्रीकामें कम ही हुए होंगे। वर्ण भेदकी दुर्नीतिका मानवीय जीवनमें क्या व्यावहारिक अर्थ है, वह इस काण्डसे स्पष्ट है। सरकार अक्सर कालोंपर उत्तेजना फैलानेका दोषारोपण करती है। पर इसके लिए जिम्मेदार कौन है? जोहानीसबर्गके पश्चिमी इलाकेमें सरकार जो-कुछ कर रही है, उससे तो चंडे ही खतरनाक ढंगकी उत्तेजना फैल रही है।" कुल १० हज़ारके लगभग लोगोंको इस प्रकार हटाया जा रहा है। गोरोंकी यह ज्यादती १८३६-४०में केपमें हुए ऐसे ही काण्डकी याद ताज़ा कर देती है, जबकि गोरोंकी जुल्म-ज्यादतियोंसे परेशान होकर लगभग ७००० अफ्रीकनों को ओरेंज नदीके पार चला जाना पड़ा था। आज ११५

रूसमें चीन

बम्बईके 'फ्रीडम फर्स्ट'
संवाद-समितिकी एक खबर
जिसमें बतलाया गया है कि
लगभग ५० लाख चीनी
स्थानोंमें काम करनेके लिए
है कि चीनने रूसमें बननेवाले
बेरियाकी कोयले और
चीनी कुली देना भी स्वीकार
यता अथवा बगावतकी
की बड़ी-बड़ी आबादियोंको
रूसमें इस समय जन-शक्ति
यह बताया गया है कि काफी
कस्तान और अल्ताईकी
भेज दिया गया है। पिछले
के प्रधान मंत्री क्रूशेवने
आबादीमें १०-२० करोड़की
नहीं होगी।' यह
दरअसल रूसमें जन-शक्तिकी
को चालू करनेके लिए ही उ

रूमानियाकी

गत १५ फरवरीको
स्विस-सरकारसे शिकायत की
दूतावासपर कम्युनिस्ट-विरोधी
उससे उत्पन्न गंभीर स्थितिके
करें और आक्रमणकारियोंको
करे। घटना यह बताई
रूमानियाके कम्युनिस्ट-
गोलियाँ चलाते हुए उसके
रूमानियन राजदूतसे माँग की
आल्दाओर लजार आदि उनके
में गिरफ्तार किया गया था,
कुछने बादमें आत्म-समर्पण कर
और कोपेनहेगेन (डेन्मार्क)
उसके आततायी शासनके
हेगनमें तो रूमानियन दूतावास
न अपनी स्त्री सहित राज
डेनिश-अधिकारियोंने जोनको
पर उसकी स्त्री मारिया सिम्पू
मुँहसे रूमानियन अधिकारिय
(अपने पति) का मुंह भी नहीं
पहले पता चल जाता कि वह

दृष्टिकोण

स्तालिनके उत्तराधिकारीका पतन

जिस आकस्मिकतासे ज्योर्जी मलेनकोवको स्तालिनने अपना उत्तराधिकारी बनाया था उसी आकस्मिकताके साथ उनका पतन भी हुआ। गत ८ फरवरीको सुप्रीम सोवियतके सामने अपना इस्तीफा पेश करते हुए उसने अपना स्थानीय परिस्थितियोंकी अनुभवहीनता और कृषिकी असंतोषजनक स्थितिके लिए अपना अपराध और जिम्मेदारी की निःसंकोच स्वीकारोक्ति की जिससे पश्चिमके हम आर्थर कोस्लरके डार्कनेस एट नून की याद हो आई जिसमें लिखा है कि कभी कभी पार्टीके प्रति अपनी वफादारीके अंतिम सबूतके रूपमें कम्युनिस्ट दूसरोंकी गलतियोंको भी अपने अपराधके रूपमें स्वीकार कर लेते हैं। जो व्यक्ति शायद नहीं युद्ध-कालमें स्तालिनका दाहिना हाथ और युद्धोत्तर योजनाओंका सह-सचालक रहा था जिसपर स्तालिनकी मृत्युके बाद पूरे २३ मास तक देशके शासन और पार्टीकी

मलेनकोवकी जनताको अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ सुलभ करने सामूहिक खेतिहरोंको कुछ और छूट देने अधिक मकानोंकी व्यवस्था करने छोटे उद्योग धंधोंको प्रोत्साहन देने आदिकी नरम नीति रूसकी सुरक्षाके लिए घातक है क्योंकि इससे पश्चिमी राष्ट्र रूसको कमजोर समझने लगे हैं। पूर्वी यूरोपके रूस अधिकृत देशोंमें हुए अशान्ति और पूर्वी जर्मनीमें हुए उग्र विद्रोह तथा देशमें कृषि और उद्योग धंधोंकी निराशाजनक स्थिति-व-गतिने खुश्चेवको बहुत अच्छा मौका दिया और मलेनकोव-नीतिके खिलाफ प्रावदा, पार्टी गोस्प्लान (योजना समिति) तथा मास्कोके स्टेट विश्वविद्यालय आदिमें धुआंधार प्रचार शुरू हुआ। इन सब स्थानोंपर नौकरशाही कर पंद्रह मलेनकोव-नीतिके समर्थक उद्योग मंत्री मिकोयनसे इस्तीफा लिया गया और फिर मास्कोसे १९५ से

तक लागू होनेवाले ५ वर्षीय योजनाको मलेनकोव-नीतिके खिलाफ भारी उद्योगोंकी उन्नतिके आधारपर ही तैयार

मलंकोवके इस्तीफेके दूसरे ही दिन चीनने अनिवार्य सैनिक सेवाकी डिक्री जारी कर दी और गत १५ फरवरीको पीकिंग मे रूस-चीन-मैत्री-संधिकी पाँचवी वर्षगाँठपर हुए समारोहमें बोलते हुए माओत्से-तुगने कहा—"रूस और चीन साम्राज्य-वादियोंको दुनियासे मिटा देगे अगर उन्होंने आक्रमणात्मक युद्ध शुरू किया।" इसी अवसरपर बोलते हुए चाऊ-एन-लाईने अमरीकाके आक्रमणात्मक तबकों द्वारा फारमोसा-क्षेत्रमे आक्रमण और युद्धकी उत्तेजना फैलानेका आरोप करते हुए कहा—"शान्ति और प्रगतिके दुश्मन नई लडाई की आग भडकानेकी चेष्टा कर रहे है।" युद्धकी जो तैयारी रूस और चीन कर रहे हैं, जिस भाषाका प्रयोग दोनो देशोंके रेडियो, पत्र और राजनेता कर रहे है, उससे स्पष्ट है कि आजकी दुनियामे शीत युद्ध, पूर्व-पश्चिमकी तनातनी और युद्धका वातावरण बनने और बढनेमे मदद *मिल रही है या शान्ति-समझौतेकी दिशामे प्रगति हो रही है।* फिर मास्को और पीकिंग तो अमरीकाको फारमोसामे आक्रमणकारी घोषित कर ही चुके हैं। इसको जिस क्षण भी रूस-चीन चाहे, साम्राज्यवादियोंको दुनियासे मिटानेके लिए सहज ही युद्ध छेडनेका बहाना बना सकते है। इस तरहके युद्धके हिस्टीरियासे भरी बकवाससे यदि गैर-कम्युनिस्ट क्षेत्रोमें यह धारणा बने कि सिर्फ चीन और रूस ही शान्ति चाहते हैं और अमरीका (तथा ब्रिटेन और अन्य पश्चिमी राष्ट्र भी) युद्ध, तो कोई आश्चर्य नही। यदि ऐसा होता, तो च्याग और अमरीकाके अनेक रिपब्लिकनोंके कहनेके बावजूद वह फारमोसा और पस्काडेरेसके सिवा अन्य द्वीपोकी रक्षाके लिए इन्कार न करता। उसने तटीय द्वीपोको शान्तिपूर्वक खाली करवानेमें ही सहायता की है। यदि वह लडना ही चाहता, तो बिना लडे कई द्वीप कम्युनिस्ट चीनको भेंट नही कर देता। इससे चीन द्वारा किए गए आक्रमण और बल-प्रयोगकी मूर्खता और अवाछनीयता ही सिद्ध हुई है। पर चीनके राजनेताओंने इसे फारमोसाकी मुक्तिके अभियानकी विजय बतलाकर उसे जारी रखनेकी ओर ही इगित किया है।

भारतकी विशेष स्थिति

पिछले एक महीनेसे विशेष रूपसे रूस और चीनके पत्र, रेडियो और राजनेता घृणा, कटुता, वैमनस्य, असत्य और गलतबयानीका जो धुँआधार प्रोपेगेंडा कर रहे हैं, वह कभी भी

मनवाना चाहता है, यही
कभी भी विचार या
है स्वार्थके लिए। फारमो
महत्वपूर्ण है, रूस-चीनके
ही अमरीका भी उसे अप
अब यदि इसका निर्णय इन
तो दोनोमें दोनोके बारेमें
उसे देखते हुए युद्ध अनिवार्य
लिए तैयार हैं, तो किसने
किया तथा किसने
बौद्धिक या शाब्दिक बहस-
लडाकू तथा गैर-लडाकू
एक बार छिड जानेपर युद्ध
न रहकर विश्व-युद्धका रूप
सदेह नही। अत. समय
चाहिए। गत मास लदनमे
ने इस दिशामें चिन्ता तो
उठानेकी तरफ इगित नही
तबकोंकी निगाह आज भारत
नेहरूजी—पर लगी है।
महीने हुई ब्रिटिश
समस्याको शान्तिपूर्वक
अमरीकाको ब्रिटेन और
समझानेकी चेष्टा तो कर ह
और उद्जन-बमोंके युद्धसे
किया है और कडी भाषाका
पूर्ण समझौतेका रास्ता
पर इस सम्बन्धमे शीघ्र ही
कम्युनिस्टोंके अब तकके रुख-
पूर्वक तो कुछ नही कहा
नेहरूजी भी कदम उठानेमें
समय रहते आसन्न
चाहिए। नेहरूजी और
जिम्मेदारी है।

समझौतेके मार्गकी

यद्यपि दोनो पक्ष मुँहसे
तो कहते है, पर दोनोका

नहीं है; दूसरे उसमें च्यागके प्रतिनिधिके साथ बैठनेका अर्थ होता फारमोसापर च्यागका कब्जा मान लेना। अब जब हिन्दचीनके सम्बन्धमें संयुक्त राष्ट्रसंघसे बाहर जेनेवा में हुई कान्फ्रेंसके ढंगकी कान्फ्रेंस इस सम्बन्धमें भी करनेकी चर्चा उठी है, तब भी चीनने उसमें च्यागके प्रतिनिधिके शामिल न किए जानेपर जोर दिया है और अमरीकाका कहना है कि बिना च्यागके प्रतिनिधिके समझौता दोनों पक्षोंमें कैसे होगा? समझौतेकी भावनाके बजाय इस इसरारमें चीनकी यह राजनीतिक चाल है कि इस कान्फ्रेंसमें राष्ट्रीय चीनका प्रतिनिधित्व न होनेसे दुनियाकी निगाहमें फारमोसापर च्यागका अधिकार नहीं रहेगा, अमरीकाका उसपर सशस्त्र कब्जा साबित हो जायगा और इस प्रकार बिना लड़े ही फारमोसापर उसका अधिकार मान्य हो जायगा। यह बात तो बड़ी दूरदर्शिताकी है, पर है केवल एकपक्षीय ही। चीनवाले पता नहीं क्यों, यह नहीं सोचते कि इस जालमें च्याग और अमरीका फँसेंगे नहीं और चीनकी यह जिद समझौतेका रास्ता रोककर युद्धोत्तेजना बढ़ानेमें ही सहायक होगी। नेहरूजीने कहीं भी यह नहीं कहा है कि इस कान्फ्रेंसमें च्यागका प्रतिनिधि शामिल हो ही, केवल कान्फ्रेंसके प्रस्ताव-भरका समर्थन किया है। पर इसीपर रूसके झूठ और गलतबयानीके प्रसिद्ध मुखपत्र 'प्रावदा'ने अपने गत १६ फरवरीके अंकमें लिख मारा है कि 'मि० नेहरूने शायद सर विन्स्टन चर्चिलसे प्रभावित होकर ही फारमोसा के सम्बन्धमें होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसमें राष्ट्रीय चीनके प्रतिनिधित्वके अधिकारका समर्थन किया है'। इसके खंडनमें गत १७ फरवरीको पालम (नई दिल्ली) के हवाई-अड्डेपर पत्र-प्रतिनिधियोंसे बात करते हुए नेहरूजीने कहा—"मैंने कभी भी इस बातपर जोर नहीं दिया है कि प्रस्तावित कान्फ्रेंसमें कौन उपस्थित हो या कौन न हो। मैंने तो महज यही कहा है कि इस मसलेपर शान्तिपूर्ण ढंगसे गौर करनेका रास्ता निकाला जाना चाहिए। और मेरे खयालमें बाकायदा ढंगसे गौर करनेके बजाय अनौपचारिक ढंगसे इस तरहकी कान्फ्रेंस बुलाना ज्यादा फायदेमंद साबित होगा।" 'प्रावदा'का मन तो रूस-चीनमें खूब प्रचारित हुआ ही है, पर नेहरूजीका प्रतिवाद शायद वहाँ नहीं पहुँचा होगा। इस दृष्टिसे रूस चीनकी जनताको भारत तकके सम्बन्धमें जो भ्रान्त किया जा रहा है, वह क्या शान्ति-स्थापना और युद्ध टालनेके लिए ही? चीनका इस बातपर जोर देना कि चूँकि फारमोसा-अभियान चीनके गृह-युद्ध का ही जारी रहना है, अतः इस सम्बन्धमें विराम-सन्धि करने या च्यागके प्रतिनिधिसे बात करनेके लिए वह तैयार नहीं, समझौतेके मार्गकी सबसे बड़ी कठिनाई और उसकी रीति-नीतिके खिलाफ भी है। क्या १९४८में यांग्त्से नदी पार करनेसे पहले, जबकि माओ-से-तुगकी शक्ति और सफलता असंदिग्ध थी, माओने कुओमिन्तागसे क्षणिक सन्धिकी बातचीत नहीं की थी? उससे पहले तो कई बार ऐसी बातचीत हुई है। फिर अगर उसकी यही जिद है कि उसकी बातको ही सब राष्ट्र शिरोधार्य कर लें, तो यह सम्भव कम दिखाई पड़ता है और इसके पीछे समझौते या शान्ति की अपेक्षा बल-प्रयोग और युद्धकी प्रवृत्ति ही स्पष्ट दिखाई पड़ती है। चीनको यह भूल नहीं जाना चाहिए कि अपनी मौजूदा हवाई और नौशक्तिसे तो अभी कम-से-कम १० वर्ष तक वह उसके और फारमोसाके बीच जो १००-१५० मील चौड़ा समुद्र है, उसपर नियन्त्रण नहीं कर सकेगा। तब शान्ति और समझौतेका मार्ग अपनानेमें यह अनिच्छा और आना-कानी क्यों?

रूस और चीनकी फौजी तैयारी

यह अब सबपर जाहिर हो चुका है कि पिछले अक्तूबर में जो क्रूश्चेव और बुल्गानिन चीन गए थे, वहाँ उन्होंने १९५५-६०में छठी पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत रूस जो युद्धोद्योगों की नीति अपनाने जा रहा है, उसमें चीन क्या सहायता देगा और रूस उसकी क्या सहायता कर सकेगा, इस सम्बन्धमें कुछ बातें तय हुई हैं। 'टाइम्स'के संवाददाताका कहना है कि इस अवसरपर चीनके नेताओंने यह स्पष्ट कहा कि उन्हें कम्युनिज्मकी ओर बढ़नेके लिए उद्योगीकरण और सामूहिक खेतोंकी जो व्यवस्था करनी होगी, उसके लिए रूस अथवा उसके अधिकृत पूर्वी यूरोपके देशोंसे उन्हें धन और आवश्यक सामग्री मिलनी चाहिएँ। चाउ-एन-लाइने अपने एक भाषणमें स्वीकार भी किया है कि रूस चीनको सब तरहकी 'सान्त्विक मदद' भाईचारेके ढंगपर दे रहा है। १९५०-५४ तक रूस चीनको २२,३०० लाख रुपयेके लगभग कर्ज दे चुका है। ५० हजार एकड़के स्टेट फार्मके लिए आवश्यक यंत्र तो वह उसे भेंट रूपमें ही दे चुका है। सोजाके तथा अन्यान्य उद्योगोंके लिए इसी तरह न जाने कितनी चीजें वह भेंट कर चुका है। फिर रूस और उसके अधिकृत पूर्वी यूरोपके अन्यान्य देशोंसे हुए व्यापारिक लेन-देनके 'समझौते' तो अलग हैं ही। चीनमें अनिवार्य सैनिक सेवाकी घोषणा हो चुकी है। इस प्रकार पैसिफिकसे एल्ब नदीके किनारे तक जो लाल साम्राज्य फैला है वह धीरे धीरे और गुप्त रूपसे एक बहुत बड़ा युद्ध-कैम्प बन रहा है। लार्ड इस्मेने ३० जनवरीको पेरिसमें कहा था कि ६० लाख सैनिक तो रूसने केवल पूर्वी यूरोपमें तैयार किए हैं।

१९४७ तक उसके पास १७५ डिवीज़न थ और पूर्वी यूरोपके अधिकृत देशोके केवल ८० ही। पर आज वह ३० दिनो के भीतर ४०० डिवीज़न तैयार कर सकता है। गत ३ वर्षोंम उसके विमानो और विमान-वधी तोपोकी सख्या तिगुनी हुई है। आणविक और रासायनिक युद्धास्त्राम भी उसन अभूतपूव उनति की है। जिह आज इसमेके इस कथनपर विश्वास न हो वे गत २१ फरवरीको मास्कोसे प्रचारित (और बादम सभी रूसी पत्रोम प्रकाशित) जनरल ब्लाडीमिर कुरसोवकी उस फौजी विज्ञप्तिको पढ देख जिसम कहा गया है कि अमरीकी सनाकी तोपो और टको के मुकाबलेम रूसके पास कही श्रष्ठ तोप और टक ह। मार करनकी दूरी और गोलाबारीकी शक्तिम भी य अमरीकी पद्धतिस कही बहतर ह। दूसरे महायुद्धके बादसे बढी रूसकी फौजी शक्तिका वणन करनके बाद कहा गया है—

आम तौरसे यह माना जाता है कि इन रूसी टकोम लडन की जो क्षमता है उसकी कोई बराबरी नही कर सकता। इसी प्रकार युद्धोत्तर वर्षोंम हमारी हवाई शक्ति भी काफी बढी है। उनके हथियाराम आधुनिक जट चालित यत्र ह जिनकी गति और ऊचाइकी सीमाम भी वद्धि हुई है। हमारी गौरवमयी नासेना भी समद्रकी सतहपर और भीतर-भीतर चलनवाले नए ढगके जहाजो नए हथियारो औजारो तथा सिपाहियोंकी सुदक्ष शिक्षासे लस हुई है। पर जो सफलताएँ हमन प्राप्त की ह उनसे हम सतोष नही है। आणविक और उदजन शक्तिम रूस अमरीकासे कहा आग है यह उसके विदेश मत्री मलोतोफ कह ही चुके ह। और यह सारी तयारी है पश्चिमके साम्राज्यवादी षड्यन्त्रकारियो तथा पूजीवादी लडाईखोरो की चालोको बेकार करनके लिए।

अणु उदजन और शस्त्रास्त्र

पर कम्युनिस्टोके प्रोपेगडा टकनीककी सचमुच दाद देना पडगी (यद्यपि दूसरोको धोखा देनकी अपक्षा वे उनस अवसर स्वय ही धोखम पड जाते ह!)। एक ओर तो रूसी साम्राज्यवादी इस तेजीसे शस्त्रास्त्र रूपम लडाईकी पूरी तयारिया कर रहे ह और दूसरी ओर स्वतत्र जनतत्रवादी राष्ट्राम फूट डालने तथा उह विघटित और गाफिल रखनके लिए नए-नए शोर भी छोडत रहते ह। फारमोसाके प्रश्नको लेकर चीन द्वारा आरम्भ किए गए सशस्त्र आक्रमणके विश्व युद्धका रूप धारण कर लन और उसम अणु उ ज

यह स्ट अपनी लडाईकी तै
फारमोसाको लेकर चीन द्वारा
जन साधारणका ध्यान हटान
लडबडानेके लिए खला गया ज
पीछ तनिक भी हार्दिकता या
जूनम लदनम हुई नि शस्त्र
नही करता। जब गत वष
बर्रमेट एटलान चाल और रूससे
तो प्रावना न अमरीकी चाल
थी। तब आज रूसकी बातपर
करनीम आकाश पातालका
विश्वास करेगा? पर अणु
और शस्त्रास्त्रोकी वृद्धिसे जो
के लिए कुछ तो किया ही ज
पहले कदमके रूपम रसेलके इस
• कि निष्पक्ष राष्ट्रोकी एक स
प्रयोगसे होनवाले सभावित
और उसका सब देशोकी ज
इससे कम से कम लोग इसके
सोचग और तब शायद वे अपन
इनको और भावी युद्धको
केवल राजनेताओंकी अपीलोंसे
दक्षिण-पूर्वी एशियाइ सघ

चीन द्वारा ताचेन-द्वीपपर
प्रतिक्रिया यह हुई है कि द
निस्ट देश चीनके भावी इराद
उठ ह। थाईलण्डम तो यह आम
पर चीनी कम्युनिस्टोकी स०
कम्युनिस्टोको आक्रमण (
लिए तैयार किया जा रहा है।
भी कम सतक नही ह। म
पहलेसे ही सतक ह। कदाचित
स लाभ उठानेके लिए दक्षिण
एक सम्मेलन पिछले दिनो
म हुआ जिसम सशस्त्र
राष्ट्र विरोधी प्रचेष्टाओंको रो
का प्रधान कार्यालय रखन तय

ग़ैर-कम्युनिस्ट एशियाई देशोंके मनमें अविश्वास और अरक्षाकी आशंका पैदा कर रहे हैं।

एशियाई स्वातंत्र्य-सम्मेलन

गत १७से २० फरवरी तक रंगूनमें एशियाई सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य-सम्मेलन हुआ जिसमें १८ एशियाई देशोंके ६० प्रतिनिधियोंने भाग लिया। सम्मेलनको भेजे गए एक सन्देशमें विश्व सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य-सम्मेलनके अध्यक्ष बर्ट्रेण्ड रसेलने कहा— इधर कुछ अर्सेमें दुनियाके कई हिस्सोंमें सांस्कृतिक स्वतन्त्रताका ह्रास हुआ है, पर आज भी मानव-कल्याणके लिए इसका महत्त्व तनिक भी कम नहीं हुआ है। भारतीय प्रतिनिधि-मण्डलके नेता श्री जयप्रकाशनारायणने कहा— व्यक्तिकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेकी आवश्यकता केवल एशियामें ही नहीं सारी दुनियामें है। तथाकथित जन-कल्याणकारी राज्यमें सबसे बड़ा खतरा उनके अधिनायकतावादी हो जानेका है। एशियामें आज हर आदमीकी सबसे बड़ी चिन्ता यहाँकी व्यापक गरीबी है जो आज़ादीके लिए सबसे बड़ा खतरा और अधिनायकशाहीकी स्थापनाका सम्भावित कारण हो सकता है। दूसरे खतरे हैं सम्प्रदायवाद, जात-पाँत और फिरकापरस्ती आदि। इसलिए एशियाई लोकनेताओंका कर्त्तव्य है कि वे न सिर्फ इन्हें दूर करें बल्कि समस्याओंके मूलमें पहुँचकर मानवकी मर्यादाकी पुनः प्रतिष्ठा करें। पर यह कैसे हो, यह सचमुच विचारणीय है। जहाँ पश्चिमकी अपेक्षा एशियाई राष्ट्रोंमें सांस्कृतिक सम्पदा और मूल्योंका महत्त्व अधिक रहा है वहाँ उनकी अपेक्षा यहाँ उन्हें खतरा भी अधिक है। पश्चिमी राष्ट्रोंमें स्वतन्त्रता, जनतन्त्र और सांस्कृतिक तथा मानववादी मूल्योंकी एक परम्परा बन चुकी है जबकि पिछली ३ शताब्दियोंकी गुलामी और शोषणके कारण एशियाई राष्ट्रोंमें उसकी छाप अधिकाधिक धुँधली पड़ती रही है। पराधीनता और शोषणके कारण असन्तुलित रहन-सहन और आबादीमें अपार गतिसे वृद्धि होनेके कारण यहाँके लोगोंकी सबसे बड़ी चिन्ता और समस्या पेटकी ही रही है। इसीलिए इनकी संस्कृति और दर्शन केवल ऐतिहासिक पृष्ठोंमें ही बच रहे हैं। इसी कारण आधुनिक औद्योगिक सभ्यताने इनके सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक ढाँचेको अस्त-व्यस्त कर दिया है। इससे अनेक भ्रान्तियाँ, विरोधाभास और अराजकता-सी उत्पन्न हो गई है। आज ये पश्चिमके मुकाबलेमें अपनेको हीन और पिछड़ा मानते हैं। इनमेंसे कुछेक अधकचरे बुद्धिवादी इस दिशामें हताश होकर सारी समस्याओंके हलका एकमात्र नुस्खा कम्युनिज्मको ही मानते हैं। रूस और चीनकी अतिरंजित सफलताओंने एशियाके गरीब, पिछड़े और अशिक्षित लोगोंको और भी भ्रान्त किया है। पर रूस और चीनकी असलियतसे भी ये परिचित होने लगे हैं। शायद जनतान्त्रिक ढंगसे आधुनिक औद्योगिक यन्त्र-विज्ञानकी सहायतासे एशियाई राष्ट्रोंको उन्नत एवं समृद्ध किया जा सके तो असंभव नहीं कि पढ़-लिखकर यहाँके लोग न सिर्फ वैयक्तिक स्वाधीनताकी रक्षाके लिए ही बल्कि अपनी ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्य-मान्यताओंकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठाके लिए भी प्राण-पणसे चेष्टा करें। इसी दिशामें सामूहिक प्रचार और प्रचेष्टाकी आवश्यकता है।

भारतीय चुनावकी तैयारी

एशियाई सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य-सम्मेलनमें उसके मन्त्रीने जो रिपोर्ट पेश की, उसमें कहा गया है कि भारतमें गांधीवादी समाजवादकी विजय होनेसे अब कम्युनिज्मका डर नहीं रहा है। पता नहीं यह तथ्य उन्हें कहाँसे और कैसे प्राप्त हुआ है? सच तो यह है कि यहाँ गाँधीवादी समाजवादसे नहीं बल्कि बाँधों और नहरोंके निर्माणसे जो खाद्योत्पादनकी वृद्धि हुई है उससे लोग कुछ खुशहाल हुए हैं। इसलिए वे कम्युनिस्टोंके प्रोपेगेंडाके चक्करमें अब पहले जितने नहीं आते। पर आन्ध्रमें पिछले दिनों हुए चुनाव-प्रचारसे यह प्रकट है कि जनताको बरगलाकर गुमराह करनेका उनका पेशा कम नहीं हुआ, बढ़ा है। वहाँ उन्होंने न सिर्फ भाषा, जाति, धर्म, प्रान्त आदिके नामपर ही लोगोंको बहकाया बल्कि सुन्दरियोंके नाच-गान-अभिनय द्वारा, साधु और ज्योतिषी बनकर लोगोंको भविष्य बतानेके बहाने और साइकिल आदि बेच-बेचकर प्रोपेगेंडा किया। भोले-भाले किसानोंको यह कहकर भी बरगलाया गया कि बाँधों और नहरोंका पानी तथा पनबिजली जमींदारोंको ही दी जायगी। कई जगह विरोधी कार्यकर्ताओंको मारा-पीटा भी। इसी तरहका प्रचार-प्रोपेगेंडा वे ट्रावनकोर-कोचीनमें भी कर रहे हैं। गत १२ फरवरीको त्रिवेन्द्रममें अवाडी कांग्रेसके समाजवादी-व्यवस्थाके प्रस्तावको समझानेके लिए हुई सार्वजनिक सभामें उन्होंने ऐसा उपद्रव किया, पत्थर फेंके, बत्तियाँ तोड़ दीं कि आखिर सभा भंग हो गई। सभापति श्री लक्ष्मणनने कहा कि ट्रावनकोर-कोचीनमें कांग्रेसके सत्तारूढ़ होनेकी आशंकासे कम्युनिस्ट बौखला गए हैं। दक्षिणकी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी विषम हैं और वहाँकी राजनीति इतनी गंदी और व्यक्तिगत स्वार्थोंको लेकर होनेवाले झगड़ोंसे जर्जर है कि कम्युनिस्टोंको लोगोंको भड़काने-बहकानेके साधन सहज ही मिल जाते हैं। तेलंगानामें हत्या और लूट द्वारा

'स्थानीय सोवियत' कायम करनेकी अपनी चेष्टामें विफल होनेके बाद उन्होने तूफानी प्रोपेगेंडा द्वारा दक्षिणके इन भागो की गरीबी और शिक्षितोकी बेकारीकी चिनगियोको हवा दे-देकर 'भारतीय येनान' कायम करनेका बीडा उठाया है। काग्रेसी, प्रजा-समाजवादी और अन्य ग़ैर-कम्युनिस्ट इनकी मौखिक आलोचना करके ही इस खतरेकी सभावनाको सफलतापूर्वक नही रोक सकते। इन सबको चाहिए कि अपने व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थोसे ऊपर उठकर यहाँ की समस्याओका उचित हल निकालें।

समाजवाद और धाराशास्त्री

और यह प्रश्न केवल दक्षिण ही नही, समूचे देशका है। यह ठीक है कि बाँधो, नहरो, सडको, कल-कारखानो, रेलो, अधिक खेती आदिसे देशमें कुछ खुशहाली आई है , पर केवल इतनेसे ही सतुष्ट होकर गाफिल हो बैठना भी तो अक्लमदी नहीं है। गत २१ फरवरीको ससदके सम्मिलित अधिवेशन मे बोलते हुए राष्ट्रपतिने कहा—"देशकी अर्थनीतिक स्थिति मे निरन्तर और उल्लेखनीय उन्नति हुई है। पचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत निर्धारित कई लक्ष्य तो तीन वर्षोंमें ही पूरे हो गए। १९५३-५४मे हुआ खाद्य-पदार्थोंका उत्पादन तो योजनाके लक्ष्यसे ४४ लाख टन अधिक हुआ है।" नि सदेह इस समृद्धिके चिन्ह देशमें नजर आ रहे हैं। पर विवेक और दूरदर्शिताका तकाजा यह है कि हम उन लक्ष्यो की ओर भी ध्यान दें, जो पचवर्षीय योजनाके तीन वर्ष पूरे होनेके बाद भी लगभग उपेक्षित ही हैं। उदाहरणके लिए स्वास्थ्य और शिक्षा विभागोको ही लें। जिस अबाध गतिसे हमारे देशकी आबादी बढ रही है, उसे रोकनेका यदि कोई प्रभावपूर्ण व्यापक प्रयत्न नही हुआ,तो खाद्यके उत्पादनमें होनेवाली वृद्धि एक दिन बढी हुई आबादीसे पिछड जायगी। इसे रोकनेको परिवार-नियोजनकी जो प्रवृत्ति अपनाई गई है, समस्याकी गभीरताके अनुपातमें उससे इस दिशामें लगभग कुछ नही हो रहा। इसी प्रकार शिक्षित बेकारोकी सख्या बढानेवाली अँगरेज़ोंके समयकी शिक्षा-प्रणाली अभी भी जारी है। ईंट-गारे और लोहे-लकडीके निर्माण-कार्यके साथ ही हमें राष्ट्र-मानवकी इन जडोको भी भूल नही जाना चाहिए। अबतक काग्रेस और केन्द्रीय शासनका लक्ष्य था जन-कल्याणकारी राष्ट्र, जिसमें अवाडी-काँग्रेसके बाद 'समाजवादी ढगकी व्यवस्था' और जुड गया है। राष्ट्रपतिने

लानेमें कहाँ तक धाराशास्त्री
भी देशमें समाजवाद या
धारा-सभाएँ नही बनाती।
उसके मार्गके अवरोधोको दूर
वे जरूर बनाती हैं। हमारे
और राजकीय धारा-स
इस दिशामें क्या-कुछ होता है,
आबादीका ७० प्रतिशत
पर सब धारा-सभाओने
कानून पास किए हैं, उनसे
सुस्पष्ट परिचय नही मिलता
के बारेमें भी कही जा
सुस्पष्ट अर्थनीतिक नीति
इसके बाद उसे कार्यान्वित

समाजवाद-सम्बन्धी आ

पर राष्ट्रपतिका सकेत
की धारा ३१ (ए) में
किया जानेवाला है, ससद
यदि ऐसी बात है, तो दो प्रश्न
मुआवजा देकर भूमि अथवा
जनतात्रिक उदार सिद्धान्त
वह पूर्णतया सभव नही। अत
समय—जबकि यह बात कही
क्यो की गई? दूसरा प्रश्न
और न्याय्य सशोधनके
जरूरी है? यदि इसके
या सभावना है, तो फिर यह
ससदमें भूखी-नगो जनताकी
प्रतिनिधि ही अधिक हैं, जिन
और समाजवादी कदम उ
का मतलब यह हर्गिज़ नही कि
प्रयोगके द्वारा ही सभव है।
सब साधनोपर समाजका
समानता और न्याय्य वितरण
आरभमें कुछ कायमी स्वार्थ
ढगसे कार्यान्वित करनेके
करें, पर इसके

रहा है। हमारी यदि सत्य, अहिंसा, नैतिकता, जनतन्त्र और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके प्रति तनिक भी आस्था है, तो हम बिना हिंसा और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी हत्या किए भी समाजवादी व्यवस्थाको विकसित कर सकते हैं। कुछ सदस्यों का ऐसा खयाल जरूर है कि संविधानकी धारा ३१ (ए) में संशोधन करना व्यक्तिकी मौलिक स्वतन्त्रताके अधिकार का हनन करना है। फिर इसमें यह भेद किया गया है कि औद्योगिककी अपेक्षा स्थावर सम्पत्ति ही बिना मुआवज़ा दिए ली जा सकती है। कहनेके लिए संशोधनमें यह भेद जरूर है, पर हममें से प्रत्येक व्यक्तिको आज एक या मुट्ठी-भर व्यक्तियोंके हितों और अधिकारोंके नहीं, समाजके व्यापक हितकी दृष्टिसे ही सोचना सीखना चाहिए। इस दृष्टिसे धारा ३१ (ए) का संशोधन कोई बहुत बड़ा और डरानेवाला नहीं है और न ही उसका आशय धारा १ (एच) के द्वारा व्यक्तिको मिले वैयक्तिक स्थावर सम्पत्ति रखनेके अधिकारका अपहरण करना ही है।

पाकिस्तान और भारतके सम्बन्ध

इस बातसे बहुतोंको निराशा हुई है कि राष्ट्रपतिके संसदीय भाषणमें भारत-पाक-सम्बन्धोंका कोई उल्लेख नहीं किया गया, जबकि कई ऐसे वैदेशिक और दूरके प्रश्नोंका उल्लेख हुआ, जिनमें भारतीय जनताकी अपेक्षाकृत बहुत कम दिलचस्पी है। यद्यपि भारत-पाक-सम्बन्धोंके कोई २०० छोटे-मोटे प्रश्नोंपर विचार करनेको स्टीयरिंग-कमेटीकी मीटिंगमें भाग लेने भारतके जो प्रतिनिधि मार्चके आरम्भ में कराची जानेवाले थे, उनका जाना अभी स्थगित हो गया है, तथापि पाक-गवर्नर-जनरलकी पिछली भारत-यात्रासे दोनोंके सम्बन्धोंमें आशा और उत्साहका जो नया उदय हुआ है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जब-तब इस या उस ओरसे कही गई कटु और कड़ी बातोंके बावजूद गत जनवरीमें पाक-गवर्नर-जनरल और कई मन्त्रियोंने भारत आकर जिस उदाराशयताका परिचय दिया, सद्भावना और समझौतेकी जो आशा प्रकट की और दोनोंके आपसके झगड़ों को शान्तिपूर्ण समझौतेके द्वारा सुलझानेकी जो तैयारी दिखाई, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। इस दिशामें पाक हाई-कमिश्नर राजा गज़नफ़रअलीने जिस दूरदर्शिता एवं परिश्रमशीलताका परिचय दिया है, वह सराहनीय है। अमृतसर-लाहौर रेल-मार्गका खुलना तथा भारत-पाक जनताके आवागमनमें वृद्धि होना इस बातका द्योतक है कि दोनों ओर अब सद्भाव, विवेक और विश्वास लौट रहे हैं। हम दोनोंका झगड़ा दो भाइयोंके झगड़े-सा है। दोनोंकी भलाई इसीमें है कि विदेशियों द्वारा ज़लील किए जानेसे पहले ही हम इसे निपटा लें।

वर्ण-भेदका भूत

भीकाभाई पटेल (२७) नामके एक भारतीयको बस-कंडक्टरोंकी शिक्षाके लिए रख लिए जानेपर बर्मिंगमके बस-कर्मचारियोंके एक दलने 'काले' आदमीके रखे जानेके विरोधमें काम छोड़ दिया है। बर्मिंगम ट्रांसपोर्ट कंपनीने इस झगड़ेमें न पड़नेके खयालसे पश्चिमी ब्रोमविचकी सर्विस ही बन्द कर दी है। हड़ताल करनेवाले ५०० गोरे कर्मचारियोंका कहना है कि जबतक कमेटी यह आश्वासन नहीं देती कि वह 'काले' आदमियोंको नौकर न रखेगी, वे कामपर नहीं लौटेंगे! भारत स्वतन्त्र है और ब्रिटिश राष्ट्रमंडलका सदस्य भी। अफ्रीका या आस्ट्रेलियामें उसके नागरिकोंके साथ जैसा व्यवहार होता है, उसके लिए ब्रिटेन यह कहकर पिंड छुड़ा लेता है कि वे स्वतन्त्र देश हैं, अतः वह उनके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पर स्वयं उसके घरमें जो यह अन्याय और अमानुषिकता हो रही है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है? फिर भीकाभाई कहनेको ही भारतीय है। वह बाकायदा ब्रिटेनका नागरिक है। इस दृष्टिसे भी उसके साथ हुआ व्यवहार ब्रिटेन और उसकी जनतान्त्रिक प्रतिष्ठाके लिए कोई शोभाकी बात नहीं। पर ब्रिटेनमें यह बीमारी कुछ ऐसी व्यापक है कि भीकाभाईका उदाहरण कोई अपवाद नहीं है। गत १४ फरवरीको कार्डिफ (वेल्स)-विश्वविद्यालयके जिन कुछ छात्रोंने एक कैंसर-अस्पतालके लिए चंदा जमा किया था, उनमें तीन नीग्रो भी थे। बाद में जब वे सब एक डांस-हालमें गए, तो संचालकने नीग्रो छात्रोंको उसमें नहीं घुसने दिया। गत ५ फरवरीको कवेंट्रीके एक होटलवालेने अपने दो खाली कमरोंमें दो काले आदमियोंको लेनेसे इन्कार कर दिया, जिसके विरोध-स्वरूप दूसरे दिन ५० लिबरलों और भारतीयोंने उसके आगे धरना दिया। यहींके एक दूसरे होटलवालेने भी दो नीग्रो लोगोंको खिलाने-पिलानेसे इन्कार कर दिया, जिसे उसका 'अधिकार' मानकर मजिस्ट्रेटने उसके लाइसेंसकी अवधि फिर बढ़ा दी। यदि कोई गिनने बैठे, तो ऐसे उदाहरणों की संख्या बेशुमार होगी। क्या ब्रिटेनकी सरकार, राजनेता और जनता इस कलंकको शीघ्र-से-शीघ्र धोनेकी सक्रिय चेष्टा करेंगे?

रेल्वे-बजट

गत २२ फरवरीको लोक-सभामें १९५५-५६ का जो रेल्वे-बजट पेश किया गया है, वो अनेक दृष्टियोंसे गत वर्षके बजटसे अधिक आशाप्रद है। इसमें न सिर्फ आय और व्यय ही गत वर्षकी अपेक्षा अधिक होंगे, बल्कि दुर्घटनाएँ, मंत्री,

त्योहारो आदिके वापसी रियायती टिकट, प्लेटफार्म-टिकट का एक आना मूल्य, छात्रो, अध्यापको, किसानो तथा राष्ट्रीय सेवा-कार्योंसे सबधित स्वयसेवकोको विशेष रियायत, लबे फासलेके भाडे और माल ढुआईकी दरमें कमी आदि कुछ ऐसी सुविधाएँ हैं, जिनसे जन-साधारणको कुछ लाभ पहुँचेगा। ७६ करोड रुपए रेलोका सामान बढानेके लिए रखे गए हैं। यद्यपि भारतीय रेलोका रूप-रग कुछ सुधरा है, तीसरे दर्जेके यात्रियोको कुछ सुविधाएँ भी अधिक मिलने लगी है, पर अभी रेले अपनी वाछनीय आवश्यकता पूरी नहीं कर पा रही हैं। मेल और एक्सप्रेसमे तीसरे दर्जो में जो भीड रहती है, वह काफी तकलीफदेह है। उन्नति-कोषमें जो ३६१ लाख रुपए रखे गए हैं, वे कई दृष्टियोंसे अपर्याप्त लगते हैं। पता नही किस आधारपर पहली पच-वर्षीय योजनामे रेलोकी उन्नतिके लिए केवल ४०० करोड रुपए ही रखे गए। भारतीय जनताकी स्थिति और पिछले दो वर्षों में जिस तेजीसे रेल-भाडेम वृद्धि हुई है, उसे देखते हुए इस बातका समर्थन नही किया जा सकता कि आय बढानेके लिए इसमें तनिक भी और वृद्धि हो। हाँ, अभी भी जो माल सडक और नदियोंसे जाता है, प्रतियोगी दरोंसे उसे प्राप्तकर तथा मेलो, त्योहारो, छुट्टियो, पहाडी स्थानोकी यात्राओंको अधिकाधिक आकर्षक और रियायती बनाकर आय बढानेकी चेष्टा की जा सकती है।

पश्चिम-बगालका बजट

अपने आकार, आबादी और आय-व्ययकी विषमताके कारण पश्चिम-बगाल भारतका समस्या-राज्य है। पिछले दो वर्षोंसे उसकी आय अनुमानसे कम और व्यय अनुमानसे अधिक होनेके कारण उसके बजटके आँकडे भी बडे चक्करा देनेवाले रहे हैं। गत वर्ष उसमें १२ ३२ करोड रुपएका घाटा था, जो इस वर्ष १७ १२ करोड हो गया है। पचवर्षीय योजनाके अतर्गत होनेवाला खर्च ६९ १० करोड था, जो यथार्थ में लगभग ७५ करोड होगा। १९५५-५६ में कुल आय ४१ ६३ करोड रुपए होगी और व्यय ६२ ८८ करोड। इस सबध मे मुख्य मत्री डा० विधानचद्र रायका कथन है—"यदि राज्य की अर्थनीतिको एकदम छिन्न भिन्न नही होने देना है, तो उसमें बहुत अधिक रुपया लगानेकी जरूरत है। केन्द्रीय या राजकीय सरकार और खानगी पूँजीपतियोसे कोई भी एक यह काम नही कर सकता। दोनो सरकारोको मिलकर राज्यमें ऐसा वातावरण बनाए रखना चाहिए कि अधिका

१० १ लाख शिक्षित बेकार हैं
वृद्धि होती रहती है; जिस
रही है, दूसरी पचवर्षीय
लोगोंके लिए लिए ना
रुपए आवश्यक होग।
और अध्यापकोंके वेतन
कारण तो बगालका ८
राजकीय कार्योंमें घाटा भी
है। उदाहरणार्थ इस वर्ष
१ करोड २ लाखका घाटा
पशु-पालन एव नस्ल-सुधार,
मकान-योजना, वर्ष और
कारी सबहन, थलघडियाका
बिहारका सवहन, रेशम-उत्पाद
कार्य आदिम इस बार लाभ
सब नहीं कि जितनी बडी
हैं, उनके अनुपातम इसकी ५
कास केन्द्रीय है। राजकीय
का है, जो जमीन कम होनेसे
से यदि मानभूमका सम्पन्न क्षेत्र
आसपासके स्थानको रूर-क्षेत्रमे
इसकी अर्थनीतिका टिकाऊ
ही नही समूचे देशके हितका
गणपत सखाराम राजा
गत ९ फरवरीका
वहाँके लोकप्रिय जज
५८ वर्षकी आयुमें देहान्त
कैम्ब्रिजमें शिक्षा प्राप्त करनेके
सिविल सर्विसमे भर्ती हुए और
डिप्टी-सेक्रेटरी, धारा-सभाके
आदिके रूपमें काम करनेके ब
के जज नियुक्त हुए। १९४०
पचायती न्यायालयके सदस्य
१९४६-४७मे रेल-विभागोंके
करनेके लिए भी आपको ही नि
समय आप आय-कर-जाँच-समिति
जाँच-समिति आदिके भी सदस्य
के रूपमें आपने जो महत्वपूर्ण